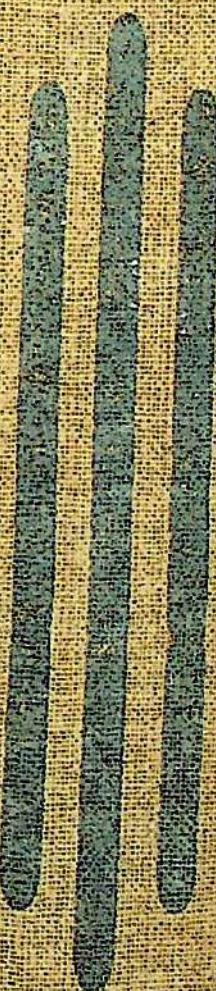


॥ श्रीराम ॥

संस्कृत

एन्ड्रापुरराजा



सम्पादक तथा संशोधक
जयदयाल गोयन्दका



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!







॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण



सम्पादक तथा संशोधक
जयदयाल गोयन्दका

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०४३ से २०४९ तक	४५,०००
सं० २०५१ छठा संस्करण	५,०००
	योग <u>५०,०००</u>

मूल्य—पैसठ रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : ३३४७२१

नम्र निवेदन

शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।* जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—‘पुराणं शृणुयान्नित्यम्’। पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्गस्य नाथोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मेकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥
कामस्य नेन्द्रियश्रीतिर्लभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नाथो यश्छेह कर्मभिः ॥

(१।२।९-१०)

‘धर्मका फल है—संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, भगवान्‌की प्राप्ति। उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका फल है—एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; वह न ऊरके यदि कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर

लीं तो यह कोई लाभकी बात नहीं है।

भोगकी सामग्रियोंका भी यह लाभ नहीं है कि उनसे इन्द्रियोंको तृप्ति किया जाय; जितने भोगोंसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतने ही भोग हमारे लिये पर्याप्त हैं तथा जीवन-निर्वाहका—जीवित रहनेका फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।’

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोंके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है। इतना ही नहीं, सारे साधनोंका फल है—भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करना। यह भगवत्तीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। पद्मपुराणमें लिखा है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२ । ६२)

‘इसलिये यदि भगवान्‌को प्रसन्न करनेका मनमें सङ्कल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।’ इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं। उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः । सर्वेषां तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणवयवो हरिः । विचरेदिह

जगतामेव हरिसालोकहेतवे ॥

भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥

(पद्म० स्वर्ग० ६२ । ६०-६१)

ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है—‘पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।’ इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) इलोकोंका माना गया है—‘शतकोटिप्रविस्तरम्।’ उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापर युगमें व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख इलोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब इलोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है।* इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक अथवा संग्रहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको ‘पञ्चम वेद’ कहा गया है—‘इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्’ (छान्दोग्य-उपनिषद् ७। १। २)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही ‘पञ्चम वेद’ की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वायक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें ही लिखा है—

यो विद्याद्यतुरो वेदान् साङ्गेऽपनिषदो द्विजः ।

पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः ॥

(सृष्टि० २। ५०-५१)

‘जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है; उससे भी बड़ा विद्वान् वह है जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।’ यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक भी यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त इलोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त इलोकके ‘विद्यात्’ और ‘विजानाति’—इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) में विशद वर्णन मिलता है, परन्तु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त इलोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है। अस्तु,

पुराणोंमें पद्मपुराणका स्थान बहुत ऊँचा है। इसे श्रीभगवान्के पुराणरूप विग्रहका हृदयस्थानीय माना

* कालेनाप्रहणं दृष्टा पुराणस्य तदा विभुः। व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे ॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ। तदाष्टादशथा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम् ॥
अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्। (पद्म० सृष्टि० १। ५१—५३)

गया है—‘हदयं पद्मसंज्ञकम्।’ वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। इसमें भगवान् विष्णुका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होनेके कारण ही यह वैष्णवोंको अधिक प्रिय है। परन्तु पद्मपुराणके अनुसार सर्वेषां देवता भगवान् विष्णु होनेपर भी उनका ब्रह्माजी तथा भगवान् शङ्करके साथ अभेद प्रतिपादित हुआ है। उसके अनुसार स्वयं भगवान् विष्णु ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होतेहैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वे भगवान् विष्णु ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। पुनः कल्पका अन्त होनेपर वे ही अपना तमःप्रधान रुद्ररूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतोंका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमें निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शश्यापर शयन करते हैं। पुनः जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।* पद्मपुराणमें तो भगवान् श्रीकृष्णके यहाँतक वचन हैं—सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु और शक्तिके उपासक सभी मुझको ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, वैसे ही इन पाँचों रूपोंके उपासक मेरे ही पास आते हैं। वस्तुतः मैं एक ही हूँ। लीलाके अनुसार विभिन्न नाम धारण कर पाँच रूपोंमें प्रकट हूँ। जैसे एक ही देवदत्त नामक व्यक्ति पुत्र-पिता आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है, वैसे ही मुझको भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारते हैं।† ऐसी ही बातें अन्यान्य पुराणोंमें भी पायी जाती हैं। वैष्णवपुराणोंमें शिव और ब्रह्माजीको विष्णुसे तथा शैवपुराणोंमें भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माजीको शङ्करजीसे अभिन्न माना गया है। अतएव जो

लोग पुराणोंमें साम्रादायिकताका गम्भीर पाते हैं, वे वास्तवमें भूल करते हैं—यही प्रमाणित होता है। पद्मपुराणमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ-साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों तथा उनके परात्पर रूपोंका भी विशदरूपसे वर्णन हुआ है। पातालखण्डमें भगवान् श्रीरामके अश्वमेध यज्ञकी कथाका तो बहुत ही विस्तृत और अद्भुत वर्णन है। इतना ही नहीं, उसमें श्रीअयोध्या और श्रीधाम वृन्दावनका माहात्म्य, श्रीराधा-कृष्ण एवं उनके पार्षदोंका वर्णन, वैष्णवोंकी द्वादशशुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिलककी विधि, भगवत्सेवा-अप्सराध और उनसे छूटनेके उपाय, तुलसीके वृक्ष तथा भगवन्नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्के चरण-चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्की विशेष आराधनाका वर्णन, मन्त्रचिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन, दीक्षा-विधि, निर्गुण एवं सगुण-ध्यानका वर्णन, भगवद्भक्तिके लक्षण, वैशाख-मासमें माधव-पूजनकी महिमा, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़में जलस्थ श्रीहरिके पूजनका माहात्म्य, अश्वस्थकी महिमा, भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान, पवित्रारोपणकी विधि, महिमा तथा भिन्न-भिन्न मासोंमें श्रीहरिकी पूजामें काम आनेवाले विविध पुष्टोंका वर्णन, बदरिकाश्रम तथा नारायणकी महिमा, गङ्गाकी महिमा, त्रिरात्र तुलसीब्रतकी विधि और महिमा, गोपीचन्दनके तिलककी महिमा, जन्माष्टमी-ब्रतकी महिमा, बारह महीनोंकी एकादशियोंके नाम तथा माहात्म्य, एकादशीकी विधि, उत्पत्ति-कथा और महिमाका वर्णन, भगवद्भक्तिकी श्रेष्ठता, वैष्णवोंके लक्षण और महिमा, भगवान् विष्णुके दसों अवतारोंकी कथा, श्रीनृसिंहचतुर्दशीके ब्रतकी महिमा, श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहों अध्यायोंका अलग-अलग माहात्म्य, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य तथा

* सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ (पद्म० सृष्ट० २ । ११४)

+ सौरश्च शैवा गणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः। मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥

एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल। देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः॥ (पद्म० उत्तर० ९० । ६३-६४)

श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायणकी विधि, नीलाचल-निवासी भगवान् पुरुषोत्तमकी महिमा आदि-आदि ऐसे अनेकों विषयोंका समावेश हुआ है, जो वैष्णवोंके लिये बड़े ही महत्वके हैं। इसीलिये वैष्णवोंमें पद्मपुराणका विशेष समादर है।

इनके अतिरिक्त सृष्टिक्रमका वर्णन, युग आदिका काल-मान, ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी सन्तान-परम्पराका वर्णन, देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन, मरुद्वाणोंकी उत्पत्ति तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन, पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन, पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अङ्गोंका वर्णन, श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन, विविध श्राद्धोंकी विधि, चन्द्रमाकी उत्पत्ति, पुष्कर आदि विविध तीर्थोंकी महिमा तथा उन तीर्थोंमें वास करने-वालोंके द्वारा पालनीय नियम, आश्रमधर्मका निरूपण, अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा, नाना प्रकारके व्रत, स्नान और तर्पणकी विधि, तालाबोंकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि, सत्सङ्गकी महिमा, उत्तम ब्राह्मण तथा गायत्री-मन्त्रकी महिमा, अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका महत्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका फल, द्विजोचित आचार तथा शिष्टाचारका वर्णन, पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और विष्णु-भक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें पाँच आख्यान, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल, सत्यभाषणकी महिमा, पोखरे खुदाने, वृक्ष लंगाने, पीपलकी पूजा करने, पौसले चलाने, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा करनेका माहात्म्य, रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा, श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं पूजाका फल, मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए दैत्य एवं देवताओंके लक्षण, भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य, भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल, विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन, ब्रह्मचर्य, साङ्घोपाङ्गधर्म तथा धर्मात्मा एवं पापियोंकी मृत्युका

वर्णन, नैमित्तिक तथा आश्युदयिक आदि दानोंका वर्णन, देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन, पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन, नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन, ब्रह्मचारीके पालन करने योग्य नियम, ब्रह्मचारी शिष्यके धर्म, स्नातक एवं गृहस्थके धर्मोंका वर्णन, गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दानधर्मका वर्णन, वानप्रस्थ एवं संन्यास-आश्रमोंके धर्मोंका वर्णन, संन्यासीके नियम, स्त्री-सङ्गकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गङ्गाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता, तीर्थयात्राकी विधि, माघ, वैशाख तथा कार्तिक मासोंका माहात्म्य, यमराजकी आराधना, गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा, दीपावली-कृत्य, गोवर्धन-पूजा तथा यमद्वितीयाके दिन करने योग्य कृत्योंका वर्णन, वैराग्यसे भगवद्भजनमें प्रवृत्ति आदि-आदि अनेकों सर्वोपयोगी तथा सबके लिये ज्ञातव्य एवं धारण करने योग्य धार्मिक विषयोंका वर्णन हुआ है, जिनके कारण पद्मपुराण आस्तिक हिंदूमात्रके लिये परम आदरकी वस्तु है।

पद्मपुराणकी इस सर्वोपयोगिताको लक्ष्यमें रखकर ही 'कल्याण' में इसका संक्षिप्त अनुवाद छापनेकी आयोजना की गयी थी। इससे भारतकी धार्मिक जनताका यदि कुछ भी उपकार हुआ होगा तो हम अपने प्रयासको सफल तथा अपनेको धन्य मानेंगे। अनुवादका कार्य आदिसे अन्ततक पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने बड़े परिश्रम एवं मनोयोगके साथ किया है तथा अनुवादकी आवृत्ति तथा सम्पादन करने एवं प्रूफ-संशोधन आदि करनेमें सम्पादकीय विभागके सभी बन्धुओं तथा अन्य कई प्रेमी महानुभावोंका प्रेमपूर्ण एवं बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिये उन्हें धन्यवाद देना तो उनके कार्यके महत्वको घटाना होगा। ये सभी महानुभाव अपने ही हैं; ऐसी दशामें उनकी बड़ाई अपनी ही बड़ाई होगी। अन्तमें हम अपना यह क्षुद्र प्रयास श्रीभगवान्के पावन चरणोंमें अर्पित करते हैं और अपनी त्रुटियोंके लिये पुनः सबसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं। हरि: ३० तत्सत् ॥

विनीत—जयदयाल गोयन्दका

विषय-सूची

विषय

सृष्टि-खण्ड

१-ग्रन्थका उपक्रम तथा इसके स्वरूपका परिचय	१
२-भीष्म और पुलस्त्यका संवाद—सृष्टि-क्रमका वर्णन तथा भगवान् विष्णुकी महिमा	३
३-ब्रह्माजीकी आयु तथा युग आदिका कालमान, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका रसातलसे उद्धार और ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन	६
४-यज्ञके लिये ब्राह्मणादि वर्णों तथा अन्नकी सृष्टि, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी संतान-परम्परका वर्णन	१०
५-लक्ष्मीजीके प्रादुर्भावकी कथा, समुद्र-मन्थन और अमृत-प्राप्ति	१२
६-सतीका देहत्याग और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस	१४
७-देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन	१७
८-मरुद्वारोंकी उत्पत्ति, भिन्न-भिन्न समुदायके राजाओं तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन	१९
९-पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन	२२
१०-पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अङ्गोंका वर्णन	२६
११-एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धोंकी विधि तथा श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन	३२
१२-चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा यदुवंश एवं सहस्रार्जुनके प्रभावका वर्णन	३७
१३-यदुवंशके अन्तर्गत क्रोष्ट आदिके वंश तथा श्रीकृष्णावतारका वर्णन	३९
१४-पुष्कर तीर्थकी महिमा, वहाँ वास करनेवाले लोगोंके लिये नियम तथा आश्रम-धर्मका निरूपण	४३
१५-पुष्कर क्षेत्रमें ब्रह्माजीका यज्ञ और सरस्वतीका प्राकट्य	४९
१६-सरस्वतीके नन्दा नाम पड़नेका इतिहास और उसका माहात्म्य	५५
१७-पुष्करका माहात्म्य, अगस्त्याश्रम तथा महर्षि अगस्त्यके प्रभावका वर्णन	६३
१८-सप्तर्षि-आश्रमके प्रसङ्गमें सप्तर्षियोंके अलोभका वर्णन तथा ऋषियोंके मुखसे अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा	६९

पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या
१९-नाना प्रकारके व्रत, स्नान और तर्पणकी विधि तथा अन्नादि पर्वतोंके दानकी प्रशंसामें राजा धर्ममूर्तिकी कथा	७५
२०-भीमद्वादशी-व्रतका विधान	८१
२१-आदित्य-शयन और रोहिणी-चन्द्र-शयन-व्रत, तडागकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि तथा सौभाग्य-शयन-व्रतका वर्णन	८३
२२-तीर्थ-महिमाके प्रसङ्गमें वामन-अवतारकी कथा, भगवान् का बाष्कलि दैत्यसे त्रिलोकीके राज्यका अपहरण	९१
२३-सत्सङ्गके प्रभावसे पाँच प्रेतोंका उद्धार और पुष्कर तथा प्राची सरस्वतीका माहात्म्य	९७
२४-मार्कण्डेयजीके दीर्घायु होनेकी कथा और श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मण और सीताके साथ पुष्करमें जाकर पिताका श्राद्ध करना तथा अजगन्ध शिवकी स्तुति करके लौटना	१०२
२५-ब्रह्माजीके यज्ञके ऋत्विजोंका वर्णन, सब देवताओंको ब्रह्मद्वारा वरदानकी प्राप्ति, श्रीविष्णु और श्रीशिवद्वारा ब्रह्माजीकी स्तुति तथा ब्रह्माजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें अपने नामों और पुष्करकी महिमाका वर्णन	१०९
२६-श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध और मेरे हुए ब्राह्मण-बालकको जीवनकी प्राप्ति	११४
२७-महर्षि अगस्त्यद्वारा राजा श्वेतके उद्धारकी कथा	११६
२८-दण्डकारण्यकी उत्पत्तिका वर्णन	११९
२९-श्रीरामका लङ्घा, रामेश्वर, पुष्कर एवं मथुरा होते हुए गङ्गातटपर जाकर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना करना	१२२
३०-भगवान् श्रीनारायणकी महिमा, युगोंका परिचय, प्रलयके जलमें मार्कण्डेयजीको भगवान् के दर्शन तथा भगवान् की नाभिसे कमलकी उत्पत्ति	१३०
३१-मधु-कैटभका वध तथा सृष्टि-परम्परका वर्णन	१३३
३२-तारकासुरके जन्मकी कथा, तारककी तपस्या, उसके द्वारा देवताओंकी पराजय और ब्रह्माजी-का देवताओंको सान्त्वना देना	१३४
३३-पार्वतीका जन्म, मदन-दहन, पार्वतीकी तपस्या और उनका भगवान् शिवके साथ विवाह	१३८

विषय

३४-गणेश और कार्तिकेयका जन्म तथा कार्तिकेय-	पृष्ठ-संख्या
द्वारा तारकासुरका वध	१४६
३५-उत्तम ब्राह्मण और गायत्री-मन्त्रकी महिमा	१५०
३६-अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, पतित विप्रकी कथा	
और गरुड़जीका चरित्र	१५५
३७-ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका	
महत्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका	
फल	१६०
३८-द्विजोचित आचार, तर्पण तथा शिष्टाचारका	
वर्णन	१६६
३९-पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और	
विष्णुभक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें	
ब्राह्मण नरोत्तमकी कथा	१७०
४०-पतिव्रता ब्राह्मणीका उपाख्यान, कुलटा स्त्रियोंके	
सम्बन्धमें उमा-नारद-संवाद, पतिव्रताकी	
महिमा और कन्यादानका फल	१८२
४१-तुलधारके सत्य और समताकी प्रशंसा, सत्य-	
भाषणकी महिमा, लोभ-त्यागके विषयमें एक	
शूद्रकी कथा और मूक चाण्डाल आदिका	
परमधाम-गमन	१८९
४२-पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पीपलकी पूजा	
करने, पौसले (प्याऊ) चलाने, गोचरभूमि	
छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा	
करनेका माहात्म्य	१९३
४३-रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा तथा आँवलेके	
फलकी महिमामें प्रेतोंकी कथा और तुलसी-	
दलका माहात्म्य	१९६
४४-तुलसी-स्तोत्रका वर्णन	२०२
४५-श्रीगङ्गाजीकी महिमा और उनकी उत्पत्ति	
४६-गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं	
पूजाका फल	२०३
४७-सञ्जय-व्यास-संवाद—मनुष्ययोनिमें उत्पन्न	
हुए दैत्य और देवताओंके लक्षण	२०७
४८-भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका	
माहात्म्य	२११
४९-भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल—	
भद्रेश्वरकी कथा	२१३
भूमि-खण्ड	
५०-शिवशर्माके चार पुत्रोंका पितृ-भक्तिके प्रभावसे	
श्रीविष्णुधामको प्राप्त होना	२१७

विषय

५१-सोमशर्माकी पितृभक्ति	पृष्ठ-संख्या
५२-सुव्रतकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें सुमना और	२२१
शिवशर्माका संवाद—विविध प्रकारके पुत्रोंका	
वर्णन तथा दुर्वासाद्वारा धर्मको शाप	२२४
५३-सुमनाके द्वारा ब्रह्मचर्य, साङ्गेपाङ्ग धर्म तथा	
धर्मात्मा और पापियोंकी मृत्युका वर्णन	२२८
५४-वसिष्ठजीके द्वारा सोमशर्माके पूर्वजन्मसम्बन्धी	
शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन तथा उन्हें भगवान्के	
भजनका उपदेश	२३१
५५-सोमशर्माके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना,	
भगवान्का उन्हें दर्शन देना तथा सोमशर्माका	
उनकी स्तुति करना	२३३
५६-श्रीभगवान्के वरदानसे सोमशर्माको सुव्रत	
नामक पुत्रकी प्राप्ति तथा सुव्रतका तपस्यासे	
माता-पितासहित वैकुण्ठलोकमें जाना	२३६
५७-राजा पृथुके जन्म और चरित्रका वर्णन	२४०
५८-मृत्युकन्या सुनीथाको गन्धर्वकुमारका शाप,	
अङ्गकी तपस्या और भगवान्से वर-प्राप्ति	
५९-सुनीथाका तपस्याके लिये वनमें जाना, रम्भा	
आदि सखियोंका वहाँ पहुँचकर उसे मोहिनी	
विद्या सिखाना, अङ्गके साथ उसका गन्धर्व-	
विवाह, वेनका जन्म और उसे राज्यकी प्राप्ति	२४४
६०-छद्यवेषधारी पुरुषके द्वारा जैन-धर्मका वर्णन,	
उसके बहकावेमें आकर वेनकी पापमें प्रवृत्ति	
और सप्तर्षियोंद्वारा उसकी भुजाओंका मन्थन	
६१-वेनकी तपस्या और भगवान् श्रीविष्णुके द्वारा	
उसे दान-तीर्थ आदिका उपदेश	२५४
६२-श्रीविष्णुद्वारा नैमित्तिक और आश्युदयिक	
आदि दानोंका वर्णन और पत्नीतीर्थके प्रसङ्गमें	
सती सुकलाकी कथा	२५७
६३-सुकलाका रानी सुदेवाकी महिमा बताते हुए	
एक शूकर और शूकरीका उपाख्यान सुनाना,	
शूकरीद्वारा अपने पतिके पूर्वजन्मका वर्णन	
६४-शूकरीद्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन	
तथा रानी सुदेवाके दिये हुए पुण्यसे उसका	
उद्धार	२६१
६५-सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये इन्द्र और	
काम आदिकी कुचेष्टा तथा उनका असफल	
होकर लौट आना	२६७

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
६६-सुकलके स्वामीका तीर्थयात्रासे लैटना और धर्मकी आज्ञासे सुकलाके साथ श्राद्धादि करके देवताओंसे वरदान प्राप्त करना	२७९	७७-आदि सृष्टिके क्रमका वर्णन	३३२
६७-पितृतीर्थके प्रसङ्गमें पिप्पलकी तपस्या और सुकर्माकी पितृभृत्तिका वर्णन, सारसके कहनेसे पिप्पलका सुकर्माकी पास जाना और सुकर्माका उन्हें माता-पिताकी सेवाका महत्व बताना	२८१	७८-भारतवर्षका वर्णन और वसिष्ठजीके द्वारा पुष्कर तीर्थकी महिमाका बखान	३३३
६८-सुकर्माद्वारा ययाति और मातलिके संवादका उल्लेख—मातलिके द्वारा देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन	२८६	७९-जम्बूमार्ग आदि तीर्थ, नर्मदा नदी, अमर-कण्टक पर्वत तथा कावेरी-सङ्गमकी महिमा	३३६
६९-पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन	२९४	८०-नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका वर्णन	३३८
७०-मातलिके द्वारा भगवान् शिव और श्रीविष्णुकी महिमाका वर्णन, मातलिको विदा करके राजा ययातिका वैष्णवधर्मके प्रचारद्वारा भूलोकको वैकुण्ठतुल्य बनाना तथा ययातिके दरबारमें काम आदिका नाटक खेलना	२९८	८१-विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन	३४४
७१-ययातिके शरीरमें जरावस्थाका प्रवेश, कामकन्यासे भेट, पूरुका यौवन-दान, ययातिका कामकन्याके साथ प्रजावर्गसहित वैकुण्ठधाम-गमन	३०२	८२-धर्मतीर्थ आदिकी महिमा, यमुना-स्नानका माहात्म्य—हेमकुण्डल वैश्य और उसके पुत्रोंकी कथा एवं स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन	३४९
७२-गुरुतीर्थके प्रसङ्गमें महर्षि च्यवनकी कथा—कुञ्जल पक्षीका अपने पुत्र उज्ज्वलको ज्ञान, व्रत और स्तोत्रका उपदेश	३१०	८३-सुगन्ध-आदि तीर्थोंकी महिमा तथा काशी-पुरीका माहात्म्य	३५८
७३-कुञ्जलका अपने पुत्र विज्वलको उपदेश—महर्षि जैमिनिका सुबाहुसे दानकी महिमा कहना तथा नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन	३१५	८४-पिशाचमोचनकुण्ड एवं कपर्दीश्वरका माहात्म्य—पिशाच तथा शङ्कुकर्ण मुनिके मुक्त होनेकी कथा और गया आदि तीर्थोंकी महिमा	३६१
७४-कुञ्जलका अपने पुत्र विज्वलको श्रीवासुदेवभिधान-स्तोत्र सुनाना	३१८	८५-ब्रह्मस्थूणा आदि तीर्थों तथा प्रयागकी महिमा; इस प्रसङ्गके पाठका माहात्म्य	३६६
७५-कुञ्जल पक्षी और उसके पुत्र कपिञ्जलका संवाद—कामोदाकी कथा और विहुण्ड दैत्यका वध	३२२	८६-मार्कण्डेयजी तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको प्रयागकी महिमा सुनाना	३६८
७६-कुञ्जलका च्यवनको अपने पूर्व-जीवनका वृत्तान्त बताकर सिद्ध पुरुषके कहे हुए ज्ञानका उपदेश करना, राजा वेनका यज्ञ आदि करके विष्णुधाममें जाना तथा पद्मपुराण और भूमिखण्डका माहात्म्य	३२७	८७-भगवद्भृत्तिकी प्रशंसा, स्त्री-सङ्गकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गङ्गाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता	४०३
		८८-वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन	३९७
		८९-संन्यास-आश्रमके धर्मका वर्णन	३९९
		९०-संन्यासीके नियम	४००
		९१-व्यावहारिक शिष्टाचारका वर्णन	३९०
		९२-गृहस्थधर्ममें भक्ष्याभक्ष्यका विचार तथा दान-धर्मका वर्णन	३९३
		९३-वानप्रस्थ-आश्रमके धर्मका वर्णन	३९७
		९४-संन्यास-आश्रमके धर्मका वर्णन	३९९
		९५-संन्यासीके नियम	४००
		९६-भगवद्भृत्तिकी प्रशंसा, स्त्री-सङ्गकी निन्दा, भजनकी महिमा, ब्राह्मण, पुराण और गङ्गाकी महत्ता, जन्म आदिके दुःख तथा हरिभजनकी आवश्यकता	४०३
		९७-श्रीहरिके पुराणमय स्वरूपका वर्णन तथा पद्मपुराण और स्वर्ग-खण्डका माहात्म्य	४०८

विषय

पाताल-खण्ड

- १८-शेषजीका वात्यायन मुनिसे रामाश्वमेधकी कथा
आरम्भ करना, श्रीरामचन्द्रजीका लङ्कासे
अयोध्याके लिये विदा होना ४१०
- १९-भरतसे मिलकर भगवान् श्रीरामका अयोध्याके
निकट आगमन ४१२
- २००-श्रीरामका नगर-प्रवेश, माताओंसे मिलना,
राज्य ग्रहण करना तथा रामराज्यकी सुव्यवस्था ४१४
- २०१-देवताओंद्वारा श्रीरामकी स्तुति, श्रीरामका
उन्हें वरदान देना तथा रामराज्यका वर्णन .. ४१७
- २०२-श्रीरामके दरबारमें अगस्त्यजीका आगमन,
उनके द्वारा रावण आदिके जन्म तथा तपस्याका
वर्णन और देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌का
अवतार लेना ४२०
- २०३-अगस्त्यका अश्वमेध यज्ञकी सलाह देकर
अश्वकी परीक्षा करना तथा यज्ञके लिये आये
हुए ऋषियोंद्वारा धर्मकी चर्चा ४२४
- २०४-यज्ञसम्बन्धी अश्वका छोड़ा जाना और श्रीरामका
उसकी रक्षाके लिये शत्रुघ्नको उपदेश करना ४२७
- २०५-शत्रुघ्न और पुष्कल आदिका सबसे मिलकर
सेनासहित घोड़ेके साथ जाना, राजा सुमदकी
कथा तथा सुमदके द्वारा शत्रुघ्नका सत्कार .. ४३०
- २०६-शत्रुघ्नका राजा सुमदको साथ लेकर आगे जाना
और च्यवनमुनिके आश्रमपर पहुँचकर सुमतिके
मुखसे उनकी कथा सुनना—च्यवनका
सुकन्यासे ब्याह ४३७
- २०७-सुकन्याके द्वारा पतिकी सेवा, च्यवनको यौवन-
प्राप्ति, उनके द्वारा अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग-
अर्पण तथा च्यवनका अयोध्या-गमन ४४०
- २०८-सुमतिका शत्रुघ्नसे नीलचलनिवासी भगवान्
पुरुषोत्तमकी महिमाका वर्णन करते हुए एक
इतिहास सुनाना ४४४
- २०९-तीर्थयात्राकी विधि, राजा रत्नग्रीवकी यात्रा तथा
गण्डकी नदी एवं शालग्रामशिलाकी महिमाके
प्रसंगमें एक पुल्कसकी कथा ४४९
- २१०-राजा रत्नग्रीवका नीलपर्वतपर भगवान्‌का दर्शन
करके रानी आदिके साथ वैकुण्ठको जाना तथा
शत्रुघ्नका नीलपर्वतपर पहुँचना ४५५

पृष्ठ-संख्या

विषय

- १११-चक्राङ्का नगरीके राजकुमार दमनद्वारा घोड़ेका
पकड़ा जाना तथा राजकुमारका प्रतापाग्र्यको
युद्धमें परास्त करके स्वयं पुष्कलके द्वारा
पराजित होना ४६०
- ११२-राजा सुबाहुका भाई और पुत्रोंसहित युद्धमें
आना तथा सेनाका क्रौञ्च-व्यूहनिर्माण ४६३
- ११३-राजा सुबाहुकी प्रशंसा तथा लक्ष्मीनिधि और
सुकेतुका द्वन्द्व-युद्ध ४६४
- ११४-पुष्कलके द्वारा चित्राङ्कका वध, हनुमान्‌जीके
चरण-प्रहारसे सुबाहुका शापोद्धार तथा उनका
आत्मसमर्पण ४६६
- ११५-तेजःपुरके राजा सत्यवान्‌की जन्मकथा—
सत्यवान्‌का शत्रुघ्नको सर्वस्व-समर्पण ४७०
- ११६-शत्रुघ्नके द्वारा विद्युन्माली और उग्रदंष्ट्रका वध
तथा उसके द्वारा चुराये हुए अश्वकी प्राप्ति .. ४७५
- ११७-शत्रुघ्न आदिका घोड़ेसहित आरण्यक मुनिके
आश्रमपर जाना, मुनिकी आत्म-कथामें
रामायणका वर्णन और अयोध्यामें जाकर उनका
श्रीरघुनाथजीके स्वरूपमें मिल जाना ४७८
- ११८-देवपुरके राजकुमार रुक्माङ्गदद्वारा अश्वका
अपहरण, दोनों ओरकी सेनाओंमें युद्ध और
पुष्कलके बाणसे राजा वीरमणिका मूर्छित होना ४८८
- ११९-हनुमान्‌जीके द्वारा वीरसिंहकी पराजय,
वीरभद्रके हाथसे पुष्कलका वध, शङ्करजीके
द्वारा शत्रुघ्नका मूर्छित होना, हनुमान्‌के पराक्रमसे
शिवका सन्तोष, हनुमान्‌जीके उद्योगसे मेरे
हुए वीरोंका जीवित होना, श्रीरामका प्रादुर्भाव
और वीरमणिका आत्मसमर्पण ४९३
- १२०-अश्वका गात्र-स्तम्भ, श्रीरामचरित्र-कीर्तनसे
एक स्वर्गवासी ब्राह्मणका राक्षसयोनिसे उद्धर
तथा अश्वके गात्र-स्तम्भकी निवृत्ति ४९८
- १२१-राजा सुरथके द्वारा अश्वका पकड़ा जाना,
राजाकी भक्ति और उनके प्रभावका वर्णन,
अङ्गदका दूत बनकर राजाके यहाँ जाना और
राजाका युद्धके लिये तैयार होना ५०२
- १२२-युद्धमें चम्पकके द्वारा पुष्कलका बाँधा जाना,
हनुमान्‌जीका चम्पकको मूर्छित करके पुष्कलको
छुड़ाना, सुरथका हनुमान् और शत्रुघ्न आदिको
जीतकर अपने नगरमें ले जाना तथा श्रीरामके
आनेसे सबका छुटकारा होना ५०६

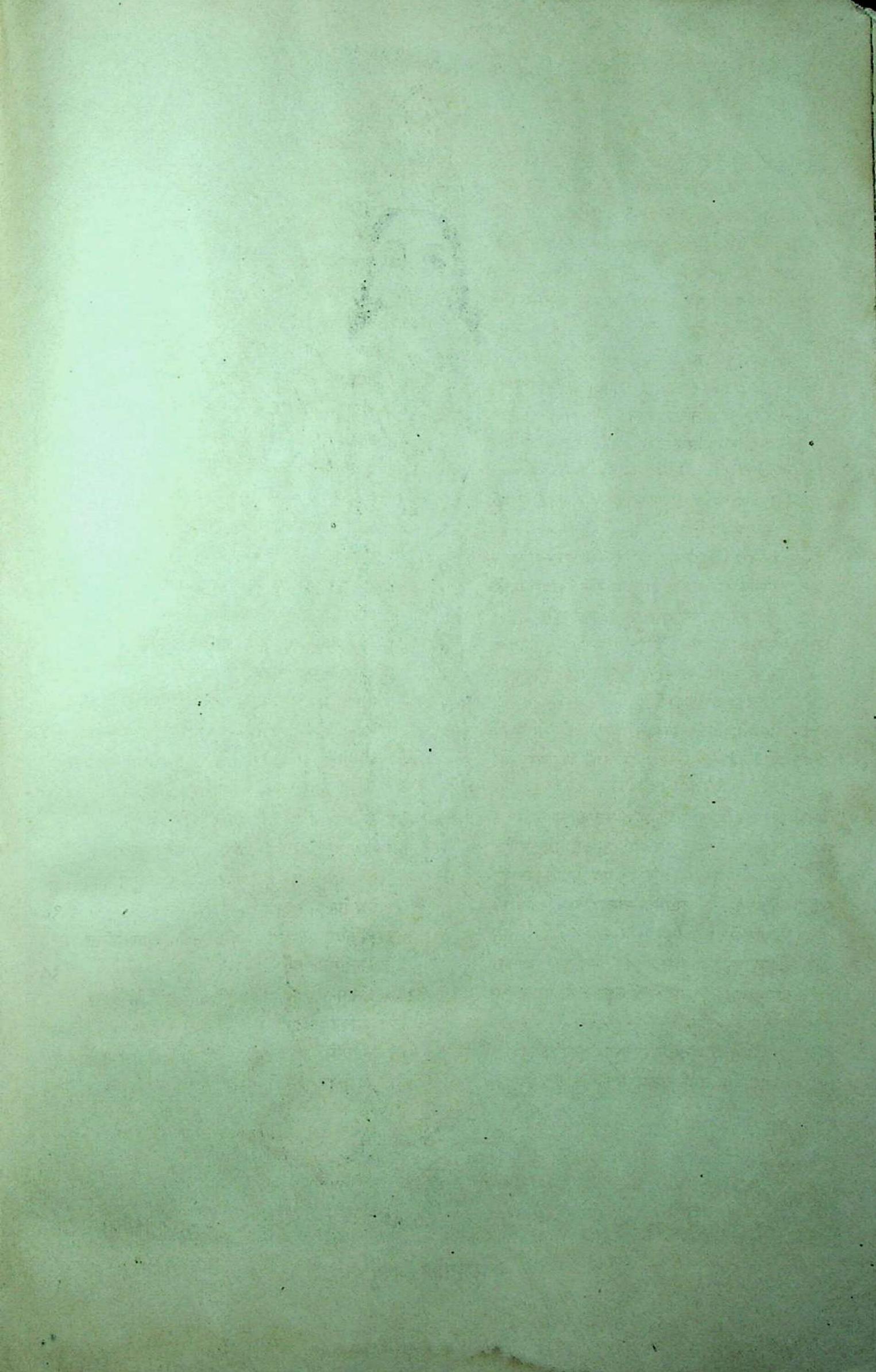
विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१२३-वाल्मीकिके आश्रमपर लवद्वारा घोड़ेका बँधना और अश्व-रक्षकोंकी भुजाओंका काटा जाना	५११	१३५-भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा ब्रज तथा द्वारकामें निवास करनेवालोंकी मुक्ति, वैष्णवोंकी द्वादश शुद्धि, पाँच प्रकारकी पूजा, शालग्रामके स्वरूप और महिमाका वर्णन, तिळककी विधि, अपराध और उनसे छूटनेके उपाय, हविष्यान्न और तुलसीकी महिमा	५६४
१२४-गुप्तचरोंसे अपवादकी बात सुनकर श्रीरामका भरतके प्रति सीताको बनामें छोड़ आनेका आदेश और भरतकी मूर्च्छा	५१३		
१२५-सीताका अपवाद करनेवाले धोबीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	५१८	१३६-नाम-कीर्तनकी महिमा, भगवान्‌के चरण- चिह्नोंका परिचय तथा प्रत्येक मासमें भगवान्‌की विशेष आराधनाका वर्णन	५६५
१२६-सीताजीके त्यागकी बातसे शत्रुघ्नकी भी मूर्च्छा, लक्ष्मणका दुःखित चित्तसे सीताको जंगलमें छोड़ना और वाल्मीकिके आश्रमपर लव-कुशका जन्म एवं अध्ययन	५२१	१३७-मन्त्रचिन्तामणिका उपदेश तथा उसके ध्यान आदिका वर्णन	५६८
१२७-युद्धमें लवके द्वारा सेनाका संहार, कालजितका वध तथा पुष्कल और हनुमानजीका मूर्च्छित होना	५२८	१३८-दीक्षाकी विधि तथा श्रीकृष्णके द्वारा रुद्रको युगल-मन्त्रकी प्राप्ति	५७१
१२८-शत्रुघ्नके बाणसे लवकी मूर्च्छा, कुशका रण- क्षेत्रमें आना, कुश और लवकी विजय तथा सीताके प्रभावसे शत्रुघ्न आदि एवं उनके सैनिकोंकी जीव-रक्षा	५३१	१३९-अम्बरीष-नारद-संवाद तथा नारदजीके द्वारा निर्गुण एवं सगुण ध्यानका वर्णन	५७५
१२९-शत्रुघ्न आदिका अयोध्यामें जाकर श्रीरघुनाथजीसे मिलना तथा मन्त्री सुमतिका उन्हें यात्राका समाचार बतलाना	५३७	१४०-भगवद्गत्तिके लक्षण तथा वैशाख-स्नानकी महिमा	५८०
१३०-वाल्मीकिजीके द्वारा सीताकी शुद्धता और अपने पुत्रोंका परिचय पाकर श्रीरामका सीताको लगानेके लिये लक्ष्मणको भेजना, लक्ष्मण और सीताकी बातचीत, सीताका अपने पुत्रोंको भेजकर स्वयं न आना, श्रीरामकी प्रेरणासे पुनः लक्ष्मणका उन्हें बुलानेको जाना तथा शोषजीका वात्स्यायनको रामायणका परिचय देना	५३९	१४१-वैशाख-माहात्म्य	५८३
१३१-सीताका आगमन, यज्ञका आरम्भ, अश्वकी मुक्ति, उसके पूर्वजन्मकी कथा, यज्ञका उपसंहार और रामभक्ति तथा अश्वमेध-कथा-श्रवणकी महिमा	५४०	१४२-वैशाख-स्नानसे पाँच प्रेतोंका उद्धार तथा 'पाप-प्रशमन' नामक स्तोत्रका वर्णन	५८५
१३२-वृन्दावन और श्रीकृष्णका माहात्म्य	५४४	१४३-वैशाख मासमें स्नान, तर्पण और श्रीमाधव- पूजनकी विधि एवं महिमा	५८९
१३३-श्रीराधा-कृष्ण और उनके पार्षदोंका वर्णन तथा नारदजीके द्वारा ब्रजमें अवतीर्ण श्रीकृष्ण और राधाके दर्शन	५४८	१४४-यम-ब्राह्मण-संवाद—नरक तथा स्वर्गमें ले जानेवाले कंपोंका वर्णन	५९३
१३४-भगवान्‌के परात्पर स्वरूप—श्रीकृष्णकी महिमा तथा मथुराके माहात्म्यका वर्णन	५४८	१४५-तुलसीदल और अश्वत्थकी महिमा तथा वैशाख-माहात्म्यके सम्बन्धमें तीन प्रेतोंके उद्धारकी कथा	५९६
		१४६-वैशाख-माहात्म्यके प्रसङ्गमें राजा महीरथकी कथा और यम-ब्राह्मण-संवादका उपसंहार	५९९
		१४७-भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान	६०६
		उत्तररखण्ड	
	५४६	१४८-नारद-महादेव-संवाद—बदरिकाश्रम तथा नारायणकी महिमा	६१०
	५५०	१४९-गङ्गावतरणकी संक्षिप्त कथा और हरिद्वारका माहात्म्य	६११
	५५४	१५०-गङ्गाकी महिमा, श्रीविष्णु, यमुना, गङ्गा, प्रयाग, काशी, गया एवं गदाधरकी स्तुति ..	६१३
	५५८	१५१-तुलसी, शालग्राम तथा प्रयागतीर्थका माहात्म्य	६१९

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१५२-त्रिंशत्र तुलसीब्रतकी विधि और महिमा	६२१	१७२-कार्तिक मासकी 'रमा' और 'प्रबोधिनी'	पृष्ठ-संख्या
१५३-अन्नदान, जलदान, तडाग-निर्माण, वृक्षारोपण तथा सत्यभाषण आदिकी महिमा		एकादशीका माहात्म्य	६७४
१५४-मन्दिरमें पुराणकी कथा कराने और सुपात्रको दान देनेसे होनेवाली सद्गतिके विषयमें एक आख्यान तथा गोपीचन्दनके तिलककी महिमा	६२३	१७३-पुरुषोत्तम मासकी 'कमला' और 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य	६७७
१५५-संवत्सरदीप-ब्रतकी विधि और महिमा	६२६	१७४-चातुर्मास्य ब्रतकी विधि और उद्यापन	६८०
१५६-जयन्ती संज्ञावाली जन्माष्टमीके ब्रत तथा विविध प्रकारके दान आदिकी महिमा	६२८	१७५-यमराजकी आराधना और गोपीचन्दनका माहात्म्य	६८४
✓१५७-महाराज दशरथका शनिको संतुष्ट करके लोकका कल्याण करना	६३१	१७६-वैष्णवोंके लक्षण और महिमा तथा श्रवण- द्वादशी-ब्रतकी विधि और माहात्म्य-कथा ..	६८८
१५८-त्रिस्पृशाब्रतकी विधि और महिमा	६३५	१७७-नाम-कीर्तनकी महिमा तथा श्रीविष्णुसहस्रनाम- स्तोत्रका वर्णन	६९१
१५९-पक्षवर्धिनी एकादशी तथा जागरणका माहात्म्य	६३७	१७८-गृहस्थ-आश्रमकी प्रशंसा तथा दान-धर्मकी महिमा	७२४
१६०-एकादशीके जया आदि भेद, नक्तब्रतका स्वरूप, एकादशीकी विधि, उत्पत्तिकथा और महिमाका वर्णन	६३९	१७९-गण्डकी नदीका माहात्म्य तथा अशुद्य एवं और्ध्वदैहिक नामक स्तोत्रका वर्णन	७२५
१६१-मार्गशीर्ष शुक्रपक्षकी 'मोक्षा' एकादशीका माहात्म्य	६४३	१८०-ऋषिपञ्चमी-ब्रतकी कथा, विधि और महिमा ..	७२८
१६२-पौष मासकी 'सफला' और 'पुत्रदा' नामक एकादशीका माहात्म्य	६४७	१८१-न्याससहित अपार्मार्जन नामक स्तोत्र और उसकी महिमा	७३०
१६३-माघ मासकी 'षट्तिला' और 'जया' एकादशीका माहात्म्य	६४९	१८२-श्रीविष्णुकी महिमा—भक्तप्रवर पुण्डरीककी कथा	७३५
१६४-फाल्गुन मासकी 'विजया' तथा 'आमलकी' एकादशीका माहात्म्य	६५१	१८३-श्रीगङ्गाजीकी महिमा, वैष्णव पुरुषोंके लक्षण तथा श्रीविष्णु-प्रतिमाके पूजनका माहात्म्य ..	७४२
१६५-चैत्र मासकी 'पापमोचनी' तथा 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य	६५३	१८४-चैत्र और वैशाख मासके विशेष उत्सवका वर्णन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़में जलस्थ श्रीहरिके पूजनका महत्व	७४५
१६६-वैशाख मासकी 'वरुथिनी' और 'मोहिनी' एकादशीका माहात्म्य	६५८	१८५-पवित्रारोपणकी विधि, महिमा तथा भिन्न-भिन्न मासमें श्रीहरिकी पूजामें काम आनेवाले विविध पुष्पोंका वर्णन	७४७
१६७-ज्येष्ठ मासकी 'अपरा' तथा 'निर्जरा' एकादशीका माहात्म्य	६६०	१८६-कार्तिक-ब्रतका माहात्म्य—गुणवतीको कार्तिकब्रतके पुण्यसे भगवान्की प्राप्ति ..	७५०
१६८-आषाढ़ मासकी 'योगिनी' और 'शयिनी' एकादशीका माहात्म्य	६६२	१८७-कार्तिककी श्रेष्ठताके प्रसङ्गमें शङ्खासुरके वध, वेदोंके उद्धार तथा 'तीर्थराज'के उत्कर्षकी कथा	७५३
१६९-श्रावण मासकी 'कामिका' और 'पुत्रदा' एकादशीका माहात्म्य	६६५	१८८-कार्तिक मासमें स्नान और पूजनकी विधि ..	७५६
१७०-भाद्रपद मासकी 'अजा' और 'पद्मा' एकादशीका माहात्म्य	६६७	१८९-कार्तिक-ब्रतके नियम और उद्यापनकी विधि ..	७५९
१७१-आश्विन मासकी 'इन्द्रा' और 'पापाङ्गुला' एकादशीका माहात्म्य	६६९	१९०-कार्तिक-ब्रतके पुण्यदानसे एक रक्षसीका उद्धार	७६२
	६७१	१९१-कार्तिक-माहात्म्यके प्रसङ्गमें राजा चोल और विष्णुदासकी कथा	७६५

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१९२-पुण्यात्माओंके संसर्गसे पुण्यकी प्राप्तिके प्रसङ्गमें धनेश्वर ब्राह्मणकी कथा	७६९	२१६-श्रीमद्भगवद्गीताके नवें और दसवें अध्यायोंका माहात्म्य	८२८
१९३-अशक्तावस्थामें कार्तिक-ब्रतके निर्वाहका उपाय	७७३	२१७-श्रीमद्भगवद्गीताके ग्यारहवें अध्यायका माहात्म्य	८३२
१९४-कार्तिक मासका माहात्म्य और उसमें पालन करने योग्य नियम	७७४	२१८-श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायका माहात्म्य	८३५
१९५-प्रसङ्गतः माघस्नानकी महिमा, शूकरक्षेत्रका माहात्म्य तथा मासोपवास-ब्रतकी विधिका वर्णन	७७७	२१९-श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें और चौदहवें अध्यायोंका माहात्म्य	८३७
१९६-शालग्रामशिलाके पूजनका माहात्म्य	७७८	२२०-श्रीमद्भगवद्गीताके पंद्रहवें तथा सोलहवें अध्यायोंका माहात्म्य	८४०
१९७-भगवत्पूजन, दीपदान, यमतर्पण, दीपावली- कृत्य, गोवर्धन-पूजा और यमद्वितीयाके दिन करने योग्य कृत्योंका वर्णन	७८०	२२१-श्रीमद्भगवद्गीताके सत्रहवें और अठारहवें अध्यायोंका माहात्म्य	८४२
१९८-प्रबोधिनी एकादशी और उसके जागरणका महत्व तथा भीष्मपञ्चक-ब्रतकी विधि एवं महिमा ..	७८२	२२२-देवर्षि नारदकी सनकादिसे भेट तथा नारदजीके द्वारा भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके वृत्तान्तका वर्णन	८४५
१९९-भक्तिका स्वरूप, शालग्रामशिलाकी महिमा तथा वैष्णव पुरुषोंका माहात्म्य	७८४	२२३-भक्तिका कष्ट दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग और सनकादिके द्वारा उन्हें साधनकी प्राप्ति	८४९
२००-भगवत्सरणका प्रकार, भक्तिकी महत्ता, भगवत्तत्त्वका ज्ञान, प्रारब्धकर्मकी प्रबलता तथा भक्तियोगका उत्कर्ष	७८६	२२४-सनकादिद्वारा श्रीमद्भागवतकी महिमाका वर्णन तथा कथा-रससे पृष्ठ होकर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका प्रकट होना	८५२
२०१-पुष्कर आदि तीर्थोंका वर्णन	७९०	२२५-कथामें भगवान्‌का प्रादुर्भाव, आत्मदेव ब्राह्मणकी कथा—धुन्धुकारी और गोकर्णकी उत्पत्ति तथा आत्मदेवका वनगमन	८५६
२०२-वेत्रवती और साभ्रमती (साबरमती) नदीका माहात्म्य	७९१	२२६-गोकर्णजीकी भागवत-कथासे धुन्धुकारीका प्रेतयोनिसे उद्धार तथा समस्त श्रोताओंको परमधामकी प्राप्ति	८६१
२०३-साभ्रमती नदीके अवान्तर तीर्थोंका वर्णन ...	७९५	२२७-श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायणकी विधि तथा भागवत-माहात्म्यका उपसंहार	८६५
२०४-अग्निर्थ, हिरण्यसंगमतीर्थ, धर्मतीर्थ आदिकी महिमा	७९७	२२८-यमुना-तटवर्ती 'इन्द्रप्रस्थ' नामक तीर्थकी माहात्म्य-कथा	८७०
२०५-साभ्रमती-तटके कपीश्वर, एकधार, सप्तधार और ब्रह्मवल्ली आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन	७९९	२२९-निगमोद्बोध नामक तीर्थकी महिमा— शिवशमर्मके पूर्वजन्मकी कथा	८७३
२०६-साभ्रमती-तटके बालर्क, दुर्घटेश्वर तथा खड्डधार आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन ...	८०२	२३०-देवल मुनिका शरभको राजा दिलीपकी कथा सुनाना—राजाको नन्दिनीकी सेवासे पुत्रकी प्राप्ति	८७५
२०७-वात्रघ्नी आदि तीर्थोंकी महिमा	८०६	२३१-शरभको देवीकी आराधनासे पुत्रकी प्राप्ति; शिवशमर्मके पूर्वजन्मकी कथाका और निगमोद्बोधक तीर्थकी महिमाका उपसंहार ...	८७९
२०८-श्रीनृसिंहचतुर्दशीके ब्रत तथा श्रीनृसिंहतीर्थकी महिमा	८१०	२३२-इन्द्रप्रस्थके द्वारका, कोसला, मधुवन, वदरी, हरिद्वार, पुष्कर, प्रयाग, काशी, काशी और गोकर्ण आदि तीर्थोंका माहात्म्य	८८०
२०९-श्रीमद्भगवद्गीताके पहले अध्यायका माहात्म्य	८१४		
२१०-श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका माहात्म्य	८१५		
२११-श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका माहात्म्य	८१७		
२१२-श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायका माहात्म्य	८२०		
२१३-श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायका माहात्म्य	८२२		
२१४-श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायका माहात्म्य	८२३		
२१५-श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें तथा आठवें अध्यायोंका माहात्म्य	८२५		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
२३३-वसिष्ठजीका दिलीपसे तथा भृगुजीका विद्याधरसे माघस्नानकी महिमा बताना तथा माघस्नानसे विद्याधरकी कुरुपताका दूर होना		मन्थनसे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव और एकादशी-द्वादशीका माहात्म्य	१३५
२३४-मृगशृङ्ख मुनिका भगवान्से वरदान प्राप्त करके अपने घर लौटना	८८४	२५०-नृसिंहावतार एवं प्रह्लादजीकी कथा	१३९
२३५-मृगशृङ्ख मुनिके द्वारा माघके पुण्यसे एक हाथीका उद्धार तथा मरी हुई कन्याओंका जीवित होना	८८७	२५१-वामन-अवतारके वैभवका वर्णन	१४५
२३६-यमलोकसे लौटी हुई कन्याओंके द्वारा वहाँकी अनुभूत बातोंका वर्णन	८९०	२५२-परशुरामावतारकी कथा	१४७
२३७-महात्मा पुष्करके द्वारा नरकमें पड़े हुए जीवोंका उद्धार	८९५	२५३-श्रीरामावतारकी कथा—जन्मका प्रसङ्ग ...	१४९
२३८-मृगशृङ्खका विवाह, विवाहके भेद तथा गृहस्थ-आश्रमका धर्म	९००	२५४-श्रीरामका जातकर्म, नामकरण, भरत आदिका जन्म, सीताकी उत्पत्ति, विश्वामित्रकी यज्ञरक्षा तथा राम आदिका विवाह	१५१
२३९-पतिव्रता स्त्रियोंके लक्षण एवं सदाचारका वर्णन	९०२	२५५-श्रीरामके वनवाससे लेकर पुनः अयोध्यामें आनेतकका प्रसङ्ग	१५४
२४०-मृगशृङ्खके पुत्र मृकण्डु मुनिकी काशी-यात्रा, काशी-माहात्म्य तथा माताओंकी मुक्ति	९०७	२५६-श्रीरामके राज्याभिषेकसे परमधामगमनतकका प्रसङ्ग	१६०
२४१-मार्कण्डेयजीका जन्म, भगवान् शिवकी आराधनासे अमरत्व-प्राप्ति तथा मृत्युञ्जय-स्तोत्रका वर्णन	९१०	२५७-श्रीकृष्णावतारकी कथा—ब्रजकी लीलाओंका प्रसङ्ग	१६४
२४२-माघस्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थ और नियम	९१२	२५८-भगवान् श्रीकृष्णकी मथुरा-यात्रा, कंसवध और उग्रसेनका राज्याभिषेक	१६९
२४३-माघ मासके स्नानसे सुव्रतको दिव्यलोककी प्राप्ति	९१७	२५९-जरासन्धकी पराजय, द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका वध और मुचुकुन्दकी मुक्ति ..	१७५
२४४-सनातन मोक्षमार्ग और मन्त्रदीक्षाका वर्णन .	९२१	२६०-सुधर्मा-सभाकी प्राप्ति, रुक्मिणी-हरण तथा रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह	१७७
२४५-भगवान् विष्णुकी महिमा, उनकी भक्तिके भेद तथा अष्टाक्षर मन्त्रके स्वरूप एवं अर्थका निरूपण	९२३	२६१-भगवान्के अन्यान्य विवाह, स्यमन्तकमणिकी कथा, नरकासुरका वध तथा पारिजातहरण	१७९
२४६-श्रीविष्णु और लक्ष्मीके स्वरूप, गुण, धाम एवं विभूतियोंका वर्णन	९२७	२६२-अनिरुद्धका ऊषाके साथ विवाह	१८२
२४७-वैकुण्ठधाममें भगवान्की स्थितिका वर्णन, योगमायाद्वारा भगवान्की स्तुति तथा भगवान्के द्वारा सृष्टि-रचना	९३०	२६३-पौण्ड्रक, जरासन्ध, शिशुपाल और दन्तवक्र-का वध, ब्रजवासियोंकी मुक्ति, सुदामाको ऐश्वर्यप्रदान तथा यदुकुलका उपसंहार	१८४
२४८-देवसर्ग तथा भगवान्के चतुर्व्यूहका वर्णन	९३२	२६४-श्रीविष्णु-पूजनकी विधि तथा वैष्णवोचित आचारका वर्णन	१८९
✓ २४९-मत्स्य और कूर्म अवतारोंकी कथा, समुद्र-		२६५-श्रीराम-नामकी महिमा तथा श्रीरामके नामका माहात्म्य	१०८
		२६६-त्रिदेवोंमें श्रीविष्णुकी श्रेष्ठता तथा ग्रन्थका उपसंहार	११४
			११८







भगवान् विष्णु

संक्षिप्त पद्मपुराण

सृष्टिखण्ड

ग्रन्थका उपक्रम तथा इसके स्वरूपका परिचय

खच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसंजातफेनं

ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्ब्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः ।

उँकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं

संभोगाभोगरस्यं जलमशुभहरं पौष्ट्रं नः पुनात् ॥*

श्रीव्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् लोमहर्षणजीने एकान्तमें बैठे हुए [अपने पुत्र] उग्रश्रवा नामक सूतसे कहा—“बेटा ! तुम ऋषियोंके आश्रमोंपर जाओ और उनके पूछनेपर सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन करो । तुमने मुझसे जो संक्षेपमें सुना है, वह उन्हें विस्तारपूर्वक सुनाओ । मैंने महर्षि वेदव्यासजीके मुखसे समस्त पुराणोंका ज्ञान प्राप्त किया है और वह सब तुम्हें बता दिया है; अतः अब मुनियोंके समक्ष तुम उसका विस्तारके साथ वर्णन करो । प्रयागमें कुछ महर्षियोंने, जो उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए थे, साक्षात् भगवान्से प्रश्न किया था । वे [यज्ञ करनेके योग्य] किसी पावन प्रदेशको जानना चाहते थे । भगवान् नारायण ही सबके हितैषी हैं, वे धर्मानुष्ठानकी इच्छा रखनेवाले उन महर्षियोंके पूछनेपर बोले—‘मुनिवरो ! यह सामने जो चक्र दिखायी दे रहा है, इसकी कहीं तुलना नहीं है । इसकी नाभि सुन्दर और स्वरूप दिव्य है । यह सत्यकी ओर जानेवाला है । इसकी गति सुन्दर एवं कल्याणमयी है । तुमलोग सावधान होकर नियम-पूर्वक इसके पीछे-पीछे जाओ । तुम्हें अपने लिये हितकारी स्थानकी प्राप्ति होगी । यह धर्ममय चक्र यहाँसे जा रहा है । जाते-जाते जिस स्थानपर इसकी नैमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिर पड़े, उसीको पुण्यमय प्रदेश समझना ।’ उन सभी

महर्षियोंसे ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वह धर्म-चक्र नैमिषारण्यके गङ्गावर्त नामक स्थानपर गिरा । तब ऋषियोंने निमि शीर्ण होनेके कारण उस स्थानका नाम ‘नैमिष’ रखा और नैमिषारण्यमें दीर्घकालतक चालू रहनेवाले यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया । वहीं तुम भी जाओ और ऋषियोंके पूछनेपर उनके धर्म-विषयक संशयोंका निवारण करो ।”

तदनन्तर ज्ञानी उग्रश्रवा पिताकी आज्ञा मानकर



उन मुनीश्वरोंके पास गये तथा उनके चरण पकड़कर हाथ जोड़कर उन्होंने प्रणाम किया । सूतजी बड़े बुद्धिमान् थे,

* जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और स्वच्छ है, जिसमें हाथीकी सूँडके समान आकारवाले नाकोंके इधर-उधर वेगपूर्वक चलने-फिरनेसे फेन पैदा होता रहता है, ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथा-वार्तामें लगे हुए व्रत-नियम-परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सदा सेवन करते हैं, उँकार-जपसे विभूषित त्रिभुवनगुरु ब्रह्माजीने जिसे अपनी दृष्टिसे पवित्र किया है, जो पीनेमें स्वादिष्ट है और अपनी विशालताके कारण रमणीय जान पड़ता है, वह पुष्करतीर्थका पापहारी जल हमलोगोंको पवित्र करे ।

उन्होंने अपनी नप्रता और प्रणाम आदिके द्वारा महर्षियोंको सन्तुष्ट किया। वे यज्ञमें भाग लेनेवाले महर्षि भी संदस्योंसहित बहुत प्रसन्न हुए तथा सबने एकत्रित होकर सूतजीका यथायोग्य आदर-सत्कार किया।

ऋषि बोले—देवताओंके समान तेजस्वी सूतजी! आप कैसे और किस देशसे यहाँ आये हैं? अपने आनेका कारण बताइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! मेरे बुद्धिमान् पिता व्यास-शिष्य लोमहर्षणजीने मुझे यह आज्ञा दी है कि 'तुम मुनियोंके पास जाकर उनकी सेवामें रहो और वे जो कुछ पूछें, उसे बताओ।' आपलोग मेरे पूज्य हैं। बताइये, मैं कौन-सी कथा कहूँ? पुराण, इतिहास अथवा भिन्न-भिन्न प्रकारके धर्म—जो आज्ञा दीजिये, वही सुनाऊँ।

सूतजीका यह मधुर वचन सुनकर वे श्रेष्ठ महर्षि बहुत प्रसन्न हुए। अत्यन्त विश्वसनीय, विद्वान् लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवाको उपस्थित देख उनके हृदयमें पुराण सुननेकी इच्छा जाग्रत् हुई। उस यज्ञमें यजमान थे महर्षि शौनक, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, मेधावी तथा [वेदके] विज्ञानमय आरण्यक-भागके आचार्य थे। वे सब महर्षियोंके साथ श्रद्धाका आश्रय लेकर धर्म सुननेकी इच्छासे बोले।

शौनकने कहा—महाबुद्धिमान् सूतजी! आपने इतिहास और पुराणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यासजीकी भलीभाँति आराधना की है। उनकी पुराण-विषयक श्रेष्ठ बुद्धिसे आपने अच्छी तरह लगभग उठाया है। महामते! यहाँ जो ये श्रेष्ठ ब्राह्मण विराजमान हैं, इनका मन पुराणोंमें लग रहा है। ये पुराण सुनना चाहते हैं। अतः आप इन्हें पुराण सुननेकी ही कृपा करें। ये सभी श्रोता, जो यहाँ एकत्रित हुए हैं, बहुत ही श्रेष्ठ हैं। भिन्न-भिन्न गोत्रोंमें इनका जन्म हुआ है। ये वेदवादी ब्राह्मण अपने-अपने वंशका पौयणिक वर्णन सुनें। इस दीर्घकालीन यज्ञके पूर्ण होनेतक आप मुनियोंको पुराण सुनाइये। महाप्राप्त! आप इन सब लोगोंसे पञ्चपुराणकी कथा कहिये। पद्मकी

उत्पत्ति कैसे हुई, उससे ब्रह्माजीका आविर्भाव किस प्रकार हुआ तथा कमलसे प्रकट हुए ब्रह्माजीने किस तरह जगत्की सृष्टि की—ये सब बातें इन्हें बताइये।

उनके इस प्रकार पूछनेपर लोमहर्षण-कुमार सूतजीने सुन्दर वाणीमें सूक्ष्म अर्थसे भरा हुआ न्याययुक्त वचन कहा—‘महर्षियो! आपलोगोंने जो मुझे पुराण सुनानेकी आज्ञा दी है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; यह मुझपर आपका महान् अनुग्रह है। सम्पूर्ण धर्मोंके पालनमें लगे रहनेवाले पुराणवेत्ता विद्वानोंने जिनकी भलीभाँति व्याख्या की है, उन पुराणोंके विषयोंको मैंने जैसा सुना है, उसी रूपमें वह सब आपको सुनाऊँगा। सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें सूत जातिका सनातन धर्म यही है कि वह देवताओं, ऋषियों तथा अमिततेजस्वी राजाओंकी वंश-परम्पराको धारण करे—उसे याद रखे तथा इतिहास और पुराणोंमें जिन ब्रह्मवादी महात्माओंका वर्णन किया गया है, उनकी स्तुति करे; क्योंकि जब वेनकुमार राजा पृथुका यज्ञ हो रहा था, उस समय सूत और मागधने पहले-पहल उन महाराजकी स्तुति ही की थी। उस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महात्मा पृथुने उन दोनोंको वरदान दिया। वरदानमें उन्होंने सूतको सूत नामक देश और मागधको मगधका राज्य प्रदान किया था। क्षत्रियके वीर्य और ब्राह्मणीके गर्भसे जिसका जन्म होता है, वह सूत कहलाता है। ब्राह्मणोंने मुझे पुराण सुनानेका अधिकार दिया है। आपने धर्मका विचार करके ही मुझसे पुराणकी बातें पूछी हैं; इसलिये इस भूमप्डलमें जो सबसे उत्तम एवं ऋषियोंद्वारा सम्मानित पद्मपुराण है, उसकी कथा आरम्भ करता हूँ। श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यासजी साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं। वे ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण लोकोंमें पूजित तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं। उन्हींसे प्रकट हुए पुराणोंका मैंने अपने पिताजीके पास रहकर अध्ययन किया है। पुराण सब शास्त्रोंके पहलेसे विद्यमान हैं। ब्रह्माजीने [कल्पके आदिमें] सबसे पहले पुराणोंका ही स्मरण किया था। पुराण त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामके साधक एवं परम पवित्र हैं। उनकी रचना सौ करोड़ श्लोकोंमें हुई

है। * समयके अनुसार इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन असम्भव देखकर स्वयं भगवान् उनका संक्षेप करनेके लिये प्रत्येक द्वापर्युगमें व्यासरूपसे अवतार लेते हैं और पुराणोंको अठारह भागोंमें बाँटकर उन्हें चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही इस भूमण्डलमें प्रकाशित होता है। देवलोकोंमें आज भी सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण मौजूद है।

अब मैं परम पवित्र पद्मपुराणका वर्णन आरम्भ करता हूँ। उसमें पाँच खण्ड और पचपन हजार श्लोक हैं। पद्मपुराणमें सबसे पहले सृष्टिखण्ड है। उसके बाद भूमिखण्ड आता है। फिर स्वर्गखण्ड और उसके पश्चात्

भीष्म और पुलस्त्यका संवाद—सृष्टि-क्रमका वर्णन तथा भगवान् विष्णुकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! जो सृष्टिरूप मूल प्रकृतिके ज्ञाता तथा इन भावात्मक पदार्थोंके द्रष्टा हैं, जिन्होंने इस लोककी रचना की है, जो लोकतत्त्वके ज्ञाता तथा योगवेत्ता हैं, जिन्होंने योगका आश्रय लेकर सम्पूर्ण चराचर जीवोंकी सृष्टि की है और जो समस्त भूतों तथा अखिल विश्वके स्वामी हैं, उन सच्चिदानन्द परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। फिर ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, अन्य लोकपाल तथा सूर्यदेवको एकाग्रचित्तसे नमस्कार करके ब्रह्मस्वरूप वेदव्यासजीको प्रणाम करता हूँ। उन्हींसे इस पुराण-विद्याको प्राप्त करके मैं आपके समक्ष प्रकाशित करता हूँ। जो नित्य, सदसत्त्वरूप, अव्यक्त एवं सबका कारण है, वह ब्रह्म ही महत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त विशाल ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। यह विद्वानोंका निश्चित सिद्धान्त है। सबसे पहले हिरण्यमय (तेजोमय) अण्डमें ब्रह्मजीका प्रादुर्भाव हुआ। वह अण्ड सब ओर जलसे धिरा है। जलके बाहर तेजका धेरा और तेजके बाहर वायुका आवरण है। वायु आकाशसे और आकाश भूतादि (तामस अहंकार) से धिरा है।

पातालखण्ड है। तदनन्तर परम उत्तम उत्तरखण्डका वर्णन आया है। इतना ही पद्मपुराण है। भगवान् की नाभिसे जो महान् पद्म (कमल) प्रकट हुआ था, जिससे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है, उसीके वृत्तान्तका आश्रय लेकर यह पुराण प्रकट हुआ है। इसलिये इसे पद्मपुराण कहते हैं। यह पुराण स्वभावसे ही निर्मल है, उसपर भी इसमें श्रीविष्णुभगवान् के माहात्म्यका वर्णन होनेसे इसकी निर्मलता और भी बढ़ गयी है। देवाधिदेव भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रति जिसका उपदेश किया था तथा ब्रह्माजीने जिसे अपने पुत्र मरीचिको सुनाया था वही यह पद्मपुराण है। ब्रह्माजीने ही इसे इस जगत्में प्रचलित किया है।

अहंकारको महत्त्वने धेर रखा है और महत्त्व अव्यक्त—मूल प्रकृतिसे धिरा है। उक्त अण्डको ही सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिका आश्रय बताया गया है। इसके सिवा, इस पुराणमें नदियों और पर्वतोंकी उत्पत्तिका बारम्बार वर्णन आया है। मन्वन्तरों और कल्पोंका भी संक्षेपमें वर्णन है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महात्मा पुलस्त्यको इस पुराणका उपदेश दिया था। फिर पुलस्त्यने इसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में भीष्मजीको सुनाया था। इस पुराणका पठन, श्रवण तथा विशेषतः स्मरण धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला एवं सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो द्विज अङ्गों और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उसकी अपेक्षा वह अधिक विद्वान् है जो केवल इस पुराणका ज्ञाता है। † इतिहास और पुराणोंके सहारे ही वेदकी व्याख्या करनी चाहिये; क्योंकि वेद अल्पज्ञ विद्वान्‌से यह सोचकर डरता रहता है कि कहीं यह मुझपर प्रहार न कर बैठे—अर्थका अनर्थ न कर बैठे। [तात्पर्य यह कि पुराणोंका अध्ययन किये बिना वेदार्थका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।] ‡

* पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (१।५३)
† यो विद्याच्छ्रुतो वेदान् साङ्गेपनिषदो द्विजः। पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः॥ (२।५०-५१)
‡ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥ (२।५१-५२)

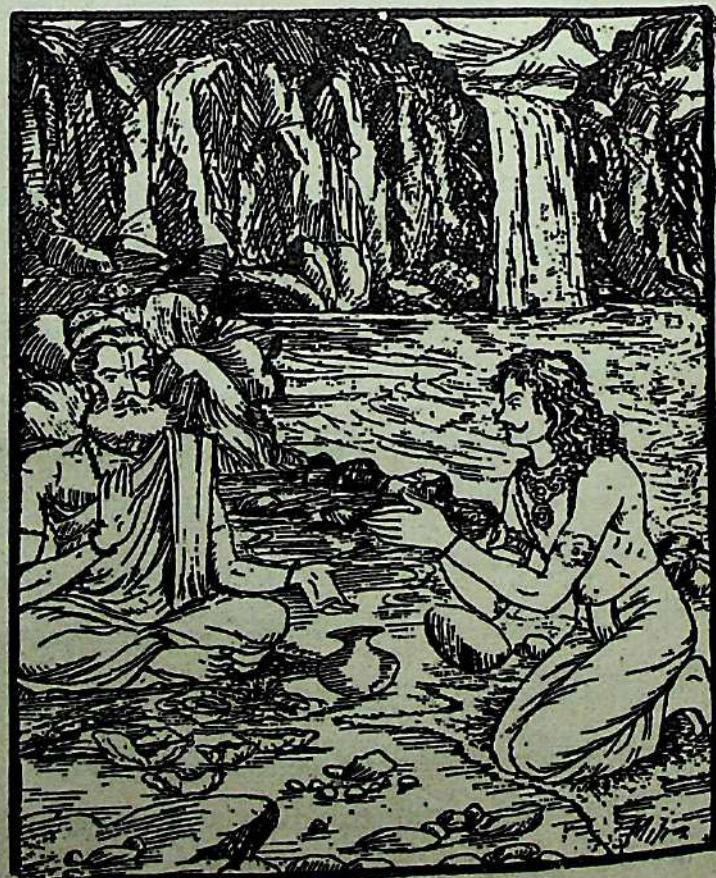
यह सुनकर ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—‘मुने ! भीष्मजीके साथ पुलस्त्य ऋषिका समागम कैसे हुआ ? पुलस्त्यमुनि तो ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। मनुष्योंको उनका दर्शन होना दुर्लभ है। महाभाग ! भीष्मजीको जिस स्थानपर और जिस प्रकार पुलस्त्यजीका दर्शन हुआ, वह सब हमें बतलाइये ।’

सूतजीने कहा—महात्माओ ! साधुओंका हित करनेवाली विश्वपावनी महाभागा गङ्गाजी जहाँ पर्वत-मालाओंको भेदकर बड़े वेगसे बाहर निकली हैं, वह महान् तीर्थ गङ्गाद्वारके नामसे विख्यात है। पितृभक्त भीष्मजी वहीं निवास करते थे। वे ज्ञानोपदेश सुननेकी इच्छासे बहुत दिनोंसे महापुरुषोंके नियमका पालन करते थे। स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा देवताओं और पितरोंकी तृप्ति तथा अपने शरीरका शोषण करते हुए भीष्मजीके ऊपर भगवान् ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। वे अपने पुत्र मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजीसे इस प्रकार बोले—‘बेटा ! तुम कुरुवंशका भार वहन करनेवाले वीरवर देवत्रतके, जिन्हें भीष्म भी कहते हैं, समीप जाओ। उन्हें तपस्यासे निवृत्त करो और इसका कारण भी बतलाओ। महाभाग भीष्म अपनी पितृभक्तिके कारण भगवान्का ध्यान करते हुए गङ्गाद्वारमें निवास करते हैं। उनके मनमें जो-जो कामना हो, उसे शीघ्र पूर्ण करो; विलम्ब नहीं होना चाहिये ।’

पितामहका वचन सुनकर मुनिवर पुलस्त्यजी गङ्गाद्वारमें आये और भीष्मजीसे इस प्रकार बोले—‘वीर ! तुम्हारा कल्याण हो; तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो। तुम्हारी तपस्यासे साक्षात् भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न हुए हैं। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वरदान दूँगा।’ पुलस्त्यजीका वचन मन और कानोंको सुख पहुँचानेवाला था। उसे सुनकर भीष्मने आँखें खोल दीं और देखा पुलस्त्यजी सामने खड़े हैं। उन्हें देखते ही भीष्मजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए उन मुनिश्रेष्ठको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—‘भगवन् ! आज मेरा जन्म सफल हो गया। यह दिन बहुत ही सुन्दर है; क्योंकि आज आपके विश्ववन्द्य

चरणोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ है। आज आपने दर्शन दिया और विशेषतः मुझे वरदान देनेके लिये गङ्गाजीके तटपर पदार्पण किया; इतनेसे ही मुझे अपनी तपस्याका सारा फल मिल गया। यह कुशकी चटाई है, इसे मैंने अपने हाथों बनाया है और [जहाँतक हो सका है] इस बातका भी प्रयत्न किया है कि यह बैठनेवालेके लिये आराम देनेवाली हो; अतः आप इसपर विराजमान हों। यह पलाशके दोनेमें अर्ध प्रस्तुत किया गया है; इसमें दूब, चावल, फूल, कुश, सरसों, दही, शहद, जौ और दूध भी मिले हुए हैं। प्राचीन कालके ऋषियोंने यह अष्टाङ्ग अर्ध ही अतिथिको अर्पण करनेयोग्य बतलाया है।’

अमिततेजस्वी भीष्मके ये वचन सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि कुशासनपर बैठ गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पाद्य और अर्ध स्वीकार किया। भीष्मजीके शिष्टाचारसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। वे प्रसन्न होकर बोले—‘महाभाग ! तुम सत्यवादी, दानशील और सत्यप्रतिज्ञ राजा हो। तुम्हारे अंदर लज्जा, मैत्री और क्षमा आदि सद्गुण शोभा पा रहे हैं। तुम अपने पराक्रमसे



शत्रुओंको दमन करनेमें समर्थ हो । साथ ही धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, मधुरभाषी, सम्मानके योग्य पुरुषोंको सम्मान देनेवाले, विद्वान्, ब्राह्मणभक्त तथा साधुओंपर स्नेह रखनेवाले हो । वत्स ! तुम प्रणामपूर्वक मेरी शरण आये हो; अतः मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम जो चाहो, पूछो; मैं तुम्हारे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर दूँगा ।'

भीष्मजीने कहा—भगवन् ! पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीने किस स्थानपर रहकर देवताओं आदिकी सृष्टि की थी, यह मुझे बताइये । उन महात्माने कैसे ऋषियों तथा देवताओंको उत्पन्न किया ? कैसे पृथ्वी बनायी ? किस तरह आकाशकी रचना की और किस प्रकार इन समुद्रोंको प्रकट किया ? भयङ्कर पर्वत, वन और नगर कैसे बनाये ? मुनियों, प्रजापतियों, श्रेष्ठ सप्तर्षियों और भिन्न-भिन्न वर्णोंको, वायुको, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, तीर्थों, नदियों, सूर्यादि ग्रहों तथा तारोंको भगवान् ब्रह्माने किस तरह उत्पन्न किया ? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये ।

पुलस्त्यजीने कहा—पुरुषश्रेष्ठ ! भगवान् ब्रह्मा साक्षात् परमात्मा हैं । वे परसे भी पर तथा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । उनमें रूप और वर्ण आदिका अभाव है । वे यद्यपि सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि ब्रह्मरूपसे इस विश्वकी उत्पत्ति करनेके कारण विद्वानोंके द्वारा ब्रह्मा कहलाते हैं । उन्होंने पूर्वकालमें जिस प्रकार सृष्टि-रचना की, वह सब मैं बता रहा हूँ । सुनो, सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब जगत्के स्वामी ब्रह्माजी कमलके आसनसे उठे, तब सबसे पहले उन्होंने महतत्त्वको प्रकट किया; फिर महतत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न हुआ, जो कर्मेन्द्रियोंसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा पञ्चभूतोंका कारण है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत हैं । इनमेंसे एक-एकके स्वरूपका क्रमशः वर्णन करता हूँ । [भूतादि नामक तामस अहङ्कारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे शब्द गुणवाले आकाशका प्रादुर्भाव हुआ ।] भूतादि (तामस अहङ्कार) ने शब्द-तन्मात्रारूप

आकाशको सब ओरसे आच्छादित किया । [तब शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राकी रचना की ।] उससे अत्यन्त बलवान् वायुका प्राकट्य हुआ, जिसका गुण स्पर्श माना गया है । तंदनन्तर आकाशसे आच्छादित होनेपर वायु-तत्त्वमें विकार आया और उसने रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की । वह वायुसे अग्निके रूपमें प्रकट हुई । रूप उसका गुण कहलाता है । तत्पश्चात् स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको सब ओरसे आवृत किया । इससे अग्नि-तत्त्वने विकारको प्राप्त होकर रस-तन्मात्राको उत्पन्न किया । उससे जलकी उत्पत्ति हुई, जिसका गुण रस माना गया है । फिर रूप-तन्मात्रावाले तेजने रस-तन्मात्रारूप जल-तत्त्वको सब ओरसे आच्छादित किया । इससे विकृत होकर जलतत्त्वने गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की, जिससे यह पृथ्वी उत्पन्न हुई । पृथ्वीका गुण गन्ध माना गया है । इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं [क्योंकि वे राजस अहङ्कारसे प्रकट हुई हैं] । इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं [क्योंकि उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहङ्कारसे हुई है] । इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन—ये वैकारिक माने गये हैं । त्वचा, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँच इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंका अनुभव करानेके साधन हैं । अतः इन पाँचोंको बुद्धियुक्त अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं । गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और वाक्—ये क्रमशः मल-त्याग, मैथुनजनित सुख, शिल्प-निर्माण (हस्तकौशल), गमन और शब्दोच्चारण—इन कर्मोंमें सहायक हैं । इसलिये इन्हें कर्मेन्द्रिय माना गया है ।

वीर ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं अर्थात् आकाशका गुण शब्द; वायुके गुण शब्द और स्पर्श; तेजके गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जलके शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये सभी गुण हैं । उक्त पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं* । अर्थात् सुख, दुःख और मोहसे युक्त हैं । अतः

* एक-दूसरेसे मिलनेपर सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं । पृथक्-पृथक् देखनेपर तो पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है ।

ये विशेष कहलाते हैं। ये पाँचों भूत अलग-अलग रहनेपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। अतः परस्पर संगठित हुए बिना—पूर्णतया मिले बिना ये प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हो सके। इसलिये [परमपुरुष परमात्माने संकल्पके द्वारा इनमें प्रवेश किया। फिर तो] महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व पुरुषद्वारा अधिष्ठित होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार परस्पर मिलकर तथा एक दूसरेका आश्रय ले उन्होंने अप्णकी उत्पत्ति की। भीष्मजी ! उस अप्णमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और तारोंसहित सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त प्राणी उत्पन्न हुए हैं। वह अप्ण पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दसगुने अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस अहङ्कारसे आवृत है। भूतादि महत्तत्त्वसे घिरा है। तथा इन सबके सहित महत्तत्त्व भी अव्यक्त (प्रधान या मूल प्रकृति) के द्वारा आवृत है।

भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी

रहती है, तबतक वे ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। वे विष्णु सत्त्वगुण धारण किये रहते हैं; उनके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। राजेन्द्र ! जब कल्पका अन्त होता है, तब वे ही अपना तमःप्रधान रौद्र रूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतोंका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमें निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। फिर जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं। * वे प्रभु स्थान होकर स्वयं अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक होकर पालनीय रूपसे अपना ही पालन करते हैं और संहारकारी होकर स्वयं अपना ही संहार करते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—सब वे ही हैं; क्योंकि अविनाशी विष्णु ही सब भूतोंके ईश्वर और विश्वरूप हैं। इसलिये प्राणियोंमें स्थित सर्ग आदि भी उन्हींके सहायक हैं।



ब्रह्माजीकी आयु तथा युग आदिका कालमान, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका रसातलसे उद्धार और ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! ब्रह्माजी सर्वज्ञ एवं साक्षात् नारायणके स्वरूप हैं। वे उपचारसे—आरोपद्वारा ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं। वास्तवमें तो वे नित्य ही हैं। अपने निजी मानसे उनकी आयु सौ वर्षकी मानी गयी है। वह ब्रह्माजीकी आयु 'पर' कहलाती है, उसके आधे भागको परार्थ कहते हैं। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओंकी एक कला और तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तोंकी कालको मनुष्यका एक दिन-रात माना गया है। तीस दिन-रातका एक मास होता है। एक मासमें दो पक्ष होते हैं। छः महीनोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता

है। अयन दो है, दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण उनका दिन है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंकी चार युग होते हैं, जो क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके नामसे प्रसिद्ध हैं। अब इन युगोंका वर्ष-विभाग सुनो। पुरातत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष कहते हैं कि सत्ययुग आदिका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष हैं। प्रत्येक युगके आरम्भमें उतने ही सौ वर्षोंकी सन्ध्या कही जाती है और युगके अन्तमें सन्ध्यांश होता है। सन्ध्यांशका मान भी उतना ही है, जितना सन्ध्याका। नृपश्रेष्ठ ! सन्ध्या और सन्ध्यांशके

* सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ (२। ११४)

बीचका जो समय है, उसीको युग समझना चाहिये। वही सत्ययुग और त्रेता आदिके नामसे प्रसिद्ध है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये सब मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंको ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है।*

राजन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनके समयका परिमाण सुनो। सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र—ये एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं तथा अन्तमें साथ-ही-साथ इनका संहार भी होता है। इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है।† यही मनु और देवताओं आदिका समय है। इस प्रकार दिव्य वर्षगणनाके अनुसार आठ लाख, बावन हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। महामते! मानव-वर्षोंसे गणना करनेपर मन्वन्तरका कालमान पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्ष होता है। इससे अधिक नहीं।‡ इस कालको चौदह गुना करनेपर ब्रह्माके एक दिनका मान होता है। उसके अन्तमें नैमित्तिक नामवाला ब्राह्म-प्रलय होता है। उस समय भूलोंक, भुवलोंक और स्वलोंक—सम्पूर्ण त्रिलोकी दग्ध होने लगती है और महलोंकमें निवास करनेवाले

पुरुष आँचसे सन्तास होकर जनलोकमें चले जाते हैं। दिनके बराबर ही अपनी रात बीत जानेपर ब्रह्माजी पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं। इस प्रकार [पक्ष, मास आदिके क्रमसे धीरे-धीरे] ब्रह्माजीका एक वर्ष व्यतीत होता है तथा इसी क्रमसे उनके सौ वर्ष भी पूरे हो जाते हैं। सौ वर्ष ही उन महात्माकी पूरी आयु है।

भीष्मजीने कहा—महामुने! कल्पके आदिमें नारायणसंज्ञक भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की, उसका आप वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! सबकी उत्पत्तिके कारण और अनादि भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजावर्गकी सृष्टि की, वह बताता हूँ; सुनो। जब पिछले कल्पका अन्त हुआ, उस समय रात्रिमें सोकर उठनेपर सत्त्वगुणके उद्देश्यसे युक्त प्रभु ब्रह्माजीने देखा कि सम्पूर्ण लोक सूना हो रहा है। तब उन्होंने यह जानकर कि पृथ्वी एकार्णवके जलमें ढूब गयी है और इस समय पानीके भीतर ही स्थित है, उसको निकालनेकी इच्छासे कुछ देरतक विचार किया। फिर वे यज्ञमय वाराहका स्वरूप धारणकर जलके भीतर प्रविष्ट हुए। भगवान्को पाताललोकमें आया देख पृथ्वीदेवी भक्तिसे विनम्र हो

* युगों तथा ब्रह्माके दिनकी वर्ष-संख्या इस प्रकार समझनी चाहिये। सत्ययुगका मान चार हजार दिव्य वर्ष है, उसके आरम्भमें चार सौ वर्षोंकी सम्भ्या और अन्तमें चार सौ वर्षोंका सम्भ्यांश होता है; इस प्रकार सम्भ्या और सम्भ्यांशसहित सत्ययुगकी अवधि चार हजार आठ सौ (४८००) दिव्य वर्षोंकी है। इसी तरह त्रेताका युगमान ३००० दिव्य वर्ष, सम्भ्या-मान ३०० वर्ष और सम्भ्यांश-मान ३०० वर्ष है; अतः उसकी पूरी अवधि ३६०० दिव्य वर्षोंकी हुई। द्वापरका युगमान २००० वर्ष, सम्भ्या-मान २०० वर्ष और सम्भ्यांश-मान २०० वर्ष है; अतः उसका मान २४०० दिव्य वर्षोंका हुआ। कलियुगका युगमान १००० वर्ष, सम्भ्या-मान १०० वर्ष और सम्भ्यांश-मान १०० वर्ष है; इसलिये उसकी आयु १२०० दिव्य वर्षोंकी हुई। देवताओंका वर्ष मानव-वर्षसे ३६० गुना अधिक और सम्भ्यांश-मान १०० वर्ष है; अतः मानव-वर्षके अनुसार कलियुगकी आयु ४,३२,००० वर्षोंकी, द्वापरकी ८,६४,००० वर्षोंकी, त्रेताकी १२,९६,००० वर्षोंकी तथा सत्ययुगकी आयु १७,२८,००० वर्षोंकी है। इनका कुल योग ४३,२०,००० वर्ष हुआ। यह एक चतुर्युगका मान है। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंका अर्थात् हमारे ४,३२,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है।

† ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं; इकहत्तर चतुर्युगोंके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं। परन्तु ब्रह्माका दिन एक हजार चतुर्युगोंका माना गया है; अतः छः चतुर्युग और बचे। छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्षोंका होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

‡ यह वर्ष-संख्या पूरे इकहत्तर चतुर्युगोंका मन्वन्तर मानकर निकाली गयी है; इस हिसाबसे ब्रह्माजीके दिनका मान ४,२९,४०,८०,००० (चार अरब, उनतीस करोड़, चालीस लाख, अस्सी हजार) मानव-वर्ष होता है। परन्तु पहले बता आये हैं कि इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका मन्वन्तर होता है। वह अधिक काल है—छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग। उसको भी जोड़ लेनेपर मन्वन्तरका काल ऊपर दी हुई संख्यासे अधिक होगा और उस हिसाबसे ब्रह्माजीका दिनमान चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका ही होगा।

गयीं और उनकी स्तुति करने लगीं।

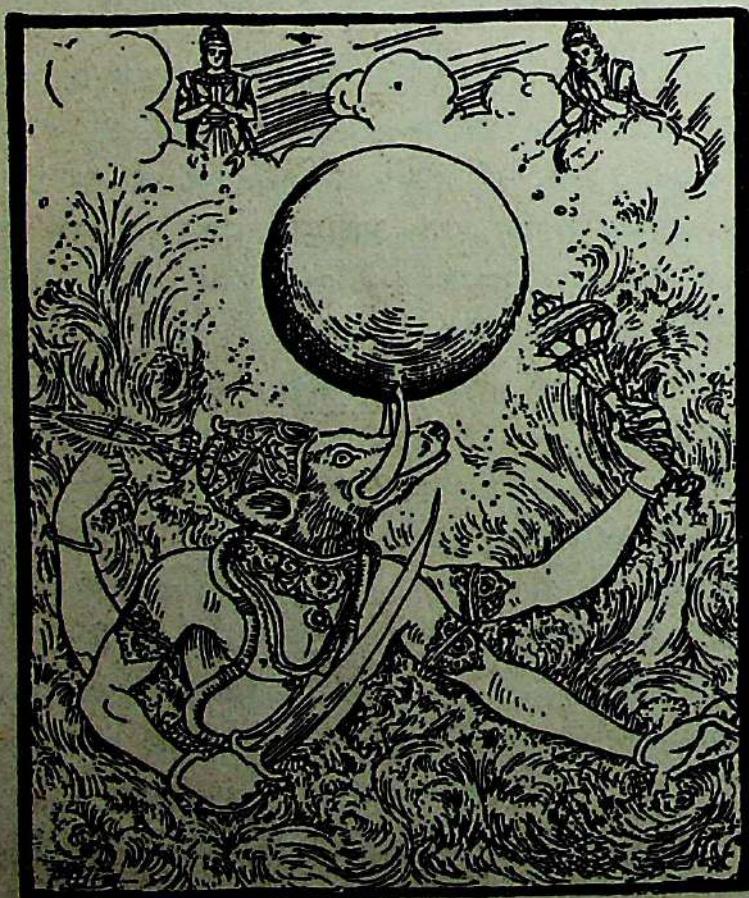
पृथ्वी बोलीं—भगवन्! आप सर्वभूतस्वरूप परमात्मा हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप इस पाताललोकसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। परमात्मन्! आपको नमस्कार है। आप सबके अन्तर्यामी हैं, आपको प्रणाम है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) आपके ही स्वरूप हैं। काल भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! जगत्की सृष्टि आदिके समय आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, यद्यपि आप इन सबसे परे हैं। मुमुक्षु पुरुष आपकी आराधना करके मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गये हैं। भला, आप वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष पा सकता है। जो मनसे ग्रहण करनेयोग्य, नेत्र आदि इन्द्रियोंद्वारा अनुभव करनेयोग्य तथा बुद्धिके द्वारा विचारणीय है, वह सब आपहीका रूप है। नाथ! आप ही मेरे उपादान हैं, आप ही आधार हैं, आपने ही मेरी सृष्टि की है तथा मैं आपहीकी शरणमें हूँ; इसीलिये इस जगत्के लोग मुझे 'माधवी' कहते हैं।

पृथ्वीने जब इस प्रकार स्तुति की, तब उन परम

कान्तिमान् भगवान् धरणीधरने घर्घर स्वरमें गर्जना की। सामवेद ही उनकी उस ध्वनिके रूपमें प्रकट हुआ। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समानं शोभा पा रहे थे तथा शरीर कमलके पत्तेके समान इयाम रंगका था। उन महावराहरूपधारी भगवान्-ने पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर उठा लिया और रसातलसे वे ऊपरकी ओर उठे। उस समय उनके मुखसे निकली हुई साँसके आधातसे उछले हुए उस प्रलयकालीन जलने जनलोकमें रहनेवाले सनन्दन आदि मुनियोंको भिंगोकर निष्पाप कर दिया। [निष्पाप तो वे थे ही, उन्हें और भी पवित्र बना दिया।] भगवान् महावराहका उदर जलसे भीगा हुआ था। जिस समय वे अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए पृथ्वीको लेकर उठने लगे, उस समय आकाशमें स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषियोंने कहा—जनेश्वरोंके भी परमेश्वर केशव! आप सबके प्रभु हैं। गदा, शङ्ख, उत्तम खड़ और चक्र धारण करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहारके कारण तथा ईश्वर भी आप ही हैं। जिसे परमपद कहते हैं, वह भी आपसे भिन्न नहीं है। प्रभो! आपका प्रभाव अतुलनीय है। पृथ्वी और आकाशके बीच जितना अन्तर है, वह सब आपके ही शरीरसे व्याप्त है। इतना ही नहीं, यह सम्पूर्ण जगत् भी आपसे व्याप्त है। भगवन्! आप इस विश्वका हित-साधन कीजिये। जगदीश्वर! एकमात्र आप ही परमात्मा हैं, आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। आपकी ही महिमा है, जिससे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है। यह सारा जगत् ज्ञानस्वरूप है, तो भी अज्ञानी मनुष्य इसे पदार्थरूप देखते हैं; इसीलिये उन्हें संसार-समुद्रमें भटकना पड़ता है। परन्तु परमेश्वर! जो लोग विज्ञानवेत्ता हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे समस्त संसारको ज्ञानमय ही देखते हैं, आपका स्वरूप ही समझते हैं। सर्वभूतस्वरूप परमात्मन्! आप प्रसन्न होइये। आपका स्वरूप अप्रमेय है। प्रभो! भगवन्! आप सबके उद्धवके लिये इस पृथ्वीका उद्धार एवं सम्पूर्ण जगत्का कल्याण कीजिये।

राजन्! सनकादि मुनि जब इस प्रकार स्तुति कर



रहे थे, उस समय पृथ्वीको धारण करनेवाले परमात्मा महावराह शीघ्र ही इस वसुन्धराको ऊपर उठा लाये और उसे महासागरके जलपर स्थापित किया। उस जलराशिके ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बड़ी नौकाकी भाँति स्थित हुई। तत्पश्चात् भगवान् ने पृथ्वीके कई विभाग करके सात द्वीपोंका निर्माण किया तथा भूलोंक, भुवलोंक, स्वलोंक और महलोंक—इन चारों लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना की। तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्से कहा—‘प्रभो ! मैंने इस समय जिन प्रथान-प्रथान असुरोंको वरदान दिया है, उनको देवताओंकी भलाईके लिये आप मार डालें। मैं जो सृष्टि रचूँगा, उसका आप पालन करें।’ उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णु ‘तथास्तु’ कहकर चले गये और ब्रह्माजीने देवता आदि प्राणियोंकी सृष्टि आरम्भ की। महत्त्वकी उत्पत्तिको ही ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि समझना चाहिये। तन्मात्राओंका आविर्भाव दूसरी सृष्टि है, उसे भूतसर्ग भी कहते हैं। वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कारसे जो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तीसरी सृष्टि है; उसीका दूसरा नाम ऐन्द्रिय सर्ग है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग है, जो अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ है। चौथी सृष्टिका नाम है मुख्य सर्ग। पर्वत और वृक्ष आदि स्थावर वस्तुओंको मुख्य कहते हैं। तिर्यक्स्रोत कहकर जिनका वर्णन किया गया है, वे (पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि) ही पाँचवीं सृष्टिके अन्तर्गत हैं; उन्हें तिर्यक् योनि भी कहते हैं। तत्पश्चात् ऊर्ध्वरेता देवताओंका सर्ग है, वही छठी सृष्टि है और उसीको देवसर्ग भी कहते हैं। तदनन्तर सातवीं सृष्टि अर्वाक्स्रोताओंकी है, वही मानव-सर्ग कहलाता है। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, वह सात्त्विक भी है और तामस भी। इन आठ सगोंमेंसे अन्तिम पाँच वैकृत-सर्ग माने गये हैं तथा आरम्भके तीन सर्ग प्राकृत बताये गये हैं। नवाँ कौमार सर्ग है, वह प्राकृत भी है वैकृत भी। इस प्रकार जगत्‌की रचनामें प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापतिके ये प्राकृत और वैकृत नामक नौ सर्ग तुम्हें बतलाये गये, जो जगत्‌के मूल कारण हैं। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव ! आपने देवताओं आदिकी सृष्टि थोड़ेमें ही बतायी है। मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं उसे आपके मुखसे विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंसे प्रभावित रहती है; अतः प्रलयकालमें सबका संहार हो जानेपर भी वह उन कर्मोंकि संस्कारसे मुक्त नहीं हो पाती। जब ब्रह्माजी सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए, उस समय उनसे देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न हुई; वे चारों [ब्रह्माजीके मानसिक संकल्पसे प्रकट होनेके कारण] मानसी प्रजा कहलायीं। तदनन्तर प्रजापतिने देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी तथा जलकी भी सृष्टि करनेकी इच्छासे अपने शरीरका उपयोग किया। उस समय सृष्टिकी इच्छावाले मुक्तात्मा प्रजापतिकी जङ्घासे पहले दुरात्मा असुरोंकी उत्पत्ति हुई। उनकी सृष्टिके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी वयस् (आयु)से इच्छानुसार वयों (पक्षियों) को उत्पन्न किया। फिर अपनी भुजाओंसे भेड़ों और मुखसे बकरोंकी रचना की। इसी प्रकार अपने पेटसे गायों और भैंसोंको तथा पैरोंसे घोड़े, हाथी, गदहे, नीलगाय, हरिन, ऊंट, खच्चर तथा दूसरे-दूसरे पशुओंकी सृष्टि की। ब्रह्माजीकी रोमावलियोंसे फल, मूल तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंका प्रादुर्भाव हुआ। गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृतस्तोम, रथन्तर तथा अग्निष्टोम यज्ञको प्रजापतिने अपने पूर्ववर्ती मुखसे प्रकट किया। यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम और उक्थकी दक्षिणवाले मुखसे रचना की। सामवेद जगती छन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप्य और अतिरात्रभागकी सृष्टि पश्चिम मुखसे की तथा एकविंशस्तोम, अर्थर्ववेद, आप्सोर्याम, अनुष्टुप् छन्द और वैराजको उत्तरवर्ती मुखसे उत्पन्न किया। छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, सब प्रजापतिके विभिन्न अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। कल्पके आदिमें प्रजापति ब्रह्माने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंकी सृष्टि करके फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, राक्षस, सिंह, पक्षी, मृग और सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य और अनित्य जितना

भी यह चराचर जगत् है, सबको आदिकर्ता भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न किया। उन उत्पन्न हुए प्राणियोंमें से जिन्होंने पूर्वकल्पमें जैसे कर्म किये थे, वे पुनः बारम्बार जन्म लेकर वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार भगवान् विधाताने ही इन्द्रियोंके विषयों, भूतों और शरीरोंमें विभिन्नता एवं पृथक्-पृथक् व्यवहार उत्पन्न किया। उन्होंने कल्पके आरम्भमें वेदके अनुसार देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप और कर्तव्यका विस्तार किया।

ऋषियों तथा अन्यान्य प्राणियोंके भी वेदानुकूल नाम और उनके यथायोग्य कर्मोंको भी ब्रह्माजीने ही निश्चित किया। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋष्टुओंके बारम्बार आनेपर उनके विभिन्न प्रकारके चिह्न पहलेके समान ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार सृष्टिके आरम्भमें सारे पदार्थ पूर्व कल्पके अनुसार ही दृष्टिगोचर होते हैं। सृष्टिके लिये इच्छुक तथा सृष्टिकी शक्तिसे युक्त ब्रह्माजी कल्पके आदिमें बारम्बार ऐसी ही सृष्टि किया करते हैं।



यज्ञके लिये ब्राह्मणादि वर्णों तथा अन्नकी सृष्टि, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी संतान-परम्पराका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अर्वाक्स्रोत नामक सर्गका जो मानव सर्गके नामसे भी प्रसिद्ध है, संक्षेपसे वर्णन किया; अब उसीको विस्तारके साथ कहिये। ब्रह्माजीने मनुष्योंकी सृष्टि किस प्रकार की? महामुने! प्रजापतिने चारों वर्णों तथा उनके गुणोंको कैसे उत्पन्न किया? और ब्राह्मणादि वर्णोंके कौन-कौन-से कर्म माने गये हैं? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुश्रेष्ठ! सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया। इनमें ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय वक्षःस्थलसे, वैश्य जाँघोंसे और शूद्र ब्रह्माजीके पैरोंसे उत्पन्न हुए। महाराज! ये चारों वर्ण यज्ञके उत्तम साधन हैं; अतः ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानकी सिद्धिके लिये ही इन सबकी सृष्टि की। यज्ञसे तृप्त होकर देवतालोग जलकी वृष्टि करते हैं, जिससे मनुष्योंकी भी तृप्ति होती है; अतः धर्ममय यज्ञ सदा ही कल्याणका हेतु है। जो लोग सदा अपने वर्णोंचित् कर्ममें लगे रहते हैं, जिन्होंने धर्म-विरुद्ध आचरणोंका परित्याग कर दिया है तथा जो सन्मार्गपर चलनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य ही यज्ञका यथावत् अनुष्ठान करते हैं। राजन्! [यज्ञके द्वारा] मनुष्य इस मानव-देहके त्यागके पश्चात् स्वर्ग और अपवर्ग भी प्राप्त कर सकते हैं तथा और भी जिस-जिस स्थानको पानेकी उन्हें इच्छा हो, उसी-उसीमें वे जा सकते हैं। नुपश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वाया चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाके

अनुसार रची हुई प्रजा उत्तम श्रद्धाके साथ श्रेष्ठ आचारका पालन करने लगी। वह इच्छानुसार जहाँ चाहती, रहती थी। उसे किसी प्रकारकी बाधा नहीं सताती थी। समस्त प्रजाका अन्तःकरण शुद्ध था। वह स्वभावसे ही परम पवित्र थी। धर्मानुष्ठानके कारण उसकी पवित्रता और भी बढ़ गयी थी। प्रजाओंके पवित्र अन्तःकरणमें भगवान् श्रीहरिका निवास होनेके कारण सबको शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे सब लोग श्रीहरिके 'परब्रह्म' नामक परमपदका साक्षात्कार कर लेते थे।

तदनन्तर प्रजा जीविकाके साधन उद्योग-धंधे और खेती आदिका काम करने लगी। राजन्! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, ज्वार, कोदो, चेना, उड़द, मूँग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्रामीण अन्नोंकी जातियाँ हैं। ग्रामीण और जंगली दोनों प्रकारके मिलाकर चौदह अन्न यज्ञके उपयोगमें आनेवाले माने गये हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, महीन धान्य, तिल, सातवीं कँगनी और आठवीं कुलथी—ये ग्रामीण अन्न हैं तथा साँवाँ, तिन्नीका चावल, जर्तिल (वनतिल), गवेधु, वेणुयव और मक्का—ये छः जंगली अन्न हैं। ये चौदह अन्न यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं तथा यज्ञ ही इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। यज्ञके साथ ये अन्न प्रजाकी उत्पत्ति और वृद्धिके परम कारण हैं; इसलिये इहलोक और परलोकके

ज्ञाता विद्वान् पुरुष इन्हींके द्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहते हैं। नृपश्रेष्ठ ! प्रतिदिन किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक तथा उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाला होता है। [कृषि आदि जीविकाके साधनोंके सिद्ध हो जानेपर] प्रजापतिने प्रजाके स्थान और गुणोंके अनुसार उनमें धर्म-मर्यादाकी स्थापना की। फिर वर्ण और आश्रमोंके पृथक्-पृथक् धर्म निश्चित किये तथा स्वधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाले सभी वर्णोंके लिये पुण्यमय लोकोंकी रचना की।

योगियोंको अमृतस्वरूप ब्रह्मधामकी प्राप्ति होती है, जो परम पद माना गया है। जो योगी सदा एकान्तमें रहकर यत्पूर्वक ध्यानमें लगे रहते हैं, उन्हें वह उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है, जिसका ज्ञानीजन ही साक्षात्कार कर पाते हैं। तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, महारौव, रौव, घोर असिपत्रवन, कालसूत्र और अवीचिमान् आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा, यज्ञोंका उच्छेद तथा अपने धर्मका परित्याग करनेवाले पुरुषोंके स्थान बताये गये हैं।

ब्रह्माजीने पहले मनके संकल्पसे ही चराचर प्राणियोंकी सृष्टि की; किन्तु जब इस प्रकार उनकी सारी प्रजा [पुत्र, पौत्र आदिके क्रमसे] अधिक न बढ़ सकी, तब उन्होंने अपने ही सदृश अन्य मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—भूगु, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ। पुराणमें ये नौ* ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। इन भूगु आदिके भी पहले जिन सनन्दन आदि पुत्रोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया था, उनके मनमें पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा नहीं हुई; इसलिये वे सृष्टि-रचनाके कार्यमें नहीं फँसे। उन सबको स्वभावतः विज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी। वे मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित और वीतराग थे। इस प्रकार संसारकी सृष्टिके कार्यसे उनके उदासीन हो जानेपर महात्मा ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ, उनकी भौंहें तन गयीं और ललाट क्रोधसे उद्धीस हो उठा। इसी समय उनके ललाटसे मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए।

उनका आधा शरीर खीका था और आधा पुरुषका। वे बड़े प्रचण्ड थे और उनका शरीर बड़ा विशाल था। तब ब्रह्माजी उन्हें यह आदेश देकर कि 'तुम अपने शरीरके दो भाग करो' वहाँसे अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहनेपर रुद्रने अपने शरीरके खी और पुरुषरूप दोनों भागोंको पृथक्-पृथक् कर दिया और फिर पुरुषभागको ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया। इसी प्रकार खीभागको भी अनेकों रूपोंमें प्रकट किया। खी और पुरुष दोनों भागोंके वे भिन्न-भिन्न रूप सौम्य, क्रूर, शान्त, इयाम और गौर आदि नाना प्रकारके थे।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपनेसे उत्पन्न, अपने ही स्वरूपभूत स्वायम्भुवको प्रजापालनके लिये प्रथम मनु बनाया। स्वायम्भुव मनुने शतरूपा नामकी खीको, जो तपस्याके कारण पापरहित थी, अपनी पलीके रूपमें खीकार किया। देवी शतरूपाने स्वायम्भुव मनुसे दो पुत्र और दो कन्याओंको जन्म दिया। पुत्रोंके नाम थे—प्रियब्रत और उत्तानपाद तथा कन्याएँ प्रसूति और आकूतिके नामसे प्रसिद्ध हुईं। मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षके साथ और आकूतिका रुचि प्रजापतिके साथ कर दिया। दक्षने प्रसूतिके गर्भसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके नाम हैं—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति। इन दक्ष-कन्याओंको भगवान् धर्मने अपनी पतियोंके रूपमें ग्रहण किया। इनसे छोटी ग्यारह कन्याएँ और थीं, जो ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे प्रसिद्ध हुईं। नृपश्रेष्ठ ! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः भूगु, शिव, मरीचि, अङ्गिरा और मैने (पुलस्त्य) तथा पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अश्वि तथा पितरोंने ग्रहण किया। श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतेने नियमको, तुष्टिने सन्तोषको और पुष्टिने लोभको जन्म दिया। मेधाने श्रुतको, क्रियाने दण्ड, नय और विनयको, बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने अपने पुत्र

* संभवतः पुलस्त्यजीको मिलाकर ही नौ ब्रह्मा माने गये हैं।

व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको, सिद्धिने सुखको और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया। ये ही धर्मके पुत्र हैं। कामसे उसकी पत्नी नन्दीने हर्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, यह धर्मका पौत्र था। भृगुकी पत्नी ख्यातिने लक्ष्मीको जन्म दिया, जो देवाधिदेव भगवान् नारायणकी पत्नी हैं। भगवान् रुद्रने दक्षसुता सतीको पत्नीरूपमें ग्रहण किया, जिन्होंने अपने पितापर खीझकर शरीर त्याग दिया।

अधर्मकी खीका नाम हिसा है। उससे अनृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। फिर उन दोनोंने भय और नरक नामक पुत्र और माया

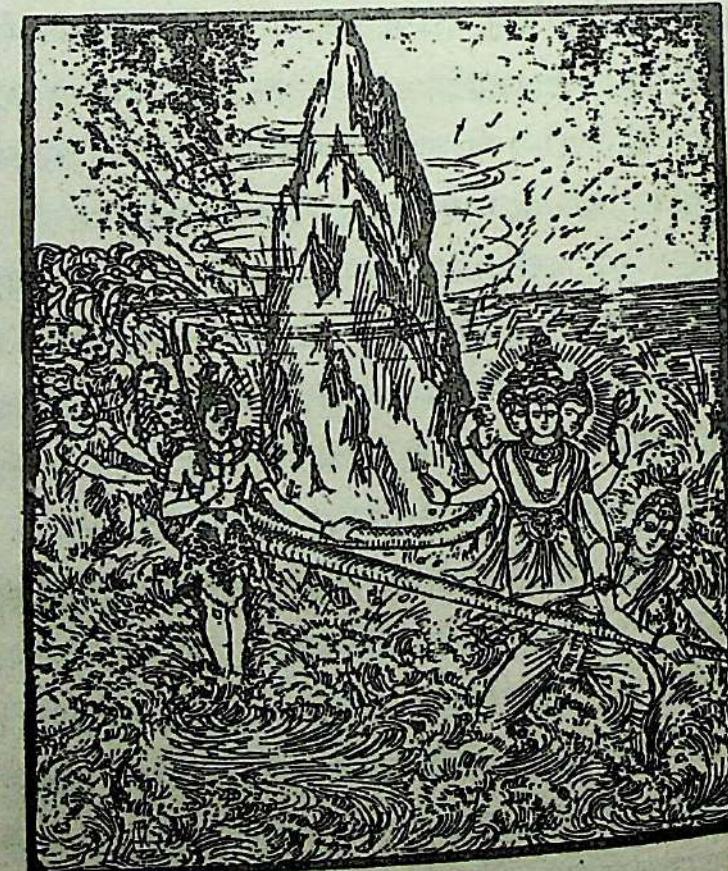
तथा वेदना नामकी कन्याओंको उत्पन्न किया। माया भयकी और वेदना नरककी पत्नी हुई। उनमेंसे मायाने समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले मृत्यु नामक पुत्रको जन्म दिया और वेदनासे नरकके अंशसे दुःखकी उत्पत्ति हुई। फिर मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधका जन्म हुआ। ये सभी अर्धमस्वरूप हैं और दुःखोत्तर नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके न कोई स्त्री है न पुत्र। ये सब-के-सब नैषिक ब्रह्मचारी हैं। राजकुमार भीष्म! ये ब्रह्माजीके रौद्र रूप हैं और ये ही संसारके नित्य प्रलयमें कारण होते हैं।



लक्ष्मीजीके प्रादुर्भावकी कथा, समुद्र-मन्थन और अमृत-प्राप्ति

भीष्मजीने कहा—मुने ! मैंने तो सुना था लक्ष्मीजी क्षीर-समुद्रसे प्रकट हुई हैं; फिर आपने यह कैसे कहा कि वे भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे उत्पन्न हुई ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। लक्ष्मीजीके जन्मका सम्बन्ध समुद्रसे है, यह बात मैंने भी ब्रह्माजीके मुखसे सुन रखी है। एक समयकी बात है, दैत्यों और दानवोंने बड़ी भारी सेना लेकर देवताओंपर चढ़ाई की। उस युद्धमें दैत्योंके सामने देवता परास्त हो गये। तब इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अग्निको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ उन्होंने अपना सारा हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—‘तुमलोग मेरे साथ भगवान्‌की शरणमें चलो।’ यह कहकर वे सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले क्षीर-सागरके उत्तर-तटपर गये और भगवान् वासुदेवको सम्बोधित करके बोले—‘विष्णो ! शीघ्र उठिये और इन देवताओंका कल्याण कीजिये। आपकी सहायता न मिलनेसे दानव इन्हें बारम्बार परास्त करते हैं।’ उनके ऐसा कहनेपर कमलके समान नेत्रवाले भगवान् अन्तर्यामी पुरुषोत्तमने देवताओंके शरीरकी अपूर्व अवस्था देखकर कहा—‘देवगण ! मैं तुम्हरे तेजकी वृद्धि करूँगा। मैं जो उपाय बतलाता हूँ, उसे तुमलोग करो। दैत्योंके साथ मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आओ और उन्हें क्षीरसागरमें



देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता दैत्योंके साथ सन्धि करके अमृत निकालनेके यत्नमें लग

गये। देव, दानव और दैत्य सब मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आये और उन्हें क्षीर-सागरमें डालकर मन्दराचलको मथानी एवं वासुकि नागको नेती बनाकर बड़े वेगसे मन्थन करने लगे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सब देवता एक साथ रहकर वासुकिकी पूँछकी ओर हो गये और दैत्योंको उन्होंने वासुकिके सिरकी ओर खड़ा कर दिया। भीष्मजी! वासुकिके मुखकी साँस तथा विषाग्रिसे झुल्से जानेके कारण सब दैत्य निस्तेज हो गये। क्षीर-समुद्रके बीचमें ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा तथा महातेजस्वी महादेवजी कच्छप रूपधारी श्रीविष्णुभगवान्की पीठपर खड़े हो अपनी भुजाओंसे कमलकी भाँति मन्दराचलको पकड़े हुए थे तथा स्वयं भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके क्षीर-सागरके भीतर देवताओं और दैत्योंके बीचमें स्थित थे। [वे मन्दराचलको अपनी पीठपर लिये ढूबनेसे बचाते थे।] तदनन्तर जब देवता और दानवोंने क्षीर-समुद्रका मन्थन आरम्भ किया, तब पहले-पहल उससे देवपूजित सुरभि (कामधेनु) का आविर्भाव हुआ, जो हविष्य (घी-दूध) की उत्पत्तिका स्थान मानी गयी है। तत्पश्चात् वारुणी (मदिरा) देवी प्रकट हुई, जिसके मदभरे नेत्र घूम रहे थे। वह पग-पगपर लङ्घखड़ाती चलती थी। उसे अपवित्र मानकर देवताओंने त्याग दिया। तब वह असुरोंके पास जाकर बोली—‘दानवो! मैं बल प्रदान करनेवाली देवी हूँ, तुम मुझे ग्रहण करो।’ दैत्योंने उसे ग्रहण कर लिया। इसके बाद पुनः मन्थन आरम्भ होनेपर पारिजात (कल्पवृक्ष) उत्पन्न हुआ, जो अपनी शोभासे देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला था। तदनन्तर साठ करोड़ अप्सराएँ प्रकट हुईं, जो देवता और दानवोंकी सामान्यरूपसे भोग्या हैं। जो लोग पुण्यकर्म करके देवलोकमें जाते हैं, उनका भी उनके ऊपर समान अधिकार होता है। अप्सराओंके बाद शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाले थे। उन्हें भगवान् शङ्करने अपने लिये माँगते हुए कहा—‘देवताओ! ये चन्द्रमा मेरी जटाओंके आभूषण होंगे, अतः मैंने इन्हें ले लिया।’

ब्रह्माजीने ‘बहुत अच्छा’ कहकर शङ्करजीकी बातका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् कालकूट नामक भयङ्कर विष प्रकट हुआ, उससे देवता और दानव सबको बड़ी पीड़ा हुई। तब महादेवजीने स्वेच्छासे उस विषको लेकर पी लिया। उसके पीनेसे उनके कण्ठमें काला दाग पड़ गया, तभीसे वे महेश्वर नीलकण्ठ कहलाने लगे। क्षीर-सागरसे निकले हुए उस विषका जो अंश पीनेसे बच गया था, उसे नागों (सर्पों) ने ग्रहण कर लिया।

तदनन्तर अपने हाथमें अमृतसे भरा हुआ कमण्डलु लिये धन्वन्तरिजी प्रकट हुए। वे श्वेतवस्त्र धारण किये हुए थे। वैद्यराजके दर्शनसे सबका मन स्वस्थ एवं प्रसन्न हो गया। इसके बाद उस समुद्रसे उच्चःश्रवा घोड़ा और ऐरावत नामका हाथी—ये दोनों क्रमशः प्रकट हुए। [इसके पश्चात् क्षीरसागरसे लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ, जो खिले हुए कमलपर विराजमान थीं और हाथमें कमल लिये थीं। उनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही थी। उस समय महर्षियोंने श्रीसूक्तका पाठ करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका स्तवन किया। साक्षात् क्षीर-समुद्रने [दिव्य पुरुषके रूपमें] प्रकट होकर लक्ष्मीजीको एक सुन्दर माला भेट की, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं थे। विश्वकर्मने उनके समस्त अङ्गोंमें आभूषण पहना दिये। स्नानके पश्चात् दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करके जब वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हुईं, तब इन्द्र आदि देवता तथा विद्याधर आदिने भी उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा की। तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—‘वासुदेव! मेरे द्वाग दी हुई इस लक्ष्मीदेवीको आप ही ग्रहण करें। मैंने देवताओं और दानवोंको मना कर दिया है—वे इन्हें पानेकी इच्छा नहीं करेंगे। आपने जो स्थिरतापूर्वक इस समुद्र-मन्थनके कार्यको सम्पन्न किया है, इससे आपपर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।’ यों कहकर ब्रह्माजी लक्ष्मीजीसे बोले—‘देवि! तुम भगवान् केशवके पास जाओ। मैं दिये हुए पतिको पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका उपभोग करो।’

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीजी समस्त

देवताओंके देखते-देखते श्रीहरिके वक्षःस्थलमें चली गयीं और भगवान्‌से बोलीं—‘देव ! आप कभी मेरा परित्याग न करें। सम्पूर्ण जगत्के प्रियतम ! मैं सदा आपके आदेशका पालन करती हुई आपके वक्षःस्थलमें निवास करूँगी।’ यह कहकर लक्ष्मीजीने कृपापूर्ण दृष्टिसे देवताओंकी ओर देखा, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर लक्ष्मीसे परित्यक्त होनेपर दैत्योंको बड़ा उद्घेग हुआ। उन्होंने झपटकर धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका पात्र छीन लिया। तब विष्णुने मायासे सुन्दरी रूपका रूप धारण करके दैत्योंको लुभाया और उनके निकट जाकर कहा—‘यह अमृतका कमण्डलु मुझे दे दो।’ उस त्रिभुवनसुन्दरी रूपवती नारीको देखकर दैत्योंका चित्त कामके वशीभूत हो गया। उन्होंने चुपचाप वह अमृत उस सुन्दरीके हाथमें दे दिया और खयं उसका मुँह ताकने लगे। दानवोंसे अमृत लेकर भगवान्‌ने देवताओंको दे दिया और इन्द्र आदि देवता तत्काल उस अमृतको पी गये। यह देख दैत्यगण भाँति-भाँतिके अख्ल-शाख्ल और तलवारें हाथमें लेकर देवताओंपर टूट पड़े; परन्तु देवता अमृत पीकर बलवान् हो चुके थे, उन्होंने दैत्य-सेनाको परास्त कर दिया। देवताओंकी मार पड़नेपर दैत्योंने भागकर चारों दिशाओंकी शरण ली और कितने ही पातालमें घुस गये। तब सम्पूर्ण देवता आनन्द-

मग्र हो राख्न, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये।

तबसे सूर्यदेवकी प्रभा स्वच्छ हो गयी। वे अपने मार्गसे चलने लगे। भगवान् अग्निदेव भी मनोहर दीपिसे युक्त हो प्रज्वलित होने लगे तथा सब प्राणियोंका मन धर्ममें संलग्न रहने लगा। भगवान् विष्णुसे सुरक्षित होकर समस्त त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। उस समय समस्त लोकोंको धारण करनेवाले ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—‘देवगण ! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये भगवान् श्रीविष्णुको तथा देवताओंके स्वामी उमापति महादेवजीको नियत किया है; वे दोनों तुम्हारे योगक्षेमका निर्वाह करेंगे। तुम सदा उनकी उपासना करते रहना; क्योंकि वे तुम्हारा कल्याण करनेवाले हैं। उपासना करनेसे ये दोनों महानुभाव सदा तुम्हारे क्षेमके साधक और वरदायक होंगे।’ यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। उनके जानेके बाद इन्द्रने देवलोककी राह ली। तत्पश्चात् श्रीहरि और शङ्करजी भी अपने-अपने धाम—वैकुण्ठ एवं कैलासमें जा पहुँचे। तदनन्तर देवराज इन्द्र तीनों लोकोंकी रक्षा करने लगे। महाभाग ! इस प्रकार लक्ष्मीजी क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं। यद्यपि वे सनातनी देवी हैं, तो भी एक समय भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे भी उन्होंने जन्म ग्रहण किया था।

सतीका देहत्याग और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

श्रीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! दक्षकन्या सती तो बड़ी शुभलक्षणा थीं, उन्होंने अपने शरीरका त्याग क्यों किया ? तथा भगवान् रुद्रने किस कारणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस किया ?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म ! प्राचीन कालकी बात है, दक्षने गङ्गाद्वारमें यज्ञ किया। उसमें देवता, असुर, पितर और महर्षि सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पथारे। इन्द्रसहित देवता, नाग, यक्ष, गरुड, लताएँ, ओषधियाँ, कश्यप, भगवान् अत्रि, मैं, पुलह, क्रतु,

प्राचेतस, अङ्गिरा तथा महातपस्वी वसिष्ठजी भी उपस्थित हुए। वहाँ सब ओरसे बगबर वेदी बनाकर उसके ऊपर चातुर्होत्रकी* स्थापना हुई। उस यज्ञमें महर्षि वसिष्ठ होता, अङ्गिरा अध्वर्यु, बृहस्पति उद्गाता तथा नारदजी ब्रह्मा हुए। जब यज्ञकर्म आरम्भ हुआ और अग्निमें हवन होने लगा, उस समयतक देवताओंके आनेका क्रम जारी रहा। स्थावर और जङ्घम—सभी प्रकारके प्राणी वहाँ उपस्थित थे। इसी समय ब्रह्माजी अपने पुत्रोंके साथ आकर यज्ञके सभासद् हुए तथा साक्षात् भगवान्

* होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारोंके द्वारा सम्पन्न होनेवाले यज्ञको चातुर्होत्र कहते हैं।

श्रीविष्णु भी यज्ञकी रक्षाके लिये वहाँ पधारे। आठों वसु, बारहों आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, उनचासों मरुद्गण तथा चौदहों मनु भी वहाँ आये थे। इस प्रकार यज्ञ होने लगा, अग्रिमें आहुतियाँ पड़ने लगीं। वहाँ भक्ष्य-भोज्य सामग्रीका बहुत ही सुन्दर और भारी ठाट-बाट था। ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा दिखायी देती थी। चारों ओरसे दस योजन भूमि यज्ञके समारोहसे पूर्ण थी। वहाँ एक विशाल वेदी बनायी गयी थी, जहाँ सब लोग एकत्रित थे। शुभलक्षणा सतीने इन सारे आयोजनोंको देखा और यज्ञमें आये हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको लक्ष्य किया। इसके बाद वे अपने पितासे विनययुक्त वचन बोलीं।

सतीने कहा—पिताजी ! आपके यज्ञमें सम्पूर्ण देवता और ऋषि पधारे हैं। देवराज इन्द्र अपनी धर्मपत्नी शाचीके साथ ऐरावतपर चढ़कर आये हैं। पापियोंका दमन करनेवाले तथा धर्मात्माओंके रक्षक परमधर्मिष्ठ यमराज भी धूमोणिके साथ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जल-जन्मुओंके स्वामी वरुणदेव अपनी पत्नी गौरीके साथ इस यज्ञमण्डपमें सुशोभित हैं। यक्षोंके राजा कुबेर भी अपनी पत्नीके साथ आये हैं। देवताओंके मुखस्वरूप अग्रिदेवने भी यज्ञ-मण्डपमें पदार्पण किया है। वायु देवता अपने उनचास गणोंके साथ और लोकपावन सूर्यदेव अपनी भार्या संज्ञाके साथ पधारे हैं। महान् यशस्वी चन्द्रमा भी सप्तलीक आये हैं। आठों वसु और दोनों अश्विनीकुमार भी उपस्थित हैं। इनके सिवा वृक्ष, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सराएँ, विद्याधर, भूतोंके समुदाय, वेताल, यक्ष, राक्षस, भयङ्कर कर्म करनेवाले पिशाच तथा दूसरे-दूसरे प्राणधारी जीव भी यहाँ मौजूद हैं। भगवान् कश्यप, शिष्योंसहित वसिष्ठजी, पुलस्त्य, पुलह, सनकादि महर्षि तथा भूमण्डलके समस्त पुण्यात्मा राजा यहाँ पधारे हैं। अधिक क्या कहूँ, ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टि ही यहाँ आ पहुँची है। ये हमारी बहनें हैं, ये भानजे हैं और ये बहनोई हैं। ये सब-के-सब अपनी-अपनी स्त्री, पुत्र और बान्धवोंके साथ यहाँ उपस्थित दिखायी देते हैं। आपने दान-मानादिके द्वारा इन सबका यथावत् सत्कार

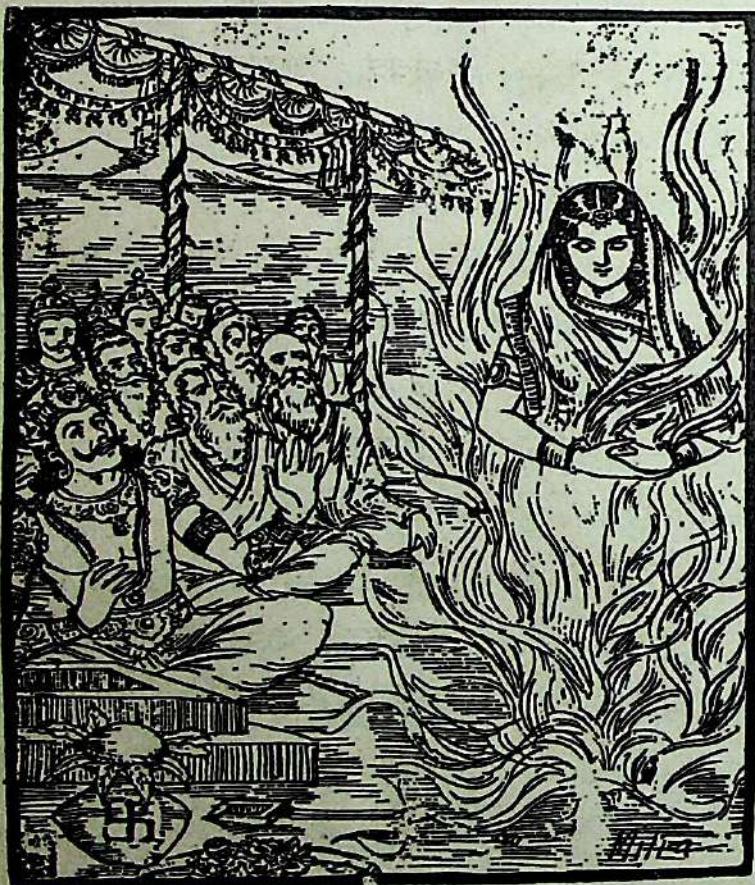
किया है। केवल मेरे पति भगवान् शङ्कर ही इस यज्ञमण्डपमें नहीं पधारे हैं; उनके बिना यह सारा आयोजन मुझे सूना-सा ही जान पड़ता है। मैं समझती हूँ आपने मेरे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है; निश्चय ही आप उन्हें भूल गये हैं। इसका क्या कारण है ? मुझे सब बातें बताइये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—प्रजापति दक्षने सतीके वचन सुने। सती उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थीं, उन्होंने पतिके स्नेहमें ढूबी हुई परम सौभाग्यवती पतिव्रता सतीको गोदमें बिठा लिया और गम्भीर होकर कहा—‘बेटी ! सुनो; जिस कारणसे आज मैंने तुम्हारे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है, वह सब ठीक-ठीक बताता हूँ। वे अपने शरीरमें राख लपेटे रहते हैं। त्रिशूल और दण्ड लिये नंग-धड़ंग सदा इमशानभूमिमें ही विचरा करते हैं। व्याघ्रचर्म पहनते और हाथीका चमड़ा ओढ़ते हैं। कंधेपर नरमुण्डोंकी माला और हाथमें खट्काङ्ग—यही उनके आभूषण हैं। वे नागराज वासुकिको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये रहते हैं और इसी रूपमें वे सदा इस पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। इसके सिवा और भी बहुत-से धृणित कार्य तुम्हारे पति-देवता करते रहते हैं। यह सब मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। भला, इन देवताओंके निकट वे उस अभद्र वेषमें कैसे बैठ सकते हैं। जैसा उनका वस्त्र है, उसे पहनकर वे इस यज्ञमण्डपमें आने योग्य नहीं हैं। बेटी ! इन्हीं दोषोंके कारण तथा लोक-लज्जाके भयसे मैंने उन्हें नहीं बुलाया। जब यज्ञ समाप्त हो जायगा, तब मैं तुम्हारे पतिको ले आऊँगा और त्रिलोकीमें सबसे बढ़-चढ़कर उनकी पूजा करूँगा; साथ ही तुम्हारा भी यथावत् सत्कार करूँगा। अतः इसके लिये तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये।’

भीष्म ! प्रजापति दक्षके ऐसा कहनेपर सतीको बड़ा शोक हुआ, उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे पिताकी निन्दा करती हुई बोलीं—‘तात ! भगवान् शङ्कर ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं। समस्त देवताओंको जो ये उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त हुए हैं, ये सब परम बुद्धिमान् महादेवजीके ही दिये

हुए हैं। भगवान् शिवमें जितने गुण हैं, उनका पूर्णतया वर्णन करनेमें ब्रह्माजीकी जिह्वा भी समर्थ नहीं है। वे ही सबके धाता (धारण करनेवाले) और विधाता (नियामक) हैं। वे ही दिशाओंके पालक हैं। भगवान् रुद्रके प्रसादसे ही इन्द्रको स्वर्गका आधिपत्य प्राप्त हुआ है। यदि रुद्रमें देवत्व है, यदि वे सर्वत्र व्यापक और कल्याणस्वरूप हैं, तो इस सत्यके प्रभावसे शङ्करजी आपके यज्ञका विध्वंस कर डालें।'

इतना कहकर सती योगस्थ हो गयीं—उन्होंने ध्यान लगाया और अपने ही शरीरसे प्रकट हुई अग्निके



द्वारा अपनेको भस्म कर दिया। उस समय देवता, असुर, नाग, गन्धर्व और गुह्यक 'यह क्या! यह क्या!' कहते ही रह गये; किन्तु क्रोधमें भरी हुई सतीने गङ्गाके तटपर अपने देहका त्याग कर दिया। गङ्गाजीके पश्चिमी तटपर वह स्थान आज भी 'सौनक तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् रुद्रने जब यह समाचार सुना, तब अपनी पत्नीकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उनके मनमें समस्त देवताओंके देखते-देखते उस यज्ञको नष्ट कर डालनेका विचार उत्पन्न हुआ। फिर तो उन्होंने दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये करोड़ों गणोंको आज्ञा

दी। उनमें विनायक-सम्बन्धी ग्रह, भूत, प्रेत तथा पिशाच—सब थे। यज्ञमण्डपमें पहुँचकर उन्होंने सब देवताओंको परास्त किया और उन्हें भगाकर उस यज्ञको तहस-नहस कर डाला। यज्ञ नष्ट हो जानेसे दक्षका सारा उत्साह जाता रहा। वे उद्योगशून्य होकर देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिवके पास डरते-डरते गये और इस प्रकार बोले—'देव! मैं आपके प्रभावको नहीं जानता था; आप देवताओंके प्रभु और ईश्वर हैं। इस जगत्के अधीश्वर भी आप ही हैं; आपने सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। महेश्वर! अब मुझपर कृपा कीजिये और अपने सब गणोंको लैटाइये।'

दक्ष प्रजापतिने भगवान् शङ्करकी शरणमें जाकर जब इस प्रकार उनकी स्तुति और आराधना की, तब भगवान् ने कहा—'प्रजापते! मैंने तुम्हें यज्ञका पूरा-पूरा फल दे दिया। तुम अपनी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त करोगे।' भगवान् के ऐसा कहनेपर दक्षने उन्हें प्रणाम किया और सब गणोंके देखते-देखते वे अपने निवास-स्थानको चले गये। उस समय भगवान् शिव अपनी पत्नीके वियोगसे गङ्गाद्वारमें ही जाकर रहने लगे। 'हाय! मेरी प्रिया कहाँ चली गयी।' इस प्रकार कहते हुए वे सदा सतीके चिन्तनमें लगे रहते थे। तदनन्तर एक दिन देवर्षि नारद महादेवजीके समीप आये और इस प्रकार बोले—'देवेश्वर! आपकी पत्नी सती देवी, जो आपको प्राणोंके समान प्रिय थीं, देहत्यागके पश्चात् इस समय हिमवान् की कन्या होकर प्रकट हुई हैं। मैंनाके गर्भसे उनका आविर्भाव हुआ है। वे लोकके तात्त्विक अर्थको जाननेवाली थीं। उन्होंने इस समय दूसरा शरीर धारण किया है।'

नारदजीकी बात सुनकर महादेवजीने ध्यानस्थ हो देखा कि सती अवतार ले चुकी हैं। इससे उन्होंने अपनेको कृत-कृत्य माना और स्वस्थचित होकर रहने लगे। फिर जब पार्वतीदेवी यौवनावस्थाको प्राप्त हुई, तब शिवजीने पुनः उनके साथ विवाह किया। भीष्म! पूर्वकालमें जिस प्रकार दक्षका यज्ञ नष्ट हुआ था, उसका इस रूपमें मैंने तुमसे वर्णन किया है।

देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव ! देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंकी उत्पत्तिका आप विस्तारके साथ वर्णन कीजिये ।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुनन्दन ! कहते हैं पहलेके प्रजा-वर्गकी सृष्टि संकल्पसे, दर्शनसे तथा स्पर्श करनेसे होती थी; किन्तु प्रचेताओंके पुत्र दक्ष प्रजापतिके बाद मैथुनसे प्रजाकी उत्पत्ति होने लगी । दक्षने आदिमें जिस प्रकार प्रजाकी सृष्टि की, उसका वर्णन सुनो । जब वे [पहलेके नियमानुसार सङ्कल्प आदिसे] देवता, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करने लगे किन्तु प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब उन्होंने मैथुनके द्वारा अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको जन्म दिया । उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टेमिको, दो भृगुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको तथा दो महर्षि अङ्गिराको व्याह दीं । वे सब देवताओंकी जननी हुईं । उनके वंश-विस्तारका आरम्भसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो । अरुन्धती, वसु, जामी, लंबा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतायी गयी हैं । इनके पुत्रोंके नाम सुनो । विश्वाके गर्भसे विश्वेदेव हुए । साध्याने साध्य नामक देवताओंको जन्म दिया । मरुत्वतीसे मरुत्वान् नामक देवताओंकी उत्पत्ति हुई । वसुके पुत्र आठ वसु कहलाये । भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता उत्पन्न हुए । लंबासे घोष, जामीसे नागवीथी नामकी कन्या तथा अरुन्धतीके गर्भसे पृथ्वीपर होनेवाले समस्त प्राणी उत्पन्न हुए । सङ्कल्पासे सङ्कल्पोंका जन्म हुआ । अब वसुकी सृष्टिका वर्णन सुनो । जो देवगण अत्यन्त प्रकाशमान और सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यापक हैं, वे वसु कहलाते हैं; उनके नाम सुनो । आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं । 'आप' के चार पुत्र हैं—शान्त, वैताप्त, साम्ब और मुनिबधु । ये सब यज्ञरक्षाके अधिकारी हैं । ध्रुवके पुत्र काल और सोमके पुत्र वर्चा हुए । धरके दो पुत्र हुए—द्रविण और हव्यवाह । अनिलके पुत्र प्राण, रमण और

शिशिर थे । अनलके कई पुत्र हुए, जो प्रायः अग्निके समान गुणवाले थे । अग्निपुत्र कुमारका जन्म सरकंडोंमें हुआ । उनके शाख, उपशाख और नैगमेय—ये तीन पुत्र हुए । कृतिकाओंकी सन्तान होनेके कारण कुमारको कार्तिकेय भी कहते हैं । प्रत्यूषके पुत्र देवल नामके मुनि हुए । प्रभाससे प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो शिल्पकलाके ज्ञाता हैं । वे महल, घर, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, तालाब, उपवन और कूप आदिका निर्माण करनेवाले हैं । देवताओंके कारीगर वे ही हैं ।

अजैकपाद्, अहिर्बुध्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं; ये गणोंके स्वामी हैं । इनके मानस सङ्कल्पसे उत्पन्न चौरासी करोड़ पुत्र हैं, जो रुद्रगण कहलाते हैं । वे श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये रहते हैं । उन सबको अविनाशी माना गया है । जो गणेश्वर सम्पूर्ण दिशाओंमें रहकर सबकी रक्षा करते हैं, वे सब सुरभिके गर्भसे उत्पन्न उन्हींके पुत्र-पौत्रादि हैं । अब मैं कश्यपजीकी स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करूँगा । अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताप्रा, क्रोधवशा, इशा, कद्म, खसा और मुनि—ये कश्यपजीकी पत्नियोंके नाम हैं । इनके पुत्रोंका वर्णन सुनो । चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामसे प्रसिद्ध देवता थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य हुए । उनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु । ये सहस्रों किरणोंसे सुशोभित बारह आदित्य माने गये हैं । इन श्रेष्ठ पुत्रोंको देवी अदितिने मरीचिनन्दन कश्यपके अंशसे उत्पन्न किया था । कृशाश्व नामक ऋषिसे जो पुत्र हुए, उन्हें देव-प्रहरण कहते हैं । ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं ।

भीष्म ! हमारे सुननेमें आया है कि दितिने कश्यपजीसे दो पुत्र प्राप्त किये, जिनके नाम थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष । हिरण्यकशिपुसे चार पुत्र

उत्पन्न हुए—प्रहाद, अनुहाद, संहाद और हाद। प्रहादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, वाष्कलि और चौथा विरोचन। विरोचनको बलि नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। बलिके सौ पुत्र हुए। उनमें बाण जेठा था। गुणोंमें भी वह सबसे बढ़ा-चढ़ा था। बाणके एक हजार बाँहें थीं तथा वह सब प्रकारके अस्त्र चलानेकी कलामें भी पूरा प्रवीण था। त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उसके नगरमें निवास करते थे। बाणासुरको 'महाकाल'की पदवी तथा साक्षात् पिनाकपाणि भगवान् शिवकी समानता प्राप्त हुई—वह महादेवजीका सहचर हुआ। हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसन्तापन और महाभीम—ये चार पुत्र थे। इनसे सत्ताईस करोड़ पुत्र-पौत्रोंका विस्तार हुआ। वे सभी महाबली, अनेक रूपधारी तथा अत्यन्त तेजस्वी थे। दनुने कश्यपजीसे सौ पुत्र प्राप्त किये। वे सभी वरदान पाकर उन्मत्त थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ और अधिक बलवान् विप्रचित्ति था। दनुके शेष पुत्रोंके नाम स्वर्भानु और वृषपर्वा आदि थे। स्वर्भानुसे सुप्रभा और पुलोमा नामक दानवसे शची नामकी कन्या हुई। मयके तीन कन्याएँ हुईं—उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू। वृषपर्वके दो कन्याएँ थीं—सुन्दरी शर्मिष्ठा और चन्द्रा। वैश्वानरके भी दो पुत्रियाँ थीं—पुलोमा और कालका। ये दोनों ही बड़ी शक्तिशालिनी तथा अधिक सन्तानोंकी जननी हुईं। इन दोनोंसे साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई। पुलोमाके पुत्र पौलोम और कालकाके कालखञ्जा (या कालकेय) कहलाये। ब्रह्माजीसे वरदान पाकर ये मनुष्योंके लिये अवध्य हो गये थे और हिरण्यपुरमें निवास करते थे; फिर भी ये अर्जुनके हाथसे मारे गये।*

विप्रचित्तने सिंहिकाके गर्भसे एक भयङ्कर पुत्रको जन्म दिया, जो सैंहिकेय (राहु) के नामसे प्रसिद्ध था। हिरण्यकशिपुकी बहिन सिंहिकाके कुल तेरह पुत्र थे, जिनके नाम ये हैं—कंस, शङ्ख, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, खसूम, अञ्जन, नरक, कालनाभ, परमाणु,

कल्पवीर्य तथा दनुवंशविवर्धन। संहाद दैत्यके वंशमें निवातकवचोंका जन्म हुआ। वे गन्धर्व, नाग, राक्षस एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य थे। परन्तु वीरवर अर्जुनने संग्राम-भूमिमें उन्हें भी बलपूर्वक मार डाला। ताम्राने कश्यपजीके वीर्यसे छः कन्याओंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—शुकी, इयेनी, भासी, सुगृधी, गृध्रिका और शुचि। शुकीने शुक और उल्लू नामवाले पक्षियोंको उत्पन्न किया। इयेनीने इयेनों (बाजों) को तथा भासीने कुरर नामक पक्षियोंको जन्म दिया। गृध्रीसे गृध्र और सुगृधीसे कबूतर उत्पन्न हुए तथा शुचिने हंस, सारस, कारण्ड एवं म्लव नामके पक्षियोंको जन्म दिया। यह ताम्राके वंशका वर्णन हुआ। अब विनताकी सन्तानोंका वर्णन सुनो। पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड और अरुण विनताके पुत्र हैं तथा उनके एक सौदामनी नामकी कन्या भी है, जो यह आकाशमें चमकती दिखायी देती है। अरुणके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु। सम्पातिके पुत्रोंका नाम बशु और शीघ्रग है। इनमें शीघ्रग विख्यात है। जटायुके भी दो पुत्र हुए—कर्णिकार और शतगामी। वे दोनों ही प्रसिद्ध थे। इन पक्षियोंके असंख्य पुत्र-पौत्र हुए।

सुरसाके गर्भसे एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली कद्मने हजार मस्तकवाले एक सहस्र नागोंको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया। उनमें छब्बीस नाग प्रधान एवं विख्यात हैं—शेष, वासुकि, ककोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शङ्खपाल, महाशङ्ख, पुष्पदत्त, सुभावन, शङ्खरोमा, नहुष, रमण, पाणिनि, कपिल, दुर्मुख तथा पतञ्जलिमुख। इन सबके पुत्र-पौत्रोंकी संख्याका अन्त नहीं है। इनमेंसे अधिकांश नाग पूर्वकालमें राजा जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें जला दिये गये। क्रोधवशाने अपने ही नामके क्रोधवशसंजक राक्षससमूहको उत्पन्न किया। उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें थीं। उनमेंसे दस लाख

* यहाँ तथा आगेके प्रसङ्गोंमें भी पुलस्त्यजी भविष्यकी बात भूतकालकी भाँति कह रहे हैं—यही समझना चाहिये।

क्रोधवश भीमसेनके हाथसे मारे गये। सुरभिने रक्षाओं और यक्षोंको जन्म दिया। भीष्म ! ये सैकड़ों कश्यपजीके अंशसे रुद्रगण, गाय, भैंस तथा सुन्दरी और हजारों कोटियाँ कश्यपजीकी सन्तानोंकी हैं। यह स्त्रियोंको जन्म दिया। मुनिसे मुनियोंका समुदाय तथा अप्सराएँ प्रकट हुईं। अरिष्ठने बहुत-से किन्नरों और पीछे दितिने कश्यपजीसे उनचास मरुदग्गणोंको उत्पन्न गन्धवोंको जन्म दिया। इससे तृण, वृक्ष, लताएँ और किया, जो सब-के-सब धर्मके ज्ञाता और देवताओंके झाड़ियाँ—इन सबकी उत्पत्ति हुई। खसाने करोड़ों प्रिय हैं।

————★————

मरुद्रूणोंकी उत्पत्ति, भिन्न-भिन्न समुदायके राजाओं तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! दितिके पुत्र मरुद्रूणोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? वे देवताओंके प्रिय कैसे हो गये ? देवता तो दैत्योंके शत्रु हैं, फिर उनके साथ मरुद्रूणोंकी मैत्री क्योंकर सम्भव हुई ?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म ! पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् श्रीविष्णु और देवताओंके द्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंके मारे जानेपर दितिको बड़ा शोक हुआ। वे आर्त होकर परम उत्तम भूलोकमें आर्यों और सरस्वतीके तटपर पुष्कर नामके शुभ एवं महान् तीर्थमें रहकर सूर्योदेवकी आराधना करने लगीं। उन्होंने बड़ी उप्रतपस्या की। दैत्य-माता दिति ऋषियोंके नियमोंका पालन करतीं और फल खाकर रहती थीं। वे कृच्छ-चान्द्रायण आदि कठोर व्रतोंके पालनद्वारा तपस्या करने लगीं। जरा और शोकसे व्याकुल होकर उन्होंने सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया। उसके बाद वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—‘मुनिवरो ! क्या कोई ऐसा भी व्रत है, जो मेरे पुत्रशोकको नष्ट करनेवाला तथा इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाला हो ? यदि हो तो, बताइये।’ वसिष्ठ आदि महर्षियोंने ज्येष्ठकी पूर्णिमाका व्रत बताया तथा दितिने भी उस व्रतका साङ्गेपाङ्ग वर्णन सुनकर उसका यथावत् अनुष्ठान किया। उस व्रतके माहात्म्यसे प्रभावित होकर कश्यपजी बड़ी प्रसन्नताके साथ दितिके आश्रमपर आये। दितिका शरीर तपस्यासे कठोर हो गया था। किन्तु कश्यपजीने उन्हें पुनः रूप और लावण्यसे युक्त कर दिया और उनसे वर माँगनेका अनुरोध किया। तब दितिने वर माँगते हुए कहा—‘भगवन् ! मैं इन्द्रका वध करनेके लिये एक ऐसे

पुत्रकी याचना करती हूँ जो समृद्धिशाली, अत्यन्त तेजस्वी तथा समस्त देवताओंका संहार करनेवाला हो।’

कश्यपने कहा—‘शुभे ! मैं तुम्हें इन्द्रका घातक एवं बलिष्ठ पुत्र प्रदान करूँगा।’ तत्पश्चात् कश्यपने दितिके उदरमें गर्भ स्थापित किया और कहा—‘देवि ! तुम्हें सौ वर्षोंतक इसी तपोवनमें रहकर इस गर्भकी रक्षाके लिये यत्न करना चाहिये। गर्भिणीको सन्ध्याके समय भोजन नहीं करना चाहिये तथा वृक्षकी जड़के पास न तो कभी जाना चाहिये और न ठहरना ही चाहिये। वह जल्के भीतर न घुसे, सूने घरमें न प्रवेश करे। बाँबीपर खड़ी न हो। कभी मनमें उद्वेग न लाये। सूने घरमें बैठकर नख अथवा राखसे भूमिपर रेखा न खींचे, न तो सदा अलसाकर पड़ी रहे और न अधिक परिश्रम ही करे, भूसी, कोयले, राख, हड्डी और खपड़पर न बैठे। लोगोंसे कलह करना छोड़ दे, अँगड़ाई न ले, बाल खोलकर खड़ी न हो और कभी भी अपवित्र न रहे। उत्तरकी ओर अथवा नीचे सिर करके कभी न सोये। नंगी होकर, उद्वेगमें पड़कर और बिना पैर धोये भी शयन करना मना है। अमङ्गल्युक्त वचन मुँहसे न निकाले, अधिक हँसी-मजाक भी न करे। गुरुजनोंके साथ सदा आदरका बर्ताव करे, माङ्गलिक कार्योंमें लगी रहे, सर्वोषधियोंसे युक्त जलके द्वारा स्नान करे। अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखे। गुरुजनोंकी सेवा करे और वाणीसे सबका सत्कार करती रहे। स्वामीके प्रिय और हितमें तत्पर रहकर सदा प्रसन्नमुखी बनी रहे। किसी भी अवस्थामें कभी पतिकी निन्दा न करे।’

यह कहकर कश्यपजी सब प्राणियोंके देखते-देखते

वहाँसे अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर, पतिकी बातें सुनकर दिति विधिपूर्वक उनका पालन करने लगीं । इससे इन्द्रको बड़ा भय हुआ । वे देवलोक छोड़कर दितिके पास आये और उनकी सेवाकी इच्छासे वहाँ रहने लगे । इन्द्रका भाव विपरीत था, वे दितिका छिद्र ढूँढ़ रहे थे । बाहरसे तो उनका मुख प्रसन्न था, किन्तु भीतरसे वे भयके मारे विकल्प थे । वे ऊपरसे ऐसा भाव जताते थे, मानो दितिके कार्य और अभिप्रायको जानते ही न हों । परन्तु वास्तवमें अपना काम बनाना चाहते थे । तदनन्तर, जब सौ वर्षकी समाप्तिमें तीन ही दिन बाकी रह गये, तब दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई । वे अपनेको कृतार्थ मानने लगीं तथा उनका हृदय विस्मयविमुग्ध रहने लगा । उस दिन वे पैर धोना भूल गयीं और बाल खोले हुए ही सो गयीं । इतना ही नहीं, निद्राके भारसे दबी होनेके कारण दिनमें उनका सिर कभी नीचेकी ओर हो गया । यह अवसर पाकर शाचीपति इन्द्र दितिके गर्भमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रके द्वारा उन्होंने उस गर्भस्थ बालकके सात टुकड़े कर डाले । तब वे सातों टुकड़े सूर्यके समान तेजस्वी सात कुमारोंके रूपमें परिणत हो गये और रोने लगे । उस समय दानवशत्रु इन्द्रने उन्हें रोनेसे मना किया तथा पुनः उनमेंसे एक-एकके सात-सात टुकड़े कर दिये । इस प्रकार उनचास कुमारोंके रूपमें होकर वे जोर-जोरसे रोने लगे । तब इन्द्रने 'मा रुद्धम्' (मत रोओ) ऐसा कहकर उन्हें बारम्बार रोनेसे रोका और मन-ही-मन सोचा कि ये बालक धर्म और ब्रह्माजीके प्रभावसे पुनः जीवित हो गये हैं । इस पुण्यके योगसे ही इन्हें जीवन मिला है, ऐसा जानकर वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'यह पौर्णमासी व्रतका फल है । निश्चय हो इस व्रतका अथवा ब्रह्माजीकी पूजाका यह परिणाम है कि वज्रसे मारे जानेपर भी इनका विनाश नहीं हुआ । ये एकसे अनेक हो गये, फिर भी उदरकी रक्षा हो रही है । इसमें सन्देह नहीं कि ये अवध्य हैं, इसलिये ये देवता हो जायें । जब ये रो रहे थे, उस समय मैंने इन गर्भके बालकोंको 'मा रुदः' कहकर चुप कराया है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होकर कल्याणके भागी बनें ।'

ऐसा विचार कर इन्द्रने दितिसे कहा—'माँ ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने अर्थशास्त्रका सहारा लेकर यह दुष्कर्म किया है ।' इस प्रकार बारम्बार कहकर उन्होंने दितिको प्रसन्न किया और मरुद्गणोंको देवताओंके समान बना दिया । तत्पश्चात् देवराजने पुत्रोंसहित दितिको विमानपर बिठाया और उनको साथ लेकर वे स्वर्गको चले गये । मरुद्गण यज्ञ-भागके अधिकारी हुए; उन्होंने असुरोंसे मेल नहीं किया, इसलिये वे देवताओंके प्रिय हुए ।

श्रीब्रह्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! आपने आदिसर्ग और प्रतिसर्गका विस्तारके साथ वर्णन किया । अब जिनके जो स्वामी हों, उनका वर्णन कीजिये ।

पुलस्त्यजी द्वाले—राजन् ! जब पृथु इस पृथ्वीके सम्पूर्ण राज्यपर अभिषित होकर सबके राजा हुए, उस समय ब्रह्माजीने चन्द्रमाको अन्न, ब्राह्मण, व्रत और तपस्याका अधिपति बनाया । हिरण्यगर्भको नक्षत्र, तारे, पक्षी, वृक्ष, झाड़ी और लता आदिका स्वामी बनाया । वरुणको जलका, कुबेरको धनका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया । दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको देवताओंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि भगवान् शङ्करको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालराजोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, भयङ्कर पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, गजराज ऐरावतको दिग्जोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको मृगोंका, साँड़को गौओंका तथा मूक्ष (पाकड़) को सम्पूर्ण वनस्पतियोंका अधीश्वर बनाया । इस प्रकार पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इन सभी अधिपतियोंको भिन्न-भिन्न वर्गके राजपदपर अभिषित किया था ।

कौरवनन्दन ! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें यात्रा नामसे प्रसिद्ध देवता थे । मरीचि आदि मुनि ही सप्तर्षि माने जाते थे । आग्रीध, अग्निबाहु, विभु, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और

वसु—ये दस स्वायम्भुव मनुके पुत्र हुए, जिन्होंने अपने वंशका विस्तार किया। ये प्रतिसर्गकी सृष्टि करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर आया। स्वारोचिष मनुके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान तेजस्वी थे। उनके नाम हैं—नभ, नभस्य, प्रसुति और भावन। इनमेंसे भावन अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाला था। दत्तत्रेय, अत्रि, च्यवन, स्तम्भ, प्राण, कश्यप तथा बृहस्पति—ये सात सप्तर्षि हुए। उस समय तुष्टि नामके देवता थे। हवीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप और ज्योतीरथ—ये वसिष्ठके पाँच पुत्र ही स्वारोचिष मन्वन्तरमें प्रजापति थे। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके बाद औत्तम मन्वन्तरका वर्णन करूँगा। तीसरे मनुका नाम था औत्तमि। उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तनूज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभ तथा सह। इनमें सह सबसे छोटा था। ये सब-केवल सब उदार और यशस्वी थे। उस समय भानुसंजक देवता और ऊर्ज नामके सप्तर्षि थे। कौकिभिष्ठि, कुतुण्ड, दात्य, शङ्ख, प्रवाहित, मित और सम्मित—ये सात योगवर्धन ऋषि थे। चौथा मन्वन्तर तामसके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जन्य तथा धामा—ये सात मुनि ही सप्तर्षि थे। साध्यगण देवता थे। अकल्पष, तपोधन्वा, तपोमूल, तपोधन, तपोराशि, तपस्य, सुतपस्य, परन्तप, तपोभागी और तपोयोगी—ये दस तामस मनुके पुत्र थे। जो धर्म और सदाचारमें तत्पर तथा अपने वंशका विस्तार करनेवाले थे। अब पाँचवें रैवत मन्वन्तरका वृत्तान्त श्रवण करो। देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्तश्च—ये सात रैवत मन्वन्तरके सप्तर्षि माने गये हैं। भूतरजा तथा प्रकृति नामवाले देवता थे तथा वरुण, तत्त्वदर्शी, चितिमान्, हव्यप, कवि, मुक्त, निश्चिन्द्र, सत्त्व, विमोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र हुए, जो

धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विर्ज, विष्णु, नारद, विवस्वान् और अभिमानी—ये सात सप्तर्षि हुए। उस समय लेख नामसे प्रसिद्ध देवता थे। इनके सिवा ऋभु, पृथग्भूत, वारिमूल और दिवौका नामके देवता भी थे। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तरमें देवताओंकी पाँच योनियाँ थीं। चाक्षुष मनुके दस पुत्र हुए, जो रुह आदि नामसे प्रसिद्ध थे।

अब सातवें मन्वन्तरका वर्णन करूँगा, जिसे वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं। इस समय [वैवस्वत मन्वन्तर ही चल रहा है, इसमें] अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात ऋषि ही सप्तर्षि हैं। ये धर्मकी व्यवस्था करके परमपदको प्राप्त होते हैं। अब भविष्यमें होनेवाले सावर्ण्य मन्वन्तरका वर्णन किया जाता है। उस समय अश्वत्थामा, ऋष्यशृङ्ग, कौशिक्य, गालव, शतानन्द, काश्यप तथा परशुराम—ये सप्तर्षि होंगे। धृति, वरीयान्, यवसु, सुवर्ण, धृष्टि, चरिष्णु, आद्य, सुमति, वसु तथा पराक्रमी शुक्र—ये भविष्यमें होनेवाले सावर्णि मनुके पुत्र बतलाये गये हैं। इसके सिवा रौच्य आदि दूसरे-दूसरे मनुओंके भी नाम आते हैं। प्रजापति रुचिके पुत्रका नाम रौच्य होगा। इसी प्रकार धृतिके पुत्र धौत्य नामके मनु कहलायेंगे। तदनन्तर मेरुसावर्णि नामक मनुका अधिकार होगा। वे ब्रह्माके पुत्र माने गये हैं। मेरु-सावर्णिके बाद क्रमशः ऋभु, वीतधामा और विष्वक्सेन नामक मनु होंगे। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूत और भविष्य मनुओंका परिचय दिया है। इन चौदह मनुओंका अधिकार कुल मिलाकर एक हजार चतुर्युग-सक रहता है। अपने-अपने मन्वन्तरमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके कल्पका संहार होनेपर ये ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं। ये मनु प्रति एक सहस्र चतुर्युगीके बाद नष्ट होते रहते हैं तथा ब्रह्मा आदि विष्णुका सायुज्य प्राप्त करते हैं।

पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! सुना जाता है, पूर्वकालमें बहुत-से राजा इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं। पृथ्वीके सम्बन्धसे ही राजाओंको पार्थिव या पृथ्वीपति कहते हैं। परन्तु इस भूमिकी जो 'पृथ्वी' संज्ञा है, वह किसके सम्बन्धसे हुई है ? भूमिको यह पारिभाषिक संज्ञा किसलिये दी गयी अथवा उसका 'गौ' नाम भी क्यों पड़ा, यह मुझे बताइये ।

पुलस्त्यजीने कहा—स्वायम्भुव मनुके वंशमें एक अङ्ग नामके प्रजापति थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया था। सुनीथाका मुख बड़ा कुरुप था। उससे वेन नामक पुत्र हुआ, जो सदा अधर्ममें ही लगा रहता था। वह लोगोंकी बुराई करता और परायी स्त्रियोंको हड्डप लेता था। एक दिन महर्षियोंने उसकी भलाई और जगत्के उपकारके लिये उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया; परन्तु उसका अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण उसने उनकी बात नहीं मानी, प्रजाको अभयदान नहीं दिया। तब ऋषियोंने शाप देकर उसे मार डाला। फिर अराजकताके भयसे पीड़ित होकर पापरहित ब्राह्मणोंने वेनके शरीरका बलपूर्वक मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे पहले म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं, जिनका रङ्ग काले अङ्गनके समान था। तत्पश्चात् उसके दाहिने हाथसे एक दिव्य तेजोमय शरीरधारी धर्मात्मा पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ; जो धनुष, बाण और गदा धारण किये हुए थे तथा रत्नमय कवच एवं अङ्गदादि आभूषणोंसे विभूषित थे। वे पृथुके नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही अवतीर्ण हुए थे। ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यपर अभिषिक्त किया। राजा होनेपर उन्होंने देखा कि इस भूतलसे धर्म उठ गया है। न कहीं स्वाध्याय होता है, न वषट्कार (यज्ञादि)। तब वे क्रोध करके अपने बाणसे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालनेके लिये उघ्रत हो गये। यह देख पृथुके गौका रूप धारण करके भाग खड़ी हुई। उसे भागते देख पृथुने भी उसका पीछा किया। तब वह एक स्थानपर खड़ी होकर बोली—'राजन् ! मेरे लिये क्या आज्ञा होती

है ?' पृथुने कहा—'सुव्रते ! सम्पूर्ण चराचर जगत्के लिये जो अभीष्ट वस्तु है, उसे शीघ्र प्रस्तुत करो।' पृथ्वीने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी। तब राजाने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें पृथ्वीका दूध दुहा। वही दूध अन्न हुआ, जिससे सारी प्रजा जीवन धारण करती है। तत्पश्चात् ऋषियोंने भी भूमिस्पृष्ठियी गौका दोहन किया। उस समय चन्द्रमा ही बछड़ा बने थे। दुहनेवाले थे वनस्पति, दुग्धका पात्र था वेद और तपस्या ही दूध थी। फिर देवताओंने भी वसुधाको दुहा। उस समय मित्र देवता दोग्धा हुए, इन्हें बछड़ा बने तथा ओज और बल ही दूधके रूपमें प्रकट हुआ। देवताओंका दोहनपात्र सुवर्णका था और पितरोंका चाँदीका। पितरोंकी ओरसे अन्तकने दुहनेका काम किया, यमराज बछड़ा बने और स्वधा ही दूधके रूपमें प्राप्त हुई। नागोंने तुँबीको पात्र बनाया और तक्षकको बछड़ा। धृतराष्ट्र नामक नागने दोग्धा बनकर विषरूपी दुग्धका दोहन किया। असुरोंने लोहेके बर्तनमें इस पृथ्वीसे मायारूप दूध दुहा। उस समय प्रहादकुमार विरोचन बछड़ा बने थे और त्रिमूर्धनि दुहनेका काम किया था। यक्ष अन्तर्धान होनेकी विद्या प्राप्त करना चाहते थे; इसलिये उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे बर्तनमें उस अन्तर्धान-विद्याको ही वसुधासे दुग्धके रूपमें दुहा। गन्धर्वों और अप्सराओंने चित्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया। उनकी ओरसे अर्थर्ववेदके पारगामी विद्वान् सुरुचिने दूध दुहनेका कार्य किया था। इस प्रकार दूसरे लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार पृथ्वीसे आयु, धन और सुखका दोहन किया। पृथुके शासन-कालमें कोई भी मनुष्य न दरिद्र था न रोगी, न निर्धन था न पापी तथा न कोई उपद्रव था न पीड़ा। सब सदा प्रसन्न रहते थे। किसीको दुःख या शोक नहीं था। महाबली पृथुने लोगोंके हितकी इच्छासे अपने धनुषकी नोकसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर हटा दिया और पृथ्वीको समतल बनाया। पृथुके राज्यमें गाँव बसाने या किले बनवानेकी

आवश्यकता नहीं थी। किसीको शास्त्र-धारण करनेका भी कोई प्रयोजन नहीं था। मनुष्योंको विनाश एवं वैषम्यका दुःख नहीं देखना पड़ता था। अर्थशास्त्रमें किसीका आदर नहीं था। सब लोग धर्ममें ही संलग्न रहते थे। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथ्वीके दोहन-पात्रोंका वर्णन किया तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, वह भी बता दिया। राजा पृथु बड़े विज्ञ थे; जिनकी जैसी रुचि थी, उसीके अनुसार उन्होंने सबको दूध प्रदान किया। यह प्रसङ्ग यज्ञ और श्राद्ध सभी अवसरोंपर सुनानेके योग्य हैं; इसे मैंने तुम्हें सुना दिया। यह भूमि धर्मात्मा पृथुकी कन्या मानी गयी; इसीसे विद्वान् पुरुष 'पृथ्वी' कहकर इसकी स्तुति करते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आप तत्त्वके ज्ञाता हैं; अब क्रमशः सूर्यवंश और चन्द्रवंशका पूरा-पूरा एवं यथार्थ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें कश्यपजीसे अदितिके गर्भसे विवस्वान् नामक पुत्र हुए। विवस्वानके तीन द्वियाँ थीं—संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञीने रैवत नामक पुत्र उत्पन्न किया। प्रभासे प्रभातकी उत्पत्ति हुई। संज्ञा विश्वकर्माकी पुत्री थी। उसने वैवस्वत मनुको जन्म दिया। कुछ काल पश्चात् संज्ञाके गर्भसे यम और यमुना नामक दो जुड़वी सन्तानें पैदा हुईं। तदनन्तर वह विवस्वान् (सूर्य) के तेजोमय स्वरूपको न सह सकी, अतः उसने अपने शरीरसे अपने ही समान रूपवाली एक नारीको प्रकट किया। उसका नाम छाया हुआ। छाया सामने खड़ी होकर बोली—'देवि ! मेरे लिये क्या आज्ञा है ?' संज्ञाने कहा—'छाया ! तुम मेरे स्वामीकी सेवा करो, साथ ही मेरे बच्चोंका भी माताकी भाँति स्नेहपूर्वक पालन करना।' 'तथास्तु' कहकर छाया भगवान् सूर्यके पास गयी। वह उनसे अपनी कामना पूर्ण करना चाहती थी। सूर्यने भी यह समझकर कि यह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली संज्ञा ही है, बड़े आदरके साथ उसकी कामना की। छायाने सूर्यसे सावर्ण मनुको उत्पन्न किया। उनका वर्ण भी वैवस्वत मनुके समान होनेके कारण उनका नाम सावर्ण मनु पड़ गया। तत्पश्चात्

भगवान् भास्करने छायाके गर्भसे क्रमशः शनैश्चर नामक पुत्र तथा तपती और विष्णि नामकी कन्याओंको जन्म दिया।

एक समय महायशस्वी यमराज वैराग्यके कारण पुष्कर तीर्थमें गये और वहाँ फल, फेन एवं वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्या करने लगे। उन्होंने सौ वर्षोंतक तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीकी आराधना की। उनके तपके प्रभावसे देवेश्वर ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये; तब यमराजने उनसे लोकपालका पद, अक्षय पितृलोकका राज्य तथा धर्माधर्ममय जगत्की देख-रेखका अधिकार माँगा। इस प्रकार उन्हें ब्रह्माजीसे लोकपाल-पदवी प्राप्त हुई। साथ ही उन्हें पितृलोकका राज्य और धर्माधर्मके निर्णयका अधिकार भी मिल गया।

छायाके पुत्र शनैश्चर भी तपके प्रभावसे ग्रहोंकी समानताको प्राप्त हुए। यमुना और तपती—ये दोनों सूर्य-कन्याएँ नदी हो गयीं। विष्णिका स्वरूप बड़ा भयंकर था; वह कालरूपसे स्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र हुए, उन सबमें 'इल' ज्येष्ठ थे। शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करुष, महाबली शर्याति, पृष्ठध तथा नाभाग। ये सभी दिव्य मनुष्य थे। राजा मनु अपने ज्येष्ठ और धर्मात्मा पुत्र 'इल' को राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं पुष्करके तपोवनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। तदनन्तर उनकी तपस्याको सफल करनेके लिये वरदाता ब्रह्माजी आये और बोले—'मनो ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।'

मनुने कहा—स्वामिन् ! आपकी कृपासे पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा धर्मपरायण, ऐश्वर्यशाली तथा मेरे अधीन हों। 'तथास्तु' कहकर देवेश्वर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर, मनु अपनी राजधानीमें आकर पूर्ववत् रहने लगे। इसके बाद राजा इल अर्थसिद्धिके लिये इस भूमण्डलपर विचरने लगे। वे सम्पूर्ण द्वीपोंमें घूम-घूमकर वहाँके राजाओंको अपने वशमें करते थे। एक दिन प्रतापी इल रथमें बैठकर भगवान् शङ्करके महान् उपवनमें गये, जो कल्पवृक्षकी लताओंसे व्याप्त एवं

‘शरवण’ के नामसे प्रसिद्ध था। उसमें देवाधिदेव चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ क्रीड़ा करते हैं। पूर्वकालमें महादेवजीने उमाके साथ ‘शरवण’ के भीतर प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही थी कि ‘पुरुष नामधारी जो कोई भी जीव हमारे वनमें आ जायेगा, वह इस दस योजनके घेरेमें पैर रखते ही खीरूप हो जायगा।’ राजा इल इस प्रतिज्ञाको नहीं जानते थे, इसीलिये ‘शरवण’में चले गये। वहाँ पहुँचनेपर वे सहसा खी हो गये तथा उनका घोड़ा भी उसी समय घोड़ी बन गया। राजाके जो-जो पुरुषोचित अङ्ग थे, वे सभी खीके आकारमें परिणत हो गये। इससे उन्हें बड़ा आश्र्य हुआ। अब वे ‘इला’ नामकी खी थे।

इला उस वनमें धूमती हुई सोचने लगी, ‘मेरे माता-पिता और भ्राता कौन हैं?’ वह इसी उधेड़-बुनमें पड़ी थी, इतनेमें ही चन्द्रमाके पुत्र बुधने उसे देखा। [इलाकी दृष्टि भी बुधके ऊपर पड़ी।] सुन्दरी इलाका मन बुधके रूपपर मोहित हो गया; उधर बुध भी उसे देखकर कामपीड़ित हो गये और उसकी प्रासिके लिये यत्न करने लगे। उस समय बुध ब्रह्मचारीके वेषमें थे। वे वनके बाहर पेड़ोंके झुरमुटमें छिपकर इलाको बुलाने लगे—‘सुन्दरी! यह साँझका समय, विहारकी वेला है जो बीती जा रही है; आओ, मेरे घरको लीप-पोतकर फूलोंसे सजा दो।’ इला बोली—‘तपोधन! मैं यह सब कुछ भूल गयी हूँ। बताओ, मैं कौन हूँ? तुम कौन हो? मेरे स्वामी कौन हैं तथा मेरे कुलका परिचय क्या है?’ बुधने कहा—‘सुन्दरी! तुम इला हो, मैं तुम्हें चाहनेवाला बुध हूँ। मैंने बहुत विद्या पढ़ी है। तेजस्वीके कुलमें मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिता ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा हैं।’

बुधकी यह बात सुनकर इलाने उनके घरमें प्रवेश किया। वह सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न था और अपने वैभवसे इन्द्रभवनको मात कर रहा था। वहाँ रहकर इला बहुत समयतक बुधके साथ वनमें रमण करती रही। उधर इलके भाई इक्ष्वाकु आदि मनुकुमार अपने राजाकी खोज करते हुए उस ‘शरवण’ के निकट आ पहुँचे। उन्होंने

नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे पार्वती और महादेवजीका स्तवन किया। तब वे दोनों प्रकट होकर बोले—‘राजकुमारो! मेरी यह प्रतिज्ञा तो टल नहीं सकती; किन्तु इस समय एक उपाय हो सकता है। इक्ष्वाकु अश्वमेध यज्ञ करें और उसका फल हम दोनोंको अर्पण कर दें। ऐसा करनेसे वीरवर इल ‘किम्पुरुष’ हो जायेंगे, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।’

‘बहुत अच्छा, प्रभो!’ यह कहकर मनुकुमार लौट गये। फिर इक्ष्वाकुने अश्वमेध यज्ञ किया। इससे इल ‘किम्पुरुष’ हो गयी। वे एक महीने पुरुष और एक महीने खीके रूपमें रहने लगे। बुधके भवनमें [खीरूपसे] रहते समय इलने गर्भ धारण किया था। उस गर्भसे उन्होंने अनेक गुणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रको उत्पन्न करके बुध स्वर्गलोकको चले गये। वह प्रदेश इलके नामपर ‘इलावृतवर्ष’ के नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऐल चन्द्रमाके वंशज तथा चन्द्रवंशका विस्तार करनेवाले राजा हुए। इस प्रकार इल-कुमार पुरुरवा चन्द्रवंशकी तथा राजा इक्ष्वाकु सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले बताये गये हैं। ‘इल’ किम्पुरुष-अवस्थामें ‘सुद्धुम्र’ भी कहलाते थे। तदनन्तर सुद्धुम्रसे तीन पुत्र और हुए, जो किसीसे परास्त होनेवाले नहीं थे। उनके नाम उत्कल, गय तथा हरिताश्व थे। हरिताश्व बड़े पराक्रमी थे। उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई और गयकी राजधानी गया मानी गयी है। इसी प्रकार हरिताश्वको कुरु प्रदेशके साथ-ही-साथ दक्षिण दिशाका राज्य दिया गया। सुद्धुम्र अपने पुत्र पुरुरवाको प्रतिष्ठानपुर (पैठन) के राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं दिव्य वर्षके फलोंका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये।

[सुद्धुम्रके बाद] इक्ष्वाकु ही मनुके सबसे बड़े पुत्र थे। उन्हें मध्यदेशका राज्य प्राप्त हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें पंद्रह श्रेष्ठ थे। वे मेरुके उत्तरीय प्रदेशमें राजा हुए। उनके सिवा एक सौ चौदह पुत्र और हुए, जो मेरुके दक्षिणवर्ती देशोंके राजा बताये गये हैं। इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रसे ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ। ककुत्स्थका पुत्र

सुयोधन था। सुयोधनका पुत्र पृथु और पृथुका विश्वावसु हुआ। उसका पुत्र आर्द्र तथा आर्द्रका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्वका पुत्र महापराक्रमी शावस्त हुआ, जिसने अङ्गदेशमें शावस्ती नामकी पुरी बसायी। शावस्तसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्वका जन्म हुआ। कुवलाश्व धुन्धु नामक दैत्यका विनाश करके धुन्धुमारके नामसे विख्यात हुए। उनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड तथा कपिलाश्व। धुन्धुमारके पुत्रोंमें प्रतापी कपिलाश्व अधिक प्रसिद्ध थे। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे संहताश्वका जन्म हुआ। संहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृताश्व तथा रणाश्व। रणाश्वके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके मान्धाता थे। मान्धाताके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, धर्मसेतु तथा मुचुकुन्द। इनमें मुचुकुन्दकी ख्याति विशेष थी। वे इन्द्रके मित्र और प्रतापी राजा थे। पुरुकुत्सका पुत्र सम्भूत था, जिसका विवाह नर्मदाके साथ हुआ था। सम्भूतसे सम्भूति और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ। त्रिधन्वाका पुत्र त्रैधारुण नामसे विख्यात हुआ। उसके पुत्रका नाम सत्यब्रत था। उससे सत्यरथका जन्म हुआ। सत्यरथके पुत्र हरिश्चन्द्र थे। हरिश्चन्द्रसे रोहित हुआ। रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई। बाहुके पुत्र परम धर्मात्मा राजा सगर हुए। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। इन दोनोंने पुत्रकी इच्छासे और्व नामक अग्निकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर और्वने उन दोनोंको इच्छानुसार वरदान देते हुए कहा—‘एक रानी साठ हजार पुत्र पा सकती है और दूसरीको एक ही पुत्र मिलेगा, जो वंशकी रक्षा करनेवाला होगा [इन दो वरोंमेंसे जिसको जो पसंद आवे, वह उसे ले ले] !’ प्रभाने बहुत-से पुत्रोंको लेना स्वीकार किया तथा भानुमतीको एक ही पुत्र—असमंजसकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर प्रभाने, जो यदुकुलकी कन्या थी, साठ हजार

पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो अश्वकी खोजके लिये पृथ्वीको खोदते समय भगवान् विष्णुके अवतार महात्मा कपिलके कोपसे दग्ध हो गये। असमंजसका पुत्र अंशुपान्तके नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दिलीप था। दिलीपसे भगीरथका जन्म हुआ, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गङ्गाको इस पृथ्वीपर उतारा था। भगीरथके पुत्रका नाम नाभाग हुआ। नाभागके अम्बरीष और अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्णका जन्म हुआ। ऋतुपर्णसे कल्माषपाद और कल्माषपादसे सर्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। सर्वकर्माका आरण्य और आरण्यका पुत्र निघ हुआ। निघके दो उत्तम पुत्र हुए—अनुमित्र और रघु। अनुमित्र शत्रुओंका नाश करनेके लिये वनमें चल गया। रघुसे दिलीप और दिलीपसे अज हुए। अजसे दीर्घबाहु और दीर्घबाहुसे प्रजापालकी उत्पत्ति हुई। प्रजापालसे दशरथका जन्म हुआ। उनके चार पुत्र हुए। वे सब-के-सब भगवान् नारायणके स्वरूप थे। उनमें राम सबसे बड़े थे, जिन्होंने रावणको मारा और रघुवंशका विस्तार किया तथा भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिने रामायणके रूपमें जिनके चरित्रका वित्रण किया। रामके दो पुत्र हुए—कुश और लव। ये दोनों ही इक्ष्वाकु-वंशका विस्तार करनेवाले थे। कुशसे अतिथि और अतिथिसे निषधका जन्म हुआ। निषधसे नल, नलसे नभा, नभासे पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वाकी उत्पत्ति हुई। क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक हुआ। वह वीर और प्रतापी था। उसका पुत्र अहीनगु हुआ। अहीनगुसे सहस्राश्वका जन्म हुआ। सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक, चन्द्रावलोकसे तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि, चन्द्रगिरिसे चन्द्र तथा चन्द्रसे श्रुतायु हुए, जो महाभारत-युद्धमें मारे गये। नल नामके दो राजा प्रसिद्ध हैं—एक तो वीरसेनके पुत्र थे और दूसरे निषधके। इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशके प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन किया गया।



पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अङ्गोंका वर्णन

भीष्मजीने कहा—भगवन्! अब मैं पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! बड़े हर्षकी बात है; मैं तुम्हें आरम्भसे ही पितरोंके वंशका वर्णन सुनाता हूँ, सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन तो मूर्तिरहित हैं और चार मूर्तिमान्। ये सब-के-सब अमिततेजस्वी हैं। इनमें जो मूर्तिरहित पितृगण हैं, वे वैराज प्रजापतिकी सन्तान हैं; अतः वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनका यजन करते हैं। अब पितरोंकी लोक-सृष्टिका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। सोमपथ नामसे प्रसिद्ध कुछ लोक हैं, जहाँ कश्यपके पुत्र पितृगण निवास करते हैं। देवतालोग सदा उनका सम्मान किया करते हैं। अग्निश्वास नामसे प्रसिद्ध यज्वा पितृगण उन्हीं लोकोंमें निवास करते हैं। स्वर्गमें विश्राज नामके जो दूसरे तेजस्वी लोक हैं, उनमें बर्हिषद्संज्ञक पितृगण निवास करते हैं। वहाँ मोरोंसे जुते हुए हजारों विमान हैं तथा संकल्पमय वृक्ष भी हैं, जो संकल्पके अनुसार फल प्रदान करनेवाले हैं। जो लोग इस लोकमें अपने पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, वे उन विश्राज नामके लोकोंमें जाकर समृद्धिशाली भवनोंमें आनन्द भोगते हैं तथा वहाँ मेरे सैकड़ों पुत्र विद्यमान रहते हैं, जो तपस्या और योगबलसे सम्पन्न, महात्मा, महान् सौभाग्यशाली और भक्तोंको अभ्यदान देनेवाले हैं। मार्त्तण्डमण्डल नामक लोकमें मरीचिंगर्भ नामके पितृगण निवास करते हैं। वे अङ्गिरा मुनिके पुत्र हैं और लोकमें हविष्मान् नामसे विख्यात हैं; वे राजाओंके पितर हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाले हैं। तीर्थोंमें श्राद्ध करनेवाले श्रेष्ठ क्षत्रिय उन्हींके लोकमें जाते हैं। कामदुध नामसे प्रसिद्ध जो लोक हैं, वे इच्छानुसार भोगकी प्राप्ति करनेवाले हैं। उनमें सुखध नामके पितर निवास करते हैं। लोकमें वे आज्यप नामसे विख्यात हैं और प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं। पुलहके बड़े भाईसे उत्पन्न वैश्यगण उन पितरोंकी पूजा करते हैं। श्राद्ध करनेवाले पुरुष उस लोकमें पहुँचनेपर एक ही साथ हजारों जन्मोंके परिचित

माता, भाई, पिता, सास, मित्र, सम्बन्धी तथा बन्धुओंका दर्शन करते हैं। इस प्रकार पितरोंके तीन गण बताये गये। अब चौथे गणका वर्णन करता हूँ। ब्रह्मलोकके ऊपर सुमानस नामके लोक स्थित हैं, जहाँ सोमप नामसे प्रसिद्ध सनातन पितरोंका निवास है। वे सब-के-सब धर्ममय स्वरूप धारण करनेवाले तथा ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे योगी हैं; अतः ब्रह्मभावको प्राप्त होकर सृष्टि आदि करके सब इस समय मानसरोवरमें स्थित हैं। इन पितरोंकी कन्या नर्मदा नामकी नदी है, जो अपने जलसे समस्त प्राणियोंको पवित्र करती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलती है। उन सोमप नामवाले पितरोंसे ही सम्पूर्ण प्रजासृष्टिका विस्तार हुआ है, ऐसा जानकर मनुष्य सदा धर्मभावसे उनका श्राद्ध करते हैं। उन्हींके प्रसादसे योगका विस्तार होता है।

आदि सृष्टिके समय इस प्रकार पितरोंका श्राद्ध प्रचलित हुआ। श्राद्धमें उन सबके लिये चाँदीके पात्र अथवा चाँदीसे युक्त पात्रका उपयोग होना चाहिये। ‘स्वधा’ शब्दके उच्चारणपूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ श्राद्ध-दान पितरोंको सर्वदा सन्तुष्ट करता है। विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे अग्निहोत्री एवं सोमपायी ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन कराकर पितरोंको तृप्त करें। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमें अथवा जलमें ये शिवजीके स्थानके समीप पितरोंके निमित्त दान करें; ये ही पितरोंके लिये निर्मल स्थान हैं। पितृकार्यमें दक्षिण दिशा, उत्तम मानी गयी है। यज्ञोपवीतको अपसव्य अर्थात् दाहिने कंधेपर करके किया हुआ तर्पण, तिलदान तथा ‘स्वधा’ के उच्चारणपूर्वक किया हुआ श्राद्ध—ये सदा पितरोंको तृप्त करते हैं। कुश, उड्ढ, साठी धानका चावल, गायका दूध, मधु, गायका धी, सावाँ, अगहनीका चावल, जौ, तीनाका चावल, मूँग, गन्ना और सफेद फूल—ये सब वस्तुएँ पितरोंको सदा प्रिय हैं।

अब ऐसे पदार्थ बताता हूँ, जो श्राद्धमें सर्वदा वर्जित हैं। मसूर, सन, मटर, राजमाष, कुलथी, कमल,

बिल्व, मदार, धूतूरा, पारिभद्राट, रुषक, भेड़-बकरीका दूध, कोदो, दारवरट, कैथ, महुआ और अलसी—ये सब निषिद्ध हैं। अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको श्राद्धमें इन वस्तुओंका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये। जो भक्तिभावसे पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी सन्तुष्ट करते हैं। वे पुष्टि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग प्रदान करते हैं। पितृकार्य देवकार्यसे भी बढ़कर है; अतः देवताओंको तृप्त करनेसे पहले पितरोंको ही सन्तुष्ट करना श्रेष्ठ माना गया है। कारण, पितृगण शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, सदा प्रिय वचन बोलते हैं, भक्तोंपर प्रेम रखते हैं और उन्हें सुख देते हैं। पितर पर्वके देवता हैं अर्थात् प्रत्येक पर्वपर पितरोंका पूजन करना उचित है। हविष्मान-संशक पितरोंके अधिपति सूर्योदेव ही श्राद्धके देवता माने गये हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी ! आपके मुँहसे यह सारा विषय सुनकर मेरी इसमें बड़ी भक्ति हो गयी है; अतः अब मुझे श्राद्धका समय, उसकी विधि तथा श्राद्धका स्वरूप बतलाइये। श्राद्धमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा किनको छोड़ना चाहिये? श्राद्धमें दिया हुआ अन्न पितरोंके पास कैसे पहुँचता है? किस विधिसे श्राद्ध करना उचित है? और वह किस तरह उन पितरोंको तृप्त करता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! अन्न और जलसे अथवा दूध एवं फल-मूल आदिसे पितरोंको सन्तुष्ट करते हुए प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध तीन प्रकारका होता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। पहले नित्य श्राद्धका वर्णन करता हूँ। उसमें अर्ध्य और आवाहनकी क्रिया नहीं होती। उसे अदैव समझना चाहिये—उसमें विश्वदेवोंको भाग नहीं दिया जाता।

पर्वके दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण कहते हैं। पार्वण-श्राद्धमें जो ब्राह्मण निमन्त्रित करनेयोग्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ: श्रवण करो! जो पञ्चामिका सेवन करनेवाला, स्नातक, त्रिसौपर्ण^१, वेदके व्याकरण आदि छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय (वेदज्ञ), श्रोत्रियका पुत्र, वेदके विधिवाक्योंका विशेषज्ञ, सर्वज्ञ (सब विषयोंका ज्ञाता), वेदका स्वाध्यायी, मन्त्र जपनेवाला, ज्ञानवान्, त्रिणाचिकेत^२, त्रिमधु^३, अन्य शास्त्रोंमें भी परिनिष्ठित, पुराणोंका विद्वान्, स्वाध्यायशील, ब्राह्मणभक्त, पिताकी सेवा करनेवाला, सूर्योदेवताका भक्त, वैष्णव, ब्रह्मवेत्ता, योगशास्त्रका ज्ञाता, शान्त, आत्मज्ञ, अत्यन्त शीलवान् तथा शिवभक्तिपरायण हो, ऐसा ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका अधिकारी है। ऐसे ब्राह्मणोंको यलपूर्वक श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। अब जो लोग श्राद्धमें वर्जनीय हैं, उनका वर्णन सुनो। पतित, पतितका पुत्र, नपुंसक, चुगलखोर और अत्यन्त रोगी—ये सब श्राद्धके समय धर्मज्ञ पुरुषोंद्वारा त्याग देने योग्य हैं। श्राद्धके पहले दिन अथवा श्राद्धके ही दिन विनयशील ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। निमन्त्रण दिये हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें पितरोंका आवेश हो जाता है। वे वायुरूपसे उनके भीतर प्रवेश करते हैं और ब्राह्मणोंके बैठनेपर स्वयं भी उनके साथ बैठे रहते हैं।

किसी ऐसे स्थानको, जो दक्षिण दिशाकी ओर नीचा हो, गोबरसे लीपकर वहाँ श्राद्ध आरम्भ करे अथवा गोशालामें या जलके समीप श्राद्ध करे। आहितामि पुरुष पितरोंके लिये चरु (खीर) बनाये और यह कहकर कि इससे पितरोंका श्राद्ध कर्तुंगा, वह सब दक्षिण दिशामें रख दे। तदनन्तर उसमें घृत और मधु आदि मिलाकर अपने सामनेकी ओर तीन निर्वापस्थान (पिण्डदानकी वेदियाँ) बनाये। उनकी लम्बाई एक बित्ता

१. 'ब्रह्मेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका नियमपूर्वक अध्ययन करनेवाला त्रिसौपर्ण कहलाता है।

२. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको त्रिणाचिकेत कहते हैं। उसका स्वाध्याय अथवा अनुष्ठान करनेवाला पुरुष भी त्रिणाचिकेत कहलाता है।

३. 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि तीनों ऋचाओंका पाठ और अनुगमन करनेवालेको त्रिमधु कहते हैं।

और चौड़ाई चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। साथ ही, खैरकी तीन दर्वी (कलघुल) बनवावे, जो चिकनी हों तथा जिनमें चाँदीका संसर्ग हो। उनकी लम्बाई एक-एक रत्निकी^१ और आकार हाथके समान सुन्दर होना उचित है। जलपात्र, कांस्यपात्र, प्रोक्षण, समिधा, कुश, तिलपात्र, उत्तम वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन—ये सब वस्तुएँ धीरे-धीरे दक्षिण दिशामें रखे। उस समय जनेऊ दाहिने कंधेपर होना चाहिये। इस प्रकार सब सामान एकत्रित करके घरके पूर्व गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर गोमूत्रसे मण्डल बनावे और अक्षत तथा फूलसहित जल लेकर तथा जनेऊको क्रमशः बायें एवं दाहिने कंधेपर छोड़कर ब्राह्मणोंके पैर धोये तथा बारम्बार उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर, विधिपूर्वक आचमन कराकर उन्हें बिछाये हुए दर्भयुक्त आसनोंपर बिठावे और उनसे मन्त्रोच्चारण करावे। सामर्थ्यशाली पुरुष भी देवकार्य (वैश्वदेव श्राद्ध) में दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको ही भोजन कराये अथवा दोनों श्राद्धोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही जिमाये। विद्वान् पुरुषको श्राद्धमें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। पहले विश्वेदेव-सम्बन्धी और फिर पितृ-सम्बन्धी विद्वान् ब्राह्मणोंकी अर्ध्य आदिसे विधिवत् पूजा करे तथा उनकी आज्ञा लेकर अग्निमें यथाविधि हवन करे। विद्वान् पुरुष गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार घृतयुक्त चरुका अग्नि और सोमकी तृस्मिके उद्देश्यसे समयपर हवन करे। इस प्रकार देवताओंकी तृस्मि करके वह श्राद्धकर्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण साक्षात् अग्निका स्वरूप माना जाता है। देवताके उद्देश्यसे किया जानेवाला हवन आदि प्रत्येक कार्य जनेऊको बायें कंधेपर रखकर ही करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके निमित्त करनेयोग्य पर्युक्षण (सेचन) आदि सारा कार्य विज्ञ पुरुषको जनेऊको दायें कंधेपर करके—अपसव्य भावसे करना उचित है। हवन तथा विश्वेदेवोंको अर्पण करनेसे बंचे हुए अन्नको लेकर उसके

कई पिण्ड बनावे और एक-एक पिण्डको दाहिने हाथमें लेकर तिल और जलके साथ उसका दान करना चाहिये। संकल्पके समय जल-पात्रमें रखे हुए जलको बायें हाथकी सहायतासे दायें हाथमें ढाल लेना चाहिये। श्राद्धकालमें पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखे और मात्सर्यका त्याग कर दे। [पिण्डदानकी विधि इस प्रकार है—] पिण्ड देनेके लिये बनायी हुई वेदियोंपर यत्पूर्वक रेखा बनावे। इसके बाद अवनेजन-पात्रमें जल लेकर उसे रेखाङ्कित वेदीपर गिरावे। [यह अवनेजन अर्थात् स्थान-शोधनकी क्रिया है।] फिर दक्षिणाभिमुख होकर वेदीपर कुश बिछावे और एक-एक करके सब पिण्डोंको क्रमशः उन कुशोंपर रखे। उस समय [पिता-पितामह आदिमेंसे जिस-जिसके उद्देश्यसे पिण्ड दिया जाता हो, उस-उस] पितरके नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करते हुए संकल्प पढ़ा चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् अपने दायें हाथको पिण्डाधारभूत कुशोंपर पोंछना चाहिये। यह लेपभागभोजी पितरोंका भाग है। उस समय ऐसे ही मन्त्रका जप अर्थात् 'लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करना उचित है। इसके बाद पुनः प्रत्यवनेजन करे अर्थात् अवनेजनपात्रमें जल लेकर उससे प्रत्येक पिण्डको नहलावे। फिर जलयुक्त पिण्डोंको नमस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त वेदमन्त्रोंके द्वारा पिण्डोंपर पितरोंका आवाहन करे और चन्दन, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् आहवनीयादि अग्नियोंके प्रतिनिधिभूत एक-एक ब्राह्मणको जलके साथ एक-एक दर्वी^२ प्रदान करे। फिर विद्वान् पुरुष पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डोंके ऊपर कुश रखे तथा पितरोंका विसर्जन करे। तदनन्तर, क्रमशः सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश निकालकर सबको एकत्र करे और ब्राह्मणोंको यत्पूर्वक पहले वही भोजन करावे; क्योंकि उन पिण्डोंका अंश ब्राह्मणलोग ही भोजन करते

१. मुङ्गी नैधे हुए हाथकी लम्बाईको रनि कहते हैं।

२. खदिर (खैर) की बनी हुई कलघुल।

है। इसीलिये अमावास्याके दिन किये हुए पार्वण श्राद्धको 'अन्वाहार्य' कहा गया है। पहले अपने हाथमें पवित्रीसहित तिल और जल लेकर पिण्डोंके आगे छोड़ दे और कहे—'एषां स्वधा अस्तु' (ये पिण्ड स्वधा-स्वरूप हो जायें)। इसके बाद परम पवित्र और उत्तम अन्न परोसकर उसकी प्रशंसा करते हुए उन ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उस समय भगवान् श्रीनारायणका स्मरण करता रहे और क्रोधी स्वभावको सर्वथा त्याग दे। ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर विकिरान्न दान करे; यह सब वर्णोंके लिये उचित है। विकिरान्न-दानकी विधि यह है। तिलसंहित अन्न और जल लेकर उसे कुशके ऊपर पृथ्वीपर रख दे। जब ब्राह्मण आचमन कर लें तो पुनः पिण्डोंपर जल गिरावे। फूल, अक्षत, जल छोड़ना और स्वधावाचन आदि सारा कार्य पिण्डके ऊपर करे।' पहले देवश्राद्धकी समाप्ति करके फिर पितृश्राद्धकी समाप्ति करे, अन्यथा श्राद्धका नाश हो जाता है। इसके बाद उत्तमस्तक होकर ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन करे।

यह आहिताग्नि पुरुषोंके लिये अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध बतलाया गया। अमावास्याके पर्वपर किये जानेके कारण यह पार्वण कहलाता है। यही नैमित्तिक श्राद्ध है। श्राद्धके पिण्ड गाय या बकरीको खिला दे अथवा ब्राह्मणोंको दे दे अथवा अग्नि या जलमें छोड़ दे। यह भी न हो तो खेतमें बिखेर दे अथवा जलकी धारामें बहा दे। [सन्तानकी इच्छा रखनेवाली] पत्नी विनीत भावसे आकर मध्यम अर्थात् पितामहके पिण्डको ग्रहण करे और उसे खा जाय। उस समय 'आधत्त पितरो गर्भम्' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। श्राद्ध और पिण्डदान आदिकी स्थिति तभीतक रहती है, जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन नहीं हो जाता। इनके विसर्जनके पश्चात् पितृकार्य समाप्त हो जाता है। उसके बाद बलिवैथ्यदेव करना चाहिये। तदनन्तर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ पितरोंद्वारा सेवित प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। श्राद्ध करनेवाले यजमान तथा श्राद्धभोजी ब्राह्मण दोनोंको उचित है कि वे दुबारा भोजन न करें,

राह न चलें, मैथुन न करें; साथ ही उस दिन स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबको सर्वथा त्याग दें। इस विधिसे किया हुआ श्राद्ध धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी सिद्धि करनेवाला होता है। कन्या, कुम्ह और वृष राशिपर सूर्यके रहते कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जहाँ-जहाँ सपिण्डीकरणरूप श्राद्ध करना हो, वहाँ अग्निहोत्र करनेवाले पुरुषको सदा इसी विधिसे करना चाहिये।

अब मैं ब्रह्माजीके बताये हुए साधारण श्राद्धका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। उत्तरायण और दक्षिणायनके प्रारम्भके दिन, विषुव नामक योग (तुला और मेषकी संक्रान्ति) में [जब कि दिन और रात बराबर होते हैं], प्रत्येक अमावास्याको, प्रतिसंक्रान्तिके दिन, अष्टका (पौष, माघ, फाल्गुन तथा आश्विन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि) में, पूर्णिमाको, आर्द्ध, मघा और रोहिणी—इन नक्षत्रोंमें, श्राद्धके योग्य उत्तम पदार्थ और सुपात्र ब्राह्मणके प्राप्त होनेपर, व्यतीपात, विष्टि और वैधृति योगके दिन, वैशाखकी तृतीयाको, कार्तिककी नवमीको, माघकी पूर्णिमा तथा भाद्रपदकी त्रयोदशी तिथिको भी श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। उपर्युक्त तिथियाँ युगादि कहलाती हैं। ये पितरोंका उपकार करनेवाली हैं। इसी प्रकार मन्वन्तरादि तिथियोंमें भी विद्वान् पुरुष श्राद्धका अनुष्ठान करे। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र तथा भाद्रपदकी शुक्ला तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी शुक्ला एकादशी, आषाढ़ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—इन तिथियोंको मन्वन्तरादि कहते हैं। ये दिये हुए दानको अक्षय कर देनेवाली हैं। विश पुरुषको चाहिये कि वैशाखकी पूर्णिमाको, ग्रहणके दिन, किसी उत्सवके अवसरपर और महालय (आश्विन कृष्णपक्ष) में तीर्थ, मन्दिर, गोशाला, द्वीप, उद्यान तथा घर आदिमें लिये-पुते एकान्त स्थानमें श्राद्ध करे।'

[अब श्राद्धके क्रमका वर्णन किया जाता है—]

पहले विश्वेदेवोंके लिये आसन देकर जौ और पुष्टोंसे उनकी पूजा करे। [विश्वेदेवोंके दो आसन होते हैं; एकपर पिता-पितामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका आवाहन होता है और दूसरेपर मातामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका।] उनके लिये दो अर्घ्य-पात्र (सिकोरे या दोने) जौ और जल आदिसे भर दे और उन्हें कुशकी पवित्रीपर रखे। 'शन्नोदेवीरभीष्ट्ये' इत्यादि मन्त्रसे जल तथा 'यवोऽसि—' इत्यादिके द्वारा जौके दोनोंको उन पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। फिर गन्ध-पुष्ट आदिसे पूजा करके वहाँ विश्वेदेवोंकी स्थापना करे और 'विश्वे देवास'—इत्यादि दो मन्त्रोंसे विश्वेदेवोंका आवाहन करके उनके ऊपर जौ छोड़े। जौ छोड़ते समय इस प्रकार कहे—'जौ ! तुम सब अन्नोंके राजा हो। तुम्हारे देवता वरुण हैं—वरुणसे ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; तुम्हारे अंदर मधुका मेल है। तुम सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले, पवित्र एवं मुनियोद्वारा प्रशंसित अन्न हो।'* फिर अर्घ्यपात्रको चन्दन और फूलोंसे सजाकर 'या दिव्या आपः'—इस मन्त्रको पढ़ते हुए विश्वेदेवोंको अर्घ्य दे। इसके बाद उनकी पूजा करके गन्ध आदि निवेदन कर पितृयज्ञ (पितृश्राद्ध) आरम्भ करे। पहले पिता आदिके लिये कुशके तीन आसनोंकी कल्पना करके फिर तीन अर्घ्यपात्रोंका पूजन करे—उन्हें पुष्ट आदिसे सजावे। प्रत्येक अर्घ्यपात्रको कुशकी पवित्रीसे युक्त करके 'शन्नोदेवीरभीष्ट्ये—' इस मन्त्रसे सबमें जल छोड़े। फिर 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो—' इस मन्त्रसे तिल छोड़कर [बिना मन्त्रके ही] चन्दन और पुष्ट आदि भी छोड़े। अर्घ्यपात्र पीपल आदिकी लकड़ीका, पत्तेका या चाँदीका बनवावे अथवा समुद्रसे निकले हुए शङ्ख आदिसे अर्घ्यपात्रका काम ले। सोने, चाँदी और ताँबेका पात्र पितरोंको अभीष्ट होता है। चाँदीकी तो चर्चा सुनकर भी पितर प्रसन्न हो जाते हैं। चाँदीका दर्शन अथवा चाँदीका दान उन्हें प्रिय है। यदि चाँदीके बने हुए अथवा चाँदीसे युक्त पात्रमें जल भी रखकर पितरोंको श्रद्धापूर्वक दिया जाय तो वह अक्षय

हो जाता है। इसलिये पितरोंके पिण्डोंपर अर्घ्य चढ़ानेके लिये चाँदीका ही पात्र उत्तम माना गया है। चाँदी भगवान् श्रीशङ्करके नेत्रसे प्रकट हुई है, इसलिये वह पितरोंको अधिक प्रिय है।

इस प्रकार उपर्युक्त वस्तुओंमेंसे जो सुलभ हो, उसके अर्घ्यपात्र बनाकर उन्हें ऊपर बताये अनुसार जल, तिल और गन्ध-पुष्ट आदिसे सुसज्जित करे; तत्पश्चात् 'या दिव्या आपः' इस मन्त्रको पढ़कर पिताके नाम और गोत्र आदिका उच्चारण करके अपने हाथमें कुश ले ले। फिर इस प्रकार कहे—'पितृन् आवाहयिष्यामि'—'पितरोंका आवाहन करूँगा।' तब निमन्त्रणमें आये हुए ब्राह्मण 'तथास्तु' कहकर श्राद्धकर्ताको आवाहनके लिये आज्ञा प्रदान करें। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर 'उशन्तस्त्वा निधीमहि—' 'आयन्त्रुनः पितरः—' इन दो ऋचाओंका पाठ करते हुए वह पितरोंका आवाहन करे। तदनन्तर, 'या दिव्या आपः—' इस मन्त्रसे पितरोंको अर्घ्य देकर प्रत्येकके लिये गन्ध-पुष्ट आदि पूजोपचार एवं वस्त्र चढ़ावे तथा पृथक्-पृथक् संकल्प पढ़कर उन्हें समर्पित करे। [अर्घ्यदानकी प्रक्रिया इस प्रकार है—] पहले अनुलोमक्रमसे अर्थात् पिताके उद्देश्यसे दिये हुए अर्घ्यपात्रका जल पितामहके अर्घ्यपात्रमें डाले और फिर पितामहके अर्घ्यपात्रका सारा जल प्रपितामहके अर्घ्यपात्रमें डाल दे, फिर विलोमक्रमसे अर्थात् प्रपितामहके अर्घ्यपात्रको पितामहके अर्घ्यपात्रमें रखे और उन दोनों पात्रोंको उठाकर पिताके अर्घ्यपात्रमें रखे। इस प्रकार तीनों अर्घ्यपात्रोंको एक-दूसरेके ऊपर करके पिताके आसनके उत्तरभागमें 'पितृभ्यः स्थानमसि' ऐसा कहकर उन्हें ढुलका दे—उलटकर रख दे। ऐसा करके अन्न परोसनेका कार्य करे।

परोसनेके समय भी पहले अग्रिकार्य करना चाहिये अर्थात् थोड़ा-सा अन्न निकालकर 'अग्रये कव्यवाहनाय स्वाहा' और 'सोमाय पितृमते स्वाहा'—इन दो मन्त्रोंसे

* यवोऽसि धान्यरोजस्तु वारुणो मधुमिश्रितः। निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिसंसुतम्॥

अग्नि और सोम देवताके लिये अग्निमें दो बार आहुति डाले। इसके बाद दोनों हाथोंसे अन्न निकालकर परोसे। परोसते समय 'उशन्तस्त्वा निधीमहि—' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करता रहे। उत्तम, गुणकारी शाक आदि तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थकि साथ दही, दूध, गौका घृत और शक्कर आदिसे युक्त अन्न पितरोंके लिये तृप्तिकारक होता है। मधु मिलाकर तैयार किया हुआ कोई भी पदार्थ तथा गायका दूध और भी मिलायी हुई खीर आदि पितरोंके लिये दी जाय तो वह अक्षय होती है—ऐसा आदि देवता पितरोंने स्वयं अपने ही मुखसे कहा है। इस प्रकार अन्न परोसकर पितृसम्बन्धी पुराण; ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र-सम्बन्धी भाँति-भाँतिके स्तोत्र; इन्द्र, रुद्र और सोमदेवताके सूक्त; पावमानी ऋचाएँ; बृहद्रथन्तर; ज्येष्ठसामका गौरवगान; शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण तथा और भी जो कुछ ब्राह्मणोंको तथा अपनेको प्रिय लगे वह सब सुनाना चाहिये। महाभारतका भी पाठ करना चाहिये; क्योंकि वह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर जो अन्न और जल आदि शेष रहे, उसे उनके आगे जमीनपर बिखेर दे। यह उन जीवोंका भाग है, जो संस्कार आदिसे हीन होनेके कारण अधम गतिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर उन्हें हाथ-मुँह धोनेके लिये जल प्रदान करे। इसके बाद गायके गोबर और गोमूत्रसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर उनके ऊपर यत्नपूर्वक पितृयज्ञकी भाँति विधिवत् पिण्डदान करे। पिण्डदानके पहले पितरोंके नाम-गोत्रका उच्चारण करके उन्हें अवनेजनके लिये जल देना चाहिये। फिर पिण्ड देनेके बाद पिण्डोंपर प्रत्यवनेजनका जल गिराकर उनपर पुष्प आदि चढ़ाना चाहिये। सव्याप्सव्यका विचार करके प्रत्येक कार्यका सम्पादन करना उचित है। पिताके श्राद्धकी भाँति माताका श्राद्ध भी हाथमें कुश लेकर विधिवत् सम्पन्न करे। दीप जलावे; पुष्प आदिसे पूजा करे। ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन

करके एक-एक बार सबको जल दे। फिर फूल और अक्षत देकर तिलसहित अक्षयोदक दान करे। फिर नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। गौ, भूमि, सोना, वस्त्र और अच्छे-अच्छे बिछौने दे। कृपणता छोड़कर पितरोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए जो-जो वस्तु ब्राह्मणोंको, अपनेको तथा पिताको भी प्रिय हो, वही-वही वस्तु दान करे। तत्पश्चात् स्वधावाचन करके विश्वेदेवोंको जल अर्पण करे और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ले। विद्वान् पुरुष पूर्वाभिमुख होकर कहे—‘अघोराः पितरः सन्तु (मेरे पितर शान्त एवं मङ्गलमय हों)।’ यजमानके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण-लोग ‘तथा सन्तु (तुम्हारे पितर ऐसे ही हों)’—ऐसा कहकर अनुमोदन करें। फिर श्राद्धकर्ता कहे—‘गोत्रं नो वर्धताम्’ (हमारा गोत्र बढ़े)। यह सुनकर ब्राह्मणोंको ‘तथास्तु’ (ऐसा ही हो) इस प्रकार उत्तर देना चाहिये। फिर यजमान कहे—‘दातारो मेऽभिवर्धन्ताम्’ ‘वेदाः सन्ततिरेव च—एताः सत्या आशिषः सन्तु (मेरे दाता बढ़ें, साथ ही मेरे कुलमें वेदोंके अध्ययन और सुयोग्य सन्तानकी वृद्धि हो—ये सारे आशीर्वाद सत्य हों)।’ यह सुनकर ब्राह्मण कहें—‘सन्तु सत्या आशिषः (ये आशीर्वाद सत्य हों)।’ इसके बाद भक्तिपूर्वक पिण्डोंको उठाकर सूंधे और स्वस्तिवाचन करे। फिर भाई-बच्चु और स्त्री-पुत्रके साथ प्रदक्षिणा करके आठ पग चले। तदनन्तर लौटकर प्रणाम करे। इस प्रकार श्राद्धकी विधि पूरी करके मन्त्रवेत्ता पुरुष अग्नि प्रज्वलित करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव तथा नैतिक बलि अर्पण करे। तदनन्तर भूत्य, पुत्र, बान्धव तथा अतिथियोंके साथ बैठकर वही अन्न भोजन करे, जो पितरोंको अर्पण किया गया हो। जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, ऐसा पुरुष भी इस श्राद्धको प्रत्येक पर्वपर कर सकता है। इसे साधारण [या नैमित्तिक] श्राद्ध कहते हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। राजन्! स्त्रीरहित या विदेशस्थित मनुष्य भी भक्तिपूर्ण हृदयसे इस श्राद्धका अनुष्ठान करनेका अधिकारी है। यही नहीं, शूद्र भी इसी विधिसे श्राद्ध कर सकता है; अन्तर इतना ही है कि वह

वेदमन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकता।

तीसरा अर्थात् काम्य श्राद्ध आभ्युदयिक है; इसे वृद्धि-श्राद्ध भी कहते हैं। उत्सव और आनन्दके अवसरपर, संस्कारके समय, यज्ञमें तथा विवाह आदि माझ़लिक कार्योंमें यह श्राद्ध किया जाता है। इसमें पहले माताओंकी अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामहीकी पूजा होती है। इनके बाद पितरों—पिता, पितामह और प्रपितामहका पूजन किया जाता है। अन्तमें मातामह आदिकी पूजा होती है। अन्य श्राद्धोंकी भाँति इसमें भी विश्वेदेवोंकी पूजा आवश्यक है। दक्षिणावर्तक क्रमसे पूजोपचार चढ़ाना चाहिये। आभ्युदयिक श्राद्धमें दही, अक्षत, फल और जलसे ही पूर्वाभिमुख होकर पितरोंको

पिण्डदान दिया जाता है। 'सम्पन्नम्' का उच्चारण करके अर्घ्य और पिण्डदान देना चाहिये। इसमें युगल ब्राह्मणोंको अर्घ्य दान दे तथा युगल (सपलीक) ब्राह्मणोंकी ही वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा पूजा करे। तिलका काम जौसे लेना चाहिये तथा सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा सब प्रकारके मङ्गलपाठ करावे। इस प्रकार शूद्र भी कर सकता है। यह वृद्धिश्राद्ध सबके लिये सामान्य है। बुद्धिमान् शूद्र 'पित्रे नमः' इत्यादि नमस्कार-मन्त्रके द्वारा ही दान आदि कार्य करे। भगवान्‌का कथन है कि शूद्रके लिये दान ही प्रधान है; क्योंकि दानसे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।



एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धोंकी विधि तथा श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। साथ ही यह भी बताऊँगा कि पिताके मरनेपर पुत्रोंको किस प्रकार अशौचका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणोंमें मरणाशौच दस दिनतक रखनेकी आज्ञा है, क्षत्रियोंमें बारह दिन, वैश्योंमें पंद्रह दिन तथा शूद्रोंमें एक महीनेका विधान है। यह अशौच सपिण्ड (सात पीढ़ीतक) के प्रत्येक मनुष्यपर लागू होता है। यदि किसी बालककी मृत्यु चूडाकरणके पहले हो जाय तो उसका अशौच एक रातका कहा गया है। उसके बाद उपनयनके पहलेतक तीन राततक अशौच रहता है। जननाशौचमें भी सब वर्णोंके लिये यही व्यवस्था है। अस्थि-सञ्चयनके बाद अशौचग्रस्त पुरुषके शरीरका स्पर्श किया जा सकता है। प्रेतके लिये बारह दिनोंतक प्रतिदिन पिण्ड-दान करना चाहिये; क्योंकि वह उसके लिये पाथेय (राहखर्च) है, इसलिये उसे पाकर प्रेतको बड़ी प्रसन्नता होती है। द्वादशाहके बाद ही प्रेतको यमपुरीमें ले जाया जाता है; तबतक वह घरपर ही रहता है। अतः दस राततक प्रतिदिन उसके लिये आकाशमें दूष देना चाहिये; इससे सब प्रकारके दाहकी शान्ति होती है तथा मार्गके परिश्रमका भी निवारण होता है। दशाहके

बाद ग्यारहवें दिन, जब कि सूतक निवृत्त हो जाता है, अपने गोत्रके ग्यारह ब्राह्मणोंको ही बुलाकर भोजन कराना चाहिये। अशौचकी समाप्तिके दूसरे दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। इसमें न तो आवाहन होता है न अग्रौकरण (अग्निमें हवन)। विश्वेदेवोंका पूजन आदि भी नहीं होता। एक ही पवित्री, एक ही अर्घ और एक ही पिण्ड देनेका विधान है। अर्घ और पिण्ड आदि देते समय प्रेतका नाम लेकर 'तवोपतिष्ठताम्', (तुम्हें प्राप्त हो), ऐसा कहना चाहिये। तत्पश्चात् तिल और जल छोड़ना चाहिये। अपने किये हुए दानका जल ब्राह्मणके हाथमें देना चाहिये तथा विसर्जनके समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी ही भाँति जानना चाहिये। उस दिन विधिपूर्वक शाय्यादान, फल-वस्त्रसमन्वित काञ्चनपुरुषकी पूजा तथा द्विज-दम्पतिका पूजन भी करना आवश्यक है।

एकादशाह श्राद्धमें कभी भोजन नहीं करना चाहिये। यदि भोजन कर ले तो चान्द्रायण व्रत करना उचित है। सुयोग्य पुत्रको पिताकी भक्तिसे प्रेरित होकर सदा ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग करे, उत्तम कपिला गौ दान दे और उसी दिनसे आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिदिन भक्ष्य-भोज्यके

साथ तिल और जलसे भरा हुआ घड़ा दान करना चाहिये। [इसीको कुम्भदान कहते हैं।] तदनन्तर, वर्ष पूरा होनेपर सपिष्ठीकरण श्राद्ध होना चाहिये। सपिष्ठीकरणके बाद प्रेत [प्रेतत्वसे मुक्त होकर] पार्वणश्राद्धका अधिकारी होता है तथा गृहस्थके वृद्धि-सम्बन्धी कार्योंमें आभ्युदयिक श्राद्धका भागी होता है। सपिष्ठीकरण श्राद्ध देवश्राद्धपूर्वक करना चाहिये अर्थात् उसमें पहले विश्वेदेवोंकी, फिर पितरोंकी पूजा होती है। सपिष्ठीकरणमें जब पितरोंका आवाहन करे तो प्रेतका आसन उनसे अलग रखे। फिर चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार अर्ध्यपात्र बनावे तथा प्रेतके अर्ध्यपात्रका जल तीन भागोंमें विभक्त करके पितरोंके अर्ध्य-पात्रोंमें डाले। इसी प्रकार पिष्ठदान करनेवाला पुरुष चार पिण्ड बनाकर 'ये समानाः'—इत्यादि दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतके पिष्ठको तीन भागोंमें विभक्त करे [और एक-एक भागको पितरोंके तीन पिण्डोंमें मिला दे]। इसी विधिसे पहले अर्ध्यको और फिर पिण्डोंको सङ्कल्पपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर, वह चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् प्रेत पितरोंकी श्रेणीमें सम्मिलित हो जाता है और अग्निस्वात्त आदि पितरोंके बीचमें बैठकर उत्तम अमृतका उपभोग करता है। इसलिये सपिष्ठीकरण श्राद्धके बाद उस (प्रेत) को पृथक् कुछ नहीं दिया जाता। पितरोंमें ही उसका भाग भी देना चाहिये तथा उन्हींके पिण्डोंमें स्थित होकर वह अपना भाग ग्रहण करता है। तबसे लेकर जब-जब संक्रान्ति और ग्रहण आदि पर्व आवें, तब-तब तीन पिण्डोंका ही श्राद्ध करना चाहिये। केवल मृत्यु-तिथिको केवल उसीके लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पिताके क्षयाहके दिन जो एकोद्दिष्ट नहीं करता, वह सदाके लिये पिताका हत्यारा और भाईका विनाश करनेवाला माना गया है। क्षयाह-तिथिको [एकोद्दिष्ट न करके] पार्वणश्राद्ध करनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है। मृत व्यक्तिको जिस प्रकार प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले और उसे स्वर्गादि उत्तम

लोकोंकी प्राप्ति हो, इसके लिये विधिपूर्वक आमश्राद्ध^१ करना चाहिये। कच्चे अन्नसे ही अग्रौकरणकी क्रिया करे और उसीसे पिण्ड भी दे। पहले या तीसरे महीनेमें भी जब मृत व्यक्तिका पिता आदि तीन पुरुषोंके साथ सपिष्ठीकरण हो जाता है, तब प्रेतत्वके बन्धनसे उसकी मुक्ति हो जाती है। मुक्त होनेपर उससे लेकर तीन पीढ़ीतकके पितर सपिष्ठ कहलाते हैं तथा चौथा सपिष्ठकी श्रेणीसे निकलकर लेपभागी हो जाता है। कुशमें हाथ पोछनेसे जो अंश प्राप्त होता है, वही उसके उपभोगमें आता है। पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन पिण्डभागी होते हैं; और इनसे ऊपर चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् वृद्धप्रपितामहसे लेकर तीन पीढ़ीतकके पूर्वज लेपभागभोजी माने जाते हैं। [छः तो ये हुए] इनमें सातवाँ है स्वयं पिण्ड देनेवाला पुरुष। ये ही सात पुरुष सपिष्ठ कहलाते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! हव्य और कव्यका दान मनुष्योंको किस प्रकार करना चाहिये? पितृलोकमें उन्हें कौन ग्रहण करते हैं? यदि इस मर्त्यलोकमें ब्राह्मण श्राद्धके अन्नको खा जाते हैं अथवा अग्निमें उसका हवन कर दिया जाता है तो शुभ और अशुभ योनियोंमें पड़े हुए प्रेत उस अन्नको कैसे खाते हैं—उन्हें वह किस प्रकार मिल पाता है?

पुलस्यजी बोले—राजन्! पिता वसुके, पितामह रुद्रके तथा प्रपितामह आदित्यके स्वरूप हैं—ऐसी वेदकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र ही उनके पास हव्य और कव्य पहुँचानेवाले हैं। मन्त्रकी शक्ति तथा हृदयकी भक्तिसे श्राद्धका सार-भाग पितरोंको प्राप्त होता है। अग्निस्वात्त आदि दिव्य पितर पिता-पितामह आदिके अधिपति हैं—वे ही उनके पास श्राद्धका अन्न पहुँचानेकी व्यवस्था करते हैं। पितरोंमेंसे जो लोग कहीं जन्म ग्रहण कर लेते हैं, उनके भी कुछ-न-कुछ नाम, गोत्र तथा देश आदि तो होते ही हैं; [दिव्य पितरोंको उनका ज्ञान होता है और वे उसी पतेपर सभी वस्तुएँ

१. कच्चे अन्नके द्वारा श्राद्ध।

पहुँचा देते हैं।] अतः यह भेट-पूजा आदिके रूपमें दिया हुआ सब सामान प्राणियोंके पास पहुँचकर उन्हें तृप्त करता है। यदि शुभ कर्मोंके योगसे पिता और माता दिव्ययोनिको प्राप्त हुए हों तो श्राद्धमें दिया हुआ अन्न अमृत होकर उस अवस्थामें भी उन्हें प्राप्त होता है। वही दैत्ययोनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तृणरूपसे, सर्पयोनिमें वायुरूपसे तथा यक्षयोनिमें पानरूपसे उपस्थित होता है। इसी प्रकार यदि माता-पिता मनुष्य-योनिमें हों तो उन्हें अन्न-पान आदि अनेक रूपोंमें श्राद्धान्नकी प्राप्ति होती है। यह श्राद्ध कर्म पुष्ट कहा गया है, इसका फल है ब्रह्मकी प्राप्ति। राजन् ! श्राद्धसे प्रसन्न हुए पितर आयु, पुत्र, धन, विद्या, राज्य, लौकिक सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष भी प्रदान करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! श्राद्धकर्ता पुरुष दिनके किस भागमें श्राद्धका अनुष्ठान करे तथा किन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अधिक फल देनेवाला होता है ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! पुष्कर नामका तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठतम माना गया है। वहाँ किया हुआ दान, होम, [श्राद्ध] और जप निश्चय ही अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है। वह तीर्थ पितरों और ऋषियोंको सदा ही परम प्रिय है। इसके सिवा नन्दा, ललिता तथा मायापुरी (हरिद्वार) भी पुष्करके ही समान उत्तम तीर्थ हैं। मित्रपद और केदार-तीर्थ भी श्रेष्ठ हैं। गङ्गासागर नामक तीर्थको परम शुभदायक और सर्वतीर्थमय बतलाया जाता है। ब्रह्मसर तीर्थ और शतद्रु (सतलज) नदीका जल भी शुभ है। नैमिषारण्य नामक तीर्थ तो सब तीर्थोंका फल देनेवाला है। वहाँ गोमतीमें गङ्गाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है। नैमिषारण्यमें भगवान् यज्ञ-वराह और देवाधिदेव शूलपाणि विराजते हैं। जहाँ सोनेका दान दिया जाता है, वहाँ महादेवजीकी अठारह भुजावाली मूर्ति है। पूर्वकालमें जहाँ धर्मचक्रकी नैमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिरी थी, वही स्थान नैमिषारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ सब तीर्थोंका निवास है। जो वहाँ जाकर देवाधिदेव वराहका दर्शन

करता है, वह धर्मात्मा पुरुष भगवान् श्रीनारायणके धाममें जाता है। कोकामुख नामक क्षेत्र भी एक प्रधान तीर्थ है। यह इन्द्रलोकका मार्ग है। यहाँ भी ब्रह्माजीके पितृतीर्थका दर्शन होता है। वहाँ भगवान् ब्रह्माजी पुष्करारण्यमें विराजमान हैं। ब्रह्माजीका दर्शन अत्यन्त उत्तम एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। कृत नामक महान् पुण्यमय तीर्थ सब पापोंका नाशक है। वहाँ आदिपुरुष नरसिंहस्वरूप भगवान् जनार्दन स्वयं ही स्थित हैं। इक्षुमती नामक तीर्थ पितरोंको सदा प्रिय है। गङ्गा और यमुनाके सङ्गम (प्रयाग) में भी पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं। कुरुक्षेत्र अत्यन्त पुण्यमय तीर्थ है। वहाँका पितृ-तीर्थ सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है।

राजन् ! नीलकण्ठ नामसे विख्यात तीर्थ भी पितरोंका तीर्थ है। इसी प्रकार परम पवित्र भद्रसर तीर्थ, मानसरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा (व्यास नदी), पुण्यसलिला सरस्वती, सर्वमित्रपद, महाफल-दायक वैद्यनाथ, अत्यन्त पावन क्षिप्रा नदी, कालिङ्गर गिरि, तीर्थोंद्वेद, हरोद्वेद, गर्भभेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार तथा गयातीर्थ—ये सब पितृतीर्थ हैं। महर्षियोंका कथन है कि इन तीर्थोंमें पिण्डदान करनेसे समान फलकी प्राप्ति होती है। ये स्मरण करने मात्रसे लोगोंके सारे पाप हर लेते हैं; फिर जो इनमें पिण्डदान करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है। ओङ्कार-तीर्थ, कावेरी नदी, कपिलाका जल, चण्डवेगा नदीमें मिली हुई नदियोंके सङ्गम तथा अमरकण्टक—ये सब पितृतीर्थ हैं। अमरकण्टकमें किये हुए स्नान आदि पुण्य-कार्य कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा दसगुना उत्तम फल देनेवाले हैं। विख्यात शुक्लतीर्थ एवं उत्तम सोमेश्वरतीर्थ अत्यन्त पवित्र और सम्पूर्ण व्याधियोंको हरनेवाले हैं। वहाँ श्राद्ध करने, दान देने तथा होम, स्वाध्याय, जप और निवास करनेसे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल होता है।

इनके अतिरिक्त एक कायावरोहण नामक तीर्थ है, जहाँ किसी ब्राह्मणके उत्तम भवनमें देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करका तेजस्वी अवतार हुआ था।

इसीलिये वह स्थान परम पुण्यमय तीर्थ बन गया। चर्मणवती नदी, शूलतापी, पयोष्णी, पयोष्णी-सङ्घम, महैषधी, चारणा, नागतीर्थप्रवर्तिनी, पुण्यसलिला महावेणा नदी, महाशाल तीर्थ, गोमती, वरुणा, अग्नितीर्थ, भैरवतीर्थ, भृगुतीर्थ, गौरीतीर्थ, वैनायकतीर्थ, वस्त्रेश्वरतीर्थ, पापहरतीर्थ, पावनसलिला वेत्रवती (बेतवा) नदी, महारुद्रतीर्थ, महालिङ्गतीर्थ, दशार्णा, महानदी, शतरुद्रा, शताह्ना, पितृपदपुर, अङ्गारवाहिका नदी, शोण (सोन) और घर्घर (घाघरा) नामवाले दो नद, परमपावन कालिका नदी और शुभदायिनी पितरा नदी—ये समस्त पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये उत्तम माने गये हैं। इन तीर्थोंमें जो पिण्ड आदि दिया जाता है, वह अनन्त फल देनेवाला माना गया है। शतवटा नदी, ज्वाला, शरद्वी नदी, श्रीकृष्णतीर्थ—द्वारकापुरी, उदक्सरस्वती, मालवती नदी, गिरिकर्णिका, दक्षिण-समुद्रके तटपर विद्यमान भूतपापतीर्थ, गोकर्णतीर्थ, गजकर्णतीर्थ, परम उत्तम चक्रनदी, श्रीशैल, शाकतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र पर्वत तथा पावनसलिला महानदी—इन सब तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध भी सदा अक्षय फल प्रदान करनेवाला माना गया है। ये दर्शनमात्रसे पुण्य उत्पन्न करनेवाले तथा तत्काल समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं।

पुण्यमयी तुङ्गभद्रा, चक्ररथी, भीमेश्वरतीर्थ, कृष्णवेणा, कावेरी, अङ्गना, पावनसलिला गोदावरी, उत्तम त्रिसन्ध्यातीर्थ और समस्त तीर्थोंसे नमस्कृत ऋष्यकर्तीर्थ, जहाँ 'भीम' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शङ्कर स्वयं विराजमान हैं, अत्यन्त उत्तम हैं। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला है। इनके स्मरण करनेमात्रसे पापोंके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। परम पावन श्रीपर्णा नदी, अत्यन्त उत्तम व्यास-तीर्थ, मत्स्यनदी, राका, शिवधारा, विश्वात भवतीर्थ, सनातन पुण्यतीर्थ, पुण्यमय रामेश्वरतीर्थ, वेणायु, अमलपुर, प्रसिद्ध मङ्गलतीर्थ, आत्मदर्शतीर्थ, अलम्बुषतीर्थ, वत्सब्रातेश्वरतीर्थ, गोकामुखतीर्थ, गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, केदली नदी,

नामधेयतीर्थ, सौमित्रिसङ्घमतीर्थ, इन्द्रनील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये भी श्राद्धके लिये अत्यन्त उत्तम माने गये हैं; इनमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास बताया जाता है। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। पावन नदी बाहुदा, शुभकारी, सिद्धवट, पाशुपततीर्थ, पर्यटिका नदी—इन सबमें किया हुआ श्राद्ध भी सौ करोड़ गुना फल देता है। इसी प्रकार पञ्चतीर्थ और गोदावरी नदी भी पवित्र तीर्थ हैं। गोदावरी दक्षिण-वाहिनी नदी है। उसके तटपर हजारों शिवलिङ्ग हैं। वहाँ जामदग्न्यतीर्थ और उत्तम मोदायतनतीर्थ हैं, जहाँ गोदावरी नदी प्रतीकके भयसे सदा प्रवाहित होती रहती है। इसके सिवा हव्य-कव्य नामका तीर्थ भी है। वहाँ किये हुए श्राद्ध, होम और दान सौ करोड़ गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं, सहस्रलिङ्ग और रघवेश्वर नामक तीर्थका माहात्म्य भी ऐसा ही है। वहाँ किया हुआ श्राद्ध अनन्तगुना फल देता है। शालग्रामतीर्थ, प्रसिद्ध शोणपात (सोनपत) तीर्थ, वैश्वानराशयतीर्थ, सारस्वततीर्थ, स्वामितीर्थ, मलंदरा नदी, पुण्यसलिला कौशिकी, चन्द्रका, विदर्भा, वेगा, प्राह्मुखा, कावेरी, उत्तराङ्गा और जालन्धर गिरि—इन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय हो जाता है। लोहदण्डतीर्थ, चित्रकूट, सभी स्थानोंमें गङ्गानदीके दिव्य एवं कल्याणमय तट, कुब्जाग्रक, उर्वशी-पुलिन, संसारमोचन और ऋणमोचनतीर्थ—इनमें किया हुआ श्राद्ध अनन्त हो जाता है। अङ्गहासतीर्थ, गौतमेश्वरतीर्थ, वसिष्ठतीर्थ, भारतीर्थ-ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हंसतीर्थ, प्रसिद्ध पिण्डारकतीर्थ, शङ्कोच्छारतीर्थ, भाष्णेश्वरतीर्थ, बिल्वकतीर्थ, नीलपर्वत, सब तीर्थोंका राजाधिराज बदरीतीर्थ, वसुधारातीर्थ, रामतीर्थ, जयन्ती, विजय तथा शुक्लतीर्थ—इनमें पिण्डदान करनेवाले पुरुष परम पदको प्राप्त होते हैं।

मातृगृहतीर्थ, करवीरपुर तथा सब तीर्थोंका स्वामी सप्तगोदावरी नामक तीर्थ भी अत्यन्त पावन हैं। जिन्हें अनन्त फल प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन पुरुषोंको इन तीर्थोंमें पिण्डदान करना चाहिये। मगध देशमें गया

नामकी पुरी तथा राजगृह नामक वन पावन तीर्थ हैं। वहीं च्यवन मुनिका आश्रम, पुनःपुना (पुनपुन) नदी और विषयाराधन-तीर्थ—ये सभी पुण्यमय स्थान हैं। राजेन्द्र ! लोगोंमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक समय सब मनुष्य यही कहते हुए तीर्थों और मन्दिरोंमें आये थे कि 'क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो गयाकी यात्रा करेगा ? जो वहाँ जायगा, वह सात पीढ़ीतकके पूर्वजोंको और सात पीढ़ीतककी होनेवाली सन्तानोंको तार देगा।' मातामह आदिके सम्बन्धमें भी यह सनातन श्रुति चिरकालसे प्रसिद्ध है; वे कहते हैं—'क्या हमारे वंशमें एक भी ऐसा पुत्र होगा, जो अपने पितरोंकी हड्डियोंको ले जाकर गङ्गामें डाले, सात-आठ तिलोंसे भी जलञ्जलि दे तथा पुष्करारण्य, नैमिषारण्य और धर्मारण्यमें पहुँचकर भक्तिपूर्वक श्राद्ध एवं पिण्डदान करे ?' गया क्षेत्रके भीतर जो धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसर तथा गयाशीर्षवट नामक तीर्थोंमें पितरोंको पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। जो घरपर श्राद्ध करके गया-तीर्थकी यात्रा करता है, वह मार्गमें पैर रखते ही नरकमें पड़े हुए पितरोंको तुरंत स्वर्गमें पहुँचा देता है। उसके कुलमें कोई प्रेत नहीं होता। गयामें पिण्डदानके प्रभावसे प्रेतत्वसे छुटकारा मिल जाता है। [गयामें] एक मुनि थे, जो अपने दोनों हाथोंके अग्रभागमें भरा हुआ ताप्रपात्र लेकर आमोंकी जड़में पानी देते थे; इससे आमोंकी सिंचाई भी होती थी और उनके पितर भी तृप्त होते थे। इस प्रकार एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। गयामें पिण्डदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है; क्योंकि वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे पितर तृप्त होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। कोई-कोई मुनीश्वर अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई वस्त्रदानको उत्तम कहते हैं। वस्तुतः गयाके उत्तम तीर्थोंमें मनुष्य जो कुछ भी दान करते हैं, वह धर्मका हेतु और श्रेष्ठ कहा गया है।

यह तीर्थोंका संग्रह मैंने संक्षेपमें बतलाया है; विस्तारसे तो इसे बृहस्पतिजी भी नहीं कह सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। सत्य तीर्थ है, दया तीर्थ है, और इन्द्रियोंका निग्रह भी तीर्थ है। मनोनिग्रहको भी तीर्थ कहा गया है। सबेरे तीन मुहूर्त (छः घड़ी) तक प्रातःकाल रहता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततकका समय सङ्ख्यक होलाता है। तत्पश्चात् तीन मुहूर्ततक मध्याह्न होता है। उसके बाद उत्तने ही समयतक अपराह्न रहता है। फिर तीन मुहूर्ततक सायाह्न होता है। सायाह्न-कालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह राक्षसी वेला है, अतः सभी कर्मोंके लिये निन्दित है। दिनके पंद्रह मुहूर्त बतलाये गये हैं। उनमें आठवाँ मुहूर्त, जो दोपहरके बाद पड़ता है, 'कुतप' कहलाता है। उस समयसे धीरे-धीरे सूर्यका ताप मन्द पड़ता जाता है। वह अनन्त फल देनेवाला काल है। उसीमें श्राद्धका आरम्भ उत्तम माना जाता है। खड्गपात्र, कुतप, नेपालदेशीय कम्बल, सुवर्ण, कुश, तिल तथा आठवाँ दौहित्र (पुत्रीका पुत्र) — ये कुत्सित अर्थात् पापको सन्ताप देनेवाले हैं; इसलिये इन आठोंको 'कुतप' कहते हैं। कुतप मुहूर्तके बाद चार मुहूर्ततक अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधा-वाचन (श्राद्ध) के लिये उत्तम काल है। कुश और काले तिल भगवान् श्रीविष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। मनीषी पुरुषोंने श्राद्धका लक्षण और काल इसी प्रकार बताया है। तीर्थवासियोंको तीर्थके जलमें प्रवेश करके पितरोंके लिये तिल और जलकी अञ्जलि देनी चाहिये। एक हाथमें कुश लेकर घरमें श्राद्ध करना चाहिये। यह तीर्थ-श्राद्धका विवरण पुण्यदायक, पवित्र, आयु बढ़ानेवाला तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है। इसे स्वयं ब्रह्माजीने अपने श्रीमुखसे कहा है। तीर्थनिवासियोंको श्राद्धके समय इस अध्यायका पाठ करना चाहिये। यह सब पापोंकी शान्तिका साधन और दरिद्रताका नाशक है।

चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा यदुवंश एवं सहस्रार्जुनके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीनारायणदेवने उनसे वर माँगनेको कहा। तब चन्द्रमाने पुलस्त्यजी! चन्द्रवंशकी उत्पत्ति कैसे हुई? उस वंशमें कौन-कौन-से राजा अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हुए?

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महर्षि अंत्रिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी। तब उन्होंने सृष्टिकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये अनुत्तर* नामका तप किया। वे अपने मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर होकर परमानन्दमय ब्रह्मका चिन्तन करने लगे। एक दिन महर्षिके नेत्रोंसे कुछ जलकी बूँदें टपकने लगीं, जो अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को प्रकाशित कर रही थीं। दिशाओं [की अधिष्ठात्री देवियों] ने स्त्रीरूपमें आकर पुत्र पानेकी इच्छासे उस जलको ग्रहण कर लिया। उनके उदरमें वह जल गर्भरूपसे स्थित हुआ। दिशाएँ उसे धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं; अतः उन्होंने उस गर्भको त्याग दिया। तब ब्रह्माजीने उनके छोड़े हुए गर्भको एकत्रित करके उसे एक तरुण पुरुषके रूपमें प्रकट किया, जो सब प्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाला था। फिर वे उस तरुण पुरुषको देवशक्ति-सम्पन्न सहस्र नामक रथपर बिठाकर अपने लोकमें ले गये। तब ब्रह्मियोंने कहा—‘ये हमारे स्वामी हैं।’ तदनन्तर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ उनकी स्तुति करने लगीं। उस समय उनका तेज बहुत बढ़ गया। उस तेजके विस्तारसे इस पृथ्वीपर दिव्य ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। इसीसे चन्द्रमा ओषधियोंके स्वामी हुए तथा द्विजोंमें भी उनकी गणना हुई। वे शुक्रपक्षमें बढ़ते और कृष्णपक्षमें सदा क्षीण होते रहते हैं। कुछ कालके बाद प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याएँ, जो रूप और लावण्यसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्विनी थीं, चन्द्रमाको पत्नीरूपमें अर्पण कीं। तत्पश्चात् चन्द्रमाने केवल श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर चिरकालतक बड़ी भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर परमात्मा

यह वर माँगा—‘मैं इन्द्रलोकमें राजसूय यज्ञ करूँगा। उसमें आपके साथ ही सम्पूर्ण देवता मेरे मन्दिरमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर यज्ञभाग ग्रहण करें। शूलधारी भगवान् श्रीशङ्कर मेरे यज्ञकी रक्षा करें।’ ‘तथास्तु’ कहकर भगवान् श्रीविष्णुने स्वयं ही राजसूय यज्ञका समारोह किया। उसमें अत्रि होता, भृगु अध्वर्यु और ब्रह्माजी उद्घाटा हुए। साक्षात् भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा बनकर यज्ञके द्रष्टा हुए तथा सम्पूर्ण देवताओंने सदस्यका काम संभाला। यज्ञ पूर्ण होनेपर चन्द्रमाको दुर्लभ ऐश्वर्य मिला और वे अपनी तपस्याके प्रभावसे सातों लोकोंके स्वामी हुए।

चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मियोंके साथ ब्रह्माजीने बुधको भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त करके उन्हें ग्रहोंकी समानता प्रदान की। बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया, जिसने सौसे भी अधिक अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया। वह पुरुरवाके नामसे विख्यात हुआ। सम्पूर्ण जगत्के लोगोंने उसके सामने मस्तक झुकाया। पुरुरवाने हिमालयके रमणीय शिखरपर ब्रह्माजीकी आराधना करके लोकेश्वरका पद प्राप्त किया। वे सातों द्वीपोंके स्वामी हुए। केशी आदि दैत्योंने उनकी दासता स्वीकार की। उर्वशी नामकी अप्सरा उनके रूपपर मोहित होकर उनकी पत्नी हो गयी। राजा पुरुरवा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी राजा थे; उन्होंने सातों द्वीप, वन, पर्वत और कानोंसहित समस्त भूमण्डलका धर्मपूर्वक पालन किया। उर्वशीने पुरुरवाके वीर्यसे आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—आयु, दृढायु, वश्यायु, धनायु, वृत्तिमान्, वसु, दिविजात और सुबाहु—ये सभी दिव्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। इनमेंसे आयुके पाँच पुत्र हुए—नहृष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ और विपाम्पा। ये पाँचों वीर महारथी थे। रजिके सौ पुत्र हुए, जो राजेयके नामसे विख्यात थे। राजन्! रजिने

* जिससे बड़ा दूसरा कोई तप न हो, वह लोकोत्तर तपस्या ही ‘अनुत्तर’ तपके नामसे कही गयी है।

तपस्याद्वारा पापके सम्पर्कसे रहित भगवान् श्रीनारायणकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर श्रीविष्णुने उन्हें वरदान दिया, जिससे रजिने देवता, असुर और मनुष्योंको जीत लिया।

अब मैं नहुषके पुत्रोंका परिचय देता हूँ। उनके सात पुत्र हुए और वे सब-के-सब धर्मात्मा थे। उनके नाम ये हैं—यति, ययाति, संयाति, उद्दव, पर, वियति और विद्यसाति। ये सातों अपने वंशका यश बढ़ानेवाले थे। उनमें यति कुमारावस्थामें ही वानप्रस्थ योगी हो गये। ययाति राज्यका पालन करने लगे। उन्होंने एकमात्र धर्मकी ही शरण ले रखी थी। दानवराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी पुत्री सती देवयानी—ये दोनों उनकी पत्नियाँ थीं। ययातिके पाँच पुत्र थे। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्वितीय, अनु और पूरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। उनमें यदु और पूरु—ये दोनों अपने वंशका विस्तार करनेवाले हुए। यदुसे यादवोंकी उत्पत्ति हुई, जिनमें पृथ्वीका भार उतारने और पाण्डवोंका हित करनेके लिये भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो देवकुमारोंके समान थे। उनके नाम थे—सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अञ्जिक और रघु। इनमें सहस्रजित् ज्येष्ठ थे। उनके पुत्र राजा शतजित् हुए। शतजित् के हैह्य, हैह्य और उत्तालहैह्य—ये तीन पुत्र हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। हैह्यका पुत्र धर्मनित्रके नामसे विख्यात हुआ। धर्मनित्रके कुष्मिति, कुष्मिति के संहत और संहतके महिष्मान् नामक पुत्र हुआ। महिष्मान्-से भद्रसेन नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो बड़ा प्रतापी था। वह काशीपुरीका राजा था। भद्रसेनके पुत्र राजा दुर्दर्श हुए। दुर्दर्शके पुत्र भीम और भीमके बुद्धिमान् कनक हुए। कनकके कृताग्नि, कृतवीर्य, कृतधर्मा और कृतौजा—ये चार पुत्र हुए, जो संसारमें विख्यात थे। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ, जो एक हजार भुजाओंसे सुशोभित एवं सातों द्वीपोंका राजा था। राजा कार्तवीर्यने द्वारा हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या करके भगवान् दत्तत्रेयजीकी आराधना की। पुरुषोत्तम दत्तत्रेयजीने उन्हें

चार वरदान दिये। राजाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने पहले तो अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगी। दूसरे वरके द्वारा उन्होंने यह प्रार्थना की कि ‘मेरे राज्यमें लोगोंको अधर्मकी बात सोचते हुए भी मुझसे भय हो और वे अधर्मके मार्गसे हट जायँ।’ तीसरा वरदान इस प्रकार था—‘मैं युद्धमें पृथ्वीको जीतकर धर्मपूर्वक बलका संग्रह करूँ।’ चौथे वरके रूपमें उन्होंने यह माँगा कि ‘संग्राममें लड़ते-लड़ते मैं अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ वीरके हाथसे मारा जाऊँ।’ राजा अर्जुनने सातों द्वीप और नगरोंसे युक्त तथा सातों समुद्रोंसे घिरी हुई इस सारी पृथ्वीको क्षात्रधर्मके अनुसार जीत लिया था। उस बुद्धिमान् नरेशके इच्छा करते ही हजार भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं। महाबाहु अर्जुनके सभी यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा बाँटी जाती थी। सबमें सुवर्णमय यूप (स्तम्भ) और सोनेकी ही वेदियाँ बनायी जाती थीं। उन यज्ञोंमें सम्पूर्ण देवता सज-धजकर विमानोंपर बैठकर प्रत्यक्ष दर्शन देते थे। महाराज कार्तवीर्यने पचासी हजार वर्षोंतक एकछत्र राज्य किया। वे चक्रवर्ती राजा थे। योगी होनेके कारण अर्जुन समय-समयपर मेघके रूपमें प्रकट हो वृष्टिके द्वारा प्रजाको सुख पहुँचाते थे। प्रत्यञ्चाके आघातसे उनकी भुजाओंकी त्वचा कठोर हो गयी थी। जब वे अपनी हजारों भुजाओंके साथ संग्राममें खड़े होते थे, उस समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित शरत्कालीन सूर्यके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। परम कान्तिमान् महाराज अर्जुन माहिष्मतीपुरीमें निवास करते थे और वर्षाकालमें समुद्रका वेग भी रोक देते थे। उनकी हजारों भुजाओंके आलोड़नसे समुद्र क्षुब्ध हो उठता था और उस समय पातालवासी महान् असुर लुक-छिपकर निश्चेष्ट हो जाते थे।

एक समयकी बात है, वे अपने पाँच बाणोंसे अभिमानी रावणको सेनासहित मूर्छित करके माहिष्मतीपुरीमें ले आये। वहाँ ले जाकर उन्होंने रावणको कैदमें डाल दिया। तब मैं (पुलस्त्य) अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये गया। राजन्! मेरी बात मानकर उन्होंने मेरे पौत्रको छोड़ दिया और उसके साथ मित्रता

कर ली। किन्तु विधाताका बल और पराक्रम अद्भुत है, जिसके प्रभावसे भृगुनन्दन परशुरामजीने राजा कार्तवीर्यकी हजारों भुजाओंको सोनेके तालवनकी भाँति संग्राममें काट डाला। कार्तवीर्य अर्जुनके सौ पुत्र थे; किन्तु उनमें पाँच महारथी, अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और महान् व्रतका पालन करनेवाले थे। उनके नाम थे—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और पुत्र हुआ, जो शत्रुओंका संहार करनेवाला था।

जयध्वज। जयध्वजका पुत्र महाबली तालजङ्घ हुआ। तालजङ्घके सौ पुत्र हुए, जिनकी तालजङ्घके नामसे ही प्रसिद्ध हुई। उन हैह्यवंशीय राजाओंके पाँच कुल हुए—वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डकेर और विक्रान्त। ये सब-के-सब तालजङ्घ ही कहलाये। वीतिहोत्रका पुत्र अनन्त हुआ, जो बड़ा पराक्रमी था। उसके दुर्जय नामक



यदुवंशके अन्तर्गत क्रोष्टु आदिके वंश तथा श्रीकृष्णावतारका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब यदुपुत्र क्रोष्टुके वंशका, जिसमें श्रेष्ठ पुरुषोंने जन्म लिया था, वर्णन सुनो। क्रोष्टुके ही कुलमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ है। क्रोष्टुके पुत्र महामना वृजिनीवान् हुए। उनके पुत्रका नाम स्वाति था। स्वातिसे कुशङ्कुका जन्म हुआ। कुशङ्कुसे चित्ररथ उत्पन्न हुए, जो शशविन्दु नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा हुए। शशविन्दुके दस हजार पुत्र हुए। वे बुद्धिमान्, सुन्दर, प्रचुर वैभवशाली और तेजस्वी थे। उनमें भी सौ प्रधान थे। उन सौ पुत्रोंमें भी, जिनके नामके साथ 'पृथु' शब्द जुड़ा था, वे महान् बलवान् थे। उनके पूरे नाम इस प्रकार है—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुतेजा, पृथुद्व, पृथुकीर्ति और पृथुमति। पुराणोंके ज्ञाता पुरुष उन सबमें पृथुश्रवाको श्रेष्ठ बतलाते हैं। पृथुश्रवासे उशना नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला था। उशनाका पुत्र शिनेयु हुआ, जो सज्जनोंमें श्रेष्ठ था। शिनेयुका पुत्र रुक्मिकवच नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था। राजा रुक्मिकवचने एक बार अश्वमेध यज्ञका आयोजन किया और उसमें दक्षिणाके रूपमें यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी। उसके रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो महान् बलवान् और पराक्रमी थे। उनमेंसे परिघ और हरिको उनके पिताने विदेह देशके राज्यपर स्थापित किया। रुक्मेषु राजा हुआ और पृथुरुक्म उसके अधीन होकर रहने लगा। उन दोनोंने मिलकर अपने भाई होकर रहने लगा। उन दोनोंने मिलकर अपने भाई ज्यामघको घरसे निकाल दिया। ज्यामघ ऋक्षवान्

हुए वहाँ रहने लगे। ज्यामघकी रुखी शैव्या बड़ी सती-साध्वी रुखी थी। उससे विदर्भ नामक पुत्र हुआ। विदर्भसे तीन पुत्र हुए—क्रथ, कैशिक और लोमपाद। राजकुमार क्रथ और कैशिक बड़े विद्वान् थे तथा लोमपाद परम धर्मात्मा थे। तत्पश्चात् राजा विदर्भने और भी अनेकों पुत्र उत्पन्न किये, जो युद्ध-कर्ममें कुशल तथा शूरवीर थे। लोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुका पुत्र हेति हुआ। कैशिकके चिदि नामक पुत्र हुआ, जिससे चैद्य राजाओंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है।

विदर्भका जो क्रथ नामक पुत्र था, उससे कुन्तिका जन्म हुआ, कुन्तिसे धृष्ट और धृष्टसे पृष्ठकी उत्पत्ति हुई। पृष्ठ प्रतापी राजा था। उसके पुत्रका नाम निर्वृति था। वह परम धर्मात्मा और शत्रुवीरोंका नाशक था। निर्वृतिके दाशार्ह नामक पुत्र हुआ, जिसका दूसरा नाम विदूरथ था। दाशार्हका पुत्र भीम और भीमका जीमूत हुआ। जीमूतके पुत्रका नाम विकल था। विकलसे भीमरथ नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भीमरथका पुत्र नवरथ, नवरथका दृढ़रथ और दृढ़रथका पुत्र शकुनि हुआ। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरातका जन्म हुआ। देवरातके पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुए। देवक्षत्रका पुत्र देवकुमारके समान अत्यन्त तेजस्वी हुआ। उसका नाम मधु था। मधुसे कुरुवशका जन्म हुआ। कुरुवशके पुत्रका नाम पुरुष था। वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ हुआ। उससे विदर्भकुमारी भद्रवतीके गर्भसे जन्मुका जन्म हुआ। जन्मुका दूसरा नाम पुरुद्वसु था। जन्मुकी पलीका नाम

वेत्रकी था। उसके गर्भसे सत्त्वगुणसम्पन्न सात्वतकी उत्पत्ति हुई। जो सात्वतवंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। सत्त्वगुणसम्पन्न सात्वतसे उनकी रानी कौसल्याने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृथ, अन्धक, महाभोज और वृष्णि नामके पुत्रोंको उत्पन्न किया। इनसे चार वंशोंका विस्तार हुआ। उनका वर्णन सुनो। भजमानकी पत्नी सृज्ञयकुमारी सृज्ञयीके गर्भसे भाज नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भाजसे भाजकोंका जन्म हुआ। भाजकी दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—विनय, करुण और वृष्णि। इनमें वृष्णि शत्रुके नगरोंपर विजय पानेवाले थे। भाज और उनके पुत्र—सभी भाजक नामसे प्रसिद्ध हुए; क्योंकि भजमानसे इनकी उत्पत्ति हुई थी।

देवावृथसे बध्रु नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न था। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् पुरुष महात्मा देवावृथके गुणोंका बखान करते हुए इस वंशके विषयमें इस प्रकार अपना उद्घार प्रकट करते हैं—‘देवावृथ देवताओंके समान हैं और बध्रु समस्त मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। देवावृथ और बध्रुके उपदेशसे छिह्न्तर हजार मनुष्य मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।’ बध्रुसे भोजका जन्म हुआ, जो यज्ञ, दान और तपस्यामें धीर, ब्राह्मणभक्त, उत्तम व्रतोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले, रूपवान् तथा महातेजस्वी थे। शरकान्तकी कन्या मृतकावती भोजकी पत्नी हुई। उसने भोजसे कुकुर, भजमान, समीक और बलबर्हिष—ये चार पुत्र उत्पन्न किये। कुकुरके पुत्र धृष्णु, धृष्णुके धृति, धृतिके कपोतरोमा, कपोतरोमाके नैमित्ति, नैमित्तिके सुसुत और सुसुतके पुत्र नरि हुए। नरि बड़े विद्वान् थे। उनका दूसरा नाम चन्दनोदक दुन्दुभि बतलाया जाता है। उनसे अभिजित् और अभिजित्से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शत्रुविजयी पुनर्वसुसे दो सन्तानें हुईं; एक पुत्र और एक कन्या। पुत्रका नाम आहुक था और कन्याका आहुकी। भोजवंशमें कोई असत्यवादी, तेजहीन, यज्ञ न करनेवाला, हजारसे कम दान करनेवाला, अपवित्र और मूर्ख नहीं था। भोजसे बढ़कर कोई हुआ ही नहीं। यह

भोजवंश आहुकतक आकर समाप्त हो गया।

आहुकने अपनी बहिन आहुकीका व्याह अवन्ती देशमें किया था। आहुककी एक पुत्री भी थी, जिसने दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—देवक और उग्रसेन। वे दोनों देवकुमारोंके समान तेजस्वी हैं। देवकके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान सुन्दर और वीर हैं। उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षक। उनके सात बहिनें थीं, जिनका व्याह देवकने वसुदेवजीके साथ कर दिया। उन सातोंके नाम इस प्रकार हैं—देवकी, श्रुतदेवा, यशोदा, श्रुतिश्रवा, श्रीदेवा, उपदेवा और सुरूपा। उग्रसेनके नौ पुत्र हुए। उनमें कंस सबसे बड़ा था। शेषके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु, सुभू, राष्ट्रपाल, बद्धमुष्टि और सुमुष्टिक। उनके पाँच बहिनें थीं—कंसा, कंसवती, सुरभी, राष्ट्रपाली और कङ्का। ये सब-की-सब बड़ी सुन्दरी थीं। इस प्रकार सन्तानोंसहित उग्रसेनतक कुकुर-वंशका वर्णन किया गया।

[भोजके दूसरे पुत्र] भजमानके विदूरथ हुआ, वह रथियोंमें प्रधान था। उसके दो पुत्र हुए—राजाधिदेव और शूर। राजाधिदेवके भी दो पुत्र हुए—शोणाश्व और श्वेतवाहन। वे दोनों वीर पुरुषोंके सम्माननीय और क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले थे। शोणाश्वके पाँच पुत्र हुए। वे सभी शूरवीर और युद्धकर्ममें कुशल थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शमी, गदचर्मा, निर्मूर्ति, चक्रजित् और शुचि। शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके भोज और भोजके हृदिक हुए। हृदिकके दस पुत्र हुए, जो भयनक पराक्रम दिखानेवाले थे। उनमें कृतवर्मा सबसे बड़ा था। उससे छोटोंके नाम शतधन्वा, देवार्ह, सुभानु, भीषण, महाबल, अजात, विजात, कारक और करम्भक हैं। देवार्हका पुत्र कम्बलबर्हिष हुआ, वह विद्वान् पुरुष था। उसके दो पुत्र हुए—समौजा और असमौजा। अजातके पुत्रसे भी समौजा नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। समौजाके तीन पुत्र हुए, जो परम धार्मिक और पराक्रमी थे। उनके नाम हैं—सुदृश, सुरांश और कृष्ण।

[सात्वतके कनिष्ठ पुत्र] वृष्णिके वंशमें अनमित्र

नामके प्रसिद्ध राजा हो गये हैं, वे अपने पिताके कनिष्ठ पुत्र थे। उनसे शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्रसे वृष्णिवीर युधाजितका भी जन्म हुआ। उनके सिवा दो बीर पुत्र और हुए, जो ऋषभ और क्षत्रके नामसे विख्यात हुए। उनमेंसे ऋषभने काशिराजकी पुत्रीको पलीके रूपमें ग्रहण किया। उससे जयन्तकी उत्पत्ति हुई। जयन्तने जयन्ती नामकी सुन्दरी भार्याके साथ विवाह किया। उसके गर्भसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सदा यज्ञ करनेवाला, अत्यन्त धैर्यवान्, शास्त्रज्ञ और अतिथियोंका प्रेमी था। उसका नाम अक्षूर था। अक्षूर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेवाले और बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले थे। उन्होंने रत्नकुमारी शैव्याके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया। अक्षूरने पुनः शूरसेना नामकी पलीके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो और पुत्रोंको जन्म दिया। इसी प्रकार उन्होंने अश्विनी नामकी पलीसे भी कई पुत्र उत्पन्न किये।

[विदूरथकी पली] ऐक्षवाकीने मीदुष नामक पुत्रको जन्म दिया। उनका दूसरा नाम शूर भी था। शूरने भोजाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनमें आनकदुन्तुभि नामसे प्रसिद्ध महाबाहु वसुदेव ज्येष्ठ थे। उनके सिवा शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कुनि, नन्दि, सकृद्यशाः, श्याम, समीदु और शंसस्यु। शूरसे पाँच सुन्दरी कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जिनके नाम हैं—श्रुतिकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। ये पाँचों बीर पुत्रोंकी जननी थीं। श्रुतदेवीका विवाह वृद्ध नामक राजाके साथ हुआ। उसने कारूष नामक पुत्र उत्पन्न किया। श्रुतिकीर्तिने केक्यनरेशके अंशसे सन्तर्दनको जन्म दिया। श्रुतश्रवा चेदिराजकी पली थी। उसके गर्भसे सुनीथ (शिशुपाल) का जन्म हुआ। राजाधिदेवीके गर्भसे धर्मकी भार्या अभिमर्दिताने जन्म ग्रहण किया। शूरकी राजा कुन्तिभोजके साथ मैत्री थी, अतः उन्होंने अपनी कन्या

पृथाको उन्हें गोद दे दिया। इस प्रकार वसुदेवकी बहिन पृथा कुन्तिभोजकी कन्या होनेके कारण कुन्तीके नामसे प्रसिद्ध हुई। कुन्तिभोजने महाराज पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह किया। कुन्तीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। अर्जुन इन्द्रके समान पराक्रमी हैं। वे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेवाले, सम्पूर्ण दानवोंके नाशक तथा इन्द्रके लिये भी अवध्य हैं। उन्होंने दानवोंका संहार किया है। पाण्डुकी दूसरी रानी माद्रवती (माद्री) के गर्भसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति सुनी गयी है, जो नकुल और सहदेव नामसे प्रसिद्ध हैं। वे दोनों रूपवान् और सत्त्वगुणी हैं। वसुदेवजीकी दूसरी पली रोहिणीने, जो पुरुषंशकी कन्या हैं, ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें बलरामको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उनके गर्भसे रणप्रेमी सारण, दुर्धर, दमन और लम्बी ठोढ़ीवाले पिण्डारक उत्पन्न हुए। वसुदेवजीकी पली जो देवकी देवी हैं, उनके गर्भसे पहले तो महाबाहु प्रजापतिके अंशभूत बालक उत्पन्न हुए। फिर [कंसके द्वारा उनके मारे जानेपर] श्रीकृष्णका अवतार हुआ। विजय, रोचमान, वर्द्धमान और देवल—ये सभी महात्मा उपदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। श्रुतदेवीने महाभाग गवेषणको जन्म दिया, जो संग्राममें पराजित होनेवाले नहीं थे।

[अब श्रीकृष्णके प्रादुर्भावकी कथा कही जाती है।] जो श्रीकृष्णके जन्म और वृद्धिकी कथाका प्रतिदिन पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।* पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही महादेव श्रीकृष्णलीलाके लिये इस समय मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए हैं। पूर्वजन्ममें देवकी और वसुदेवजीने तपस्या की थी, उसीके प्रभावसे वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय उनके नेत्र कमलके समान शोभा पा रहे थे। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका दिव्य रूप मनुष्योंका मन मोहनेवाला था। श्रीवत्ससे चिह्नित एवं शङ्ख-चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त

* कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः। शूणोति वा नरो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

भगवान् के दिव्य विग्रहको देखकर वसुदेवजी



बोले—‘प्रभो ! इस रूपको छिपा लीजिये । मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये ऐसा कहता हूँ । उसने मेरे छ: पुत्रोंको, जो देखनेमें बहुत ही सुन्दर थे, मार डाला है ।’ वसुदेवजीकी बात सुनकर भगवान् ने अपने दिव्यरूपको छिपा लिया । फिर भगवान् की आशा लेकर वसुदेवजी उन्हें नन्दके घर ले गये और नन्दगोपको देकर बोले—‘आप इस बालककी रक्षा करें; क्योंकि इससे सम्पूर्ण यादवोंका कल्याण होगा । देवकीका यह बालक जबतक कंसका वध नहीं करेगा, तबतक इस पृथ्वीपर भार बढ़ानेवाले अमङ्गलमय उपद्रव होते रहेंगे । भूतलपर जितने दुष्ट राजा हैं, उन सबका यह संहार करेगा । यह बालक साक्षात् भगवान् है । ये भगवान् कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रियोंके एकत्रित होनेपर अर्जुनके सारथिका काम करेंगे और पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके उसका उपभोग एवं पालन करेंगे और अन्तमें समस्त यदुवंशको देवलोकमें पहुँचायेंगे ।

भीष्मने पूछा—ब्रह्मन् ! ये वसुदेव कौन थे ? यशस्विनी देवकीदेवी कौन थीं तथा ये नन्दगोप और उनकी पत्नी महाब्रता यशोदा कौन थीं ? जिसने बालकरूपमें भगवान् को जन्म दिया और जिसने उनका

पालन-पोषण किया, उन दोनों स्त्रियोंका परिचय दीजिये । **पुलस्त्यजी बोले—**राजन् ! पुरुष वसुदेवजी कश्यप हैं और उनकी प्रिया देवकी अदिति कही गयी हैं । कश्यप ब्रह्माजीके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका । इसी प्रकार द्रोण नामक वसु ही नन्दगोपके नामसे विरच्यात हुए हैं तथा उनकी पत्नी धरा यशोदा हैं । देवी देवकीने पूर्वजन्ममें अजन्मा परमेश्वरसे जो कामना की थी, उसकी वह कामना महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दी । यज्ञानुष्ठान बंद हो गया था, धर्मका उच्छेद हो रहा था; ऐसी अवस्थामें धर्मकी स्थापना और पापी असुरोंका संहार करनेके लिये भगवान् श्रीविष्णु वृष्णि-कुलमें प्रकट हुए हैं । रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजितकी पुत्री सत्या, सुमित्रा, शैव्या, गाय्यार-राजकुमारी लक्ष्मण, सुभीमा, मद्राजकुमारी कौसल्या और विरजा आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ हैं । रुक्मिणीने दस पुत्र उत्पन्न किये; वे सभी युद्धकर्ममें कुशल हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशू चारुदेष्ण, सुचारु, चारुभद्र, सदश्व, हस्व, चारुगुप्त, चारुभद्र, चारुक और चारुहास । इनमें प्रद्युम्न सबसे बड़े और चारुहास सबसे छोटे हैं । रुक्मिणीने एक कन्याको भी जन्म दिया, जिसका नाम चारुमती है । सत्यभामासे भानु, भीमरथ, क्षण, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रबन्ध और जलन्धम—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए । इन सातोंके एक छोटी बहिन भी है । जाम्बवतीके पुत्र साम्ब हुए, जो बड़े ही सुन्दर हैं । ये सौर-शास्त्रके प्रणेता तथा प्रतिमा एवं मन्दिरके निर्माता हैं । मित्रविन्दाने सुमित्र, चारुमित्र और मित्रविन्दको जन्म दिया । मित्रबाहु और सुनीथ आदि सत्याके पुत्र हैं । इस प्रकार श्रीकृष्णके हजारों पुत्र हुए । प्रद्युम्नके विदर्भकुमारी रुक्मवतीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक परम बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ । अनिरुद्ध संग्राममें उत्साहपूर्वक युद्ध करनेवाले वीर हैं । अनिरुद्धसे मृगकेतनका जन्म हुआ । राजा सुपार्श्वकी पुत्री काम्याने साम्बसे तरस्वी नामक पुत्र प्राप्त किया । प्रमुख वीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ साठ लाखके लगभग है । वे सभी अत्यन्त पराक्रमी और

महाबली हैं। उन सबकी देवताओंके अंशसे उत्पत्ति हुई है। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे इस मनुष्यलोकमें उत्पन्न होकर सबको कष्ट दे रहे थे; उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण

हुए हैं। महात्मा यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही उन सबके नेता और स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण यादव भी भगवान्की आज्ञाके अधीन रहकर ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हो रहे हैं।*

— ★ — पुष्कर तीर्थकी महिमा, वहाँ वास करनेवाले लोगोंके लिये नियम तथा आश्रम-धर्मका निरूपण

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! मेरु-गिरिके शिखरपर श्रीनिधान नामक एक नगर है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित, अनेक आश्रयोंका घर तथा बहुतेरे वृक्षोंसे हरा-भरा है। भाँति-भाँतिकी अद्भुत धातुओंसे उसकी बड़ी विचित्र शोभा होती है। वह स्वच्छ स्फटिक मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। वहाँ ब्रह्माजीका वैराज नामक भवन है, जहाँ देवताओंको सुख देनेवाली कान्तिमती नामकी सभा है। वह मुनिसमुदायसे सेवित तथा ऋषि-महर्षियोंसे भरी रहती है। एक दिन देवेश्वर ब्रह्माजी उसी सभामें बैठकर

जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते-करते उनके मनमें यह विचार उठा कि 'मैं किस प्रकार यज्ञ करूँ? भूतलपर कहाँ और किस स्थानपर मुझे यज्ञ करना चाहिये? काशी, प्रयाग, तुङ्गा (तुङ्गभ्रद्रा), नैमिषारण्य, पुष्कर, काञ्ची भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और प्रभास आदि बहुत-से तीर्थ हैं। भूमण्डलमें चारों ओर जितने पुण्य तीर्थ और क्षेत्र हैं, उन सबको मेरी आज्ञासे रुद्रने प्रकट किया है। जिससे मेरी उत्पत्ति हुई है, भगवान् श्रीविष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए उस कमलको ही वेदपाठी ऋषि पुष्कर तीर्थ कहते हैं (पुष्कर तीर्थ उसीका व्यक्तरूप है)। इस प्रकार विचार करते-करते प्रजापति ब्रह्माके मनमें यह बात आयी कि अब मैं पृथ्वीपर चलूँ। यह सोचकर वे अपनी उत्पत्तिके प्राचीन स्थानपर आये और वहाँके उत्तम वनमें प्रविष्ट हुए, जो नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त एवं भाँति-भाँतिके फूलोंसे सुशोभित था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने क्षेत्रकी स्थापना की, जिसका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। चन्द्रनदीके उत्तर प्राची सरस्वतीतक और नन्दन नामक स्थानसे पूर्व क्रम्य या कल्प नामक स्थानतक जितनी भूमि है, वह सब पुष्कर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लोककर्ता ब्रह्माजीने यज्ञ करनेके निमित्त वेदी बनायी। ब्रह्माजीने वहाँ तीन पुष्करोंकी कल्पना की। प्रथम ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ समझना चाहिये, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और विश्वात है,



* श्रीष्टजी भगवान् श्रीकृष्णसे अवस्थामें बहुत बड़े थे। ऐसी दशामें जिस समय उनके साथ पुलस्त्यजीका संवाद हो रहा था, उस समय संभवतः श्रीकृष्णका जन्म न हुआ हो। फिर भी पुलस्त्यजी त्रिकालदर्शी ऋषि है, इसलिये उनके लिये भावी घटनाओंका भी वर्तमान अथवा भूतकी भाँति वर्णन करना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

उसके देवता साक्षात् ब्रह्माजी हैं। दूसरा मध्यम पुष्कर है, जिसके देवता विष्णु हैं तथा तीसरा कनिष्ठ पुष्कर है, जिसके देवता भगवान् रुद्र हैं। यह पुष्कर नामक वन आदि, प्रधान एवं गुह्य क्षेत्र है। वेदमें भी इसका वर्णन आता है। इस तीर्थमें भगवान् ब्रह्मा सदा निवास करते हैं। उन्होंने भूमण्डलके इस भागपर बड़ा अनुग्रह किया है। पृथ्वीपर विचरनेवाले सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही ब्रह्माजीने इस तीर्थको प्रकट किया है। यहाँकी यज्ञवेदीको उन्होंने सुवर्ण और हरीसे मढ़ा दिया तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित करके उसके फर्शको सब प्रकारसे सुशोभित एवं विचित्र बना दिया। तत्पश्चात् लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। साथ ही भगवान् श्रीविष्णु, रुद्र, आठों वसु, दोनों अश्विनीकुमार, मरुदग्ण तथा स्वर्गवासी देवता भी देवराज इन्द्रके साथ वहाँ आकर विहार करने लगे। यह तीर्थ सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाला है। मैंने इसकी यथार्थ महिमाका तुमसे वर्णन किया है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र-परायण होकर संहिताके क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इस तीर्थमें वेदोंका पाठ करते हैं, वे सब लोग ब्रह्माजीके कृपापात्र होकर उन्हींके समीप निवास करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—भगवन्! तीर्थनिवासी मनुष्योंको पुष्कर वनमें किस विधिसे रहना चाहिये? क्या केवल पुरुषोंको ही वहाँ निवास करना चाहिये या स्त्रियोंको भी? अथवा सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोग वहाँ निवास कर सकते हैं?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! सभी वर्णों एवं आश्रमोंके पुरुषों और स्त्रियोंको भी उस तीर्थमें निवास करना चाहिये। सबको अपने-अपने धर्म और आचारका पालन करते हुए दम्भ और मोहका परित्याग करके रहना उचित है। सभी मन, वाणी और कर्मसे ब्रह्माजीके भक्त उचित हैं। कोई किसीके प्रति दोष-दृष्टि न करे। सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हों; किसीके भी हृदयमें खोटा भाव नहीं रहना चाहिये।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! क्या करनेसे मनुष्य

इस लोकमें ब्रह्माजीका भक्त कहलाता है? मनुष्योंमें कैसे लोग ब्रह्मभक्त माने गये हैं? यह मुझे बताइये। **पुलस्त्यजी बोले—राजन्!** भक्ति तीन प्रकारकी कही गयी है—मानस, वाचिक और कायिक। इसके सिवा भक्तिके तीन भेद और हैं—लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक। ध्यान-धारणापूर्वक बुद्धिके द्वारा वेदार्थका जो विचार किया जाता है, उसे मानस भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजीकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली है। मन्त्र-जप, वेदपाठ तथा आरण्यकोंके जपसे होनेवाली भक्ति वाचिक कहलाती है। मन और इन्द्रियोंको रोकनेवाले ब्रत, उपवास, नियम, कृच्छ, सान्तप्न तथा चान्द्रायण आदि भिन्न-भिन्न ब्रतोंसे, ब्रह्मवृच्छ नामक उपवाससे एवं अन्यान्य शुभ नियमोंके अनुष्ठानसे जो भगवान्की आराधना की जाती है, उसको कायिक भक्ति कहते हैं। यह द्विजातियोंकी त्रिविधि भक्ति बतायी गयी। गायके घी, दूध और दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, विविध धातुओं तथा पदार्थ; काले अगरकी सुगन्धसे युक्त एवं घी और गूगुलसे बने हुए धूप, आभूषण, सुवर्ण और रत्न आदिसे निर्मित विचित्र-विचित्र हार, नृत्य, वाद्य, संगीत, सब प्रकारके जंगली फल-मूलोंके उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्य अर्पण करके मनुष्य ब्रह्माजीके उद्देश्यसे जो पूजा करते हैं, वह लौकिक भक्ति मानी गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंका जप और संहिताओंका अध्यापन आदि कर्म यदि ब्रह्माजीके उद्देश्यसे किये जाते हैं, तो वह वैदिक भक्ति कहलाती है। वेद-मन्त्रोंके उच्चारण-पूर्वक हविष्यकी आहुति देकर जो क्रिया सम्प्रत्र की जाती है वह भी वैदिक भक्ति मानी गयी है। अमावास्या अथवा पूर्णिमाको जो अग्निहोत्र किया जाता है, यज्ञोंमें जो उत्तम दक्षिणा दी जाती है, तथा देवताओंको जो पुरोडाश और चरु अर्पण किये जाते हैं—ये सब वैदिक भक्तिके अन्तर्गत हैं। इष्टि, धृति, यज्ञ-सम्बन्धी सोमपान तथा अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, चन्द्रमा, मेघ और सूर्यके उद्देश्यसे किये हुए जितने कर्म हैं, उन सबके देवता ब्रह्माजी ही हैं।

राजन् ! ब्रह्माजीकी आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—एक सांख्यज और दूसरी योगज । इन दोनोंका भेद सुनो । प्रधान (मूल प्रकृति) आदि प्राकृत तत्त्व संख्यामें चौबीस हैं । वे सब-के-सब जड़ एवं भोग्य हैं । उनका भोक्ता पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन है । इस प्रकार संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको ठीक-ठीक जानना सांख्यज भक्ति है । इसे सत्पुरुषोंने सांख्य-शास्त्रके अनुसार आध्यात्मिक भक्ति माना है । अब ब्रह्माजीकी योगज भक्तिका वर्णन सुनो । प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक ध्यान लगाये, इन्द्रियोंका संयम करे और समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचकर हृदयमें धारण करके प्रजानाथ ब्रह्माजीका इस प्रकार ध्यान करे । हृदयके भीतर कमल है, उसकी कर्णिकापर ब्रह्माजी विराजमान हैं । वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं । सब ओर उनके मुख प्रकाशित हो रहे हैं । ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कमरके ऊपरतक लटका हुआ है, उनके शरीरका वर्ण लाल है, चार भुजाएँ शोभा पा रही हैं तथा हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं । इस प्रकारके ध्यानकी स्थिरता योगजन्य मानस सिद्धि है; यही ब्रह्माजीके प्रति होनेवाली पराभक्ति मानी गयी है । जो भगवान् ब्रह्माजीमें ऐसी भक्ति रखता है, वह ब्रह्मभक्त कहलाता है ।

राजन् ! अब पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके पालन करनेयोग्य आचारका वर्णन सुनो । पूर्वकालमें जब विष्णु आदि देवताओंका वहाँ समागम हुआ था, उस समय सबकी उपस्थितिमें ब्रह्माजीने स्वयं ही क्षेत्रनिवासियोंके कर्तव्यको विस्तारके साथ बतलाया था । पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवालोंको उचित है कि वे ममता और अहंकारको पास न आने दें । आसक्ति और संग्रहकी वृत्तिका परित्याग करें । बन्धु-बाध्यवोंके प्रति भी उनके मनमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिये । वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझें । प्रतिदिन नाना प्रकारके

शुभ कर्म करते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय-दान दें । नित्य प्राणायाम और परमेश्वरका ध्यान करें । जपके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध बनायें । यति-धर्मके कर्तव्योंका पालन करें । सांख्ययोगकी विधिको जानें तथा सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करके ब्रह्मका बोध प्राप्त करें । क्षेत्रनिवासी ब्राह्मण इसी नियमसे रहकर वहाँ यज्ञ करते हैं ।

अब पुष्कर वनमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जो फल मिलता है, उसे सुनो । वे लोग अक्षय ब्रह्म-सायुज्यको प्राप्त होते हैं, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है । उन्हें उस पदकी प्राप्ति होती है, जहाँ जानेपर पुनः मृत्यु प्रदान करनेवाला जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता । वे पुनरावृत्तिके पथका परित्याग करके ब्रह्मसम्बन्धिनी परा विद्यामें स्थित हो जाते हैं ।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! पुष्कर तीर्थमें निवास करनेवाली लिंगाँ, म्लेच्छ, शूद्र, पशु-पक्षी, मृग, गौणे, जड़, अंधे तथा बहरे प्राणी, जो तपस्या और नियमोंसे दूर हैं, किस गतिको प्राप्त होते हैं—यह बतानेकी कृपा करें ।

पुलस्यजी बोले—भीष्म ! पुष्कर क्षेत्रमें मरनेवाले म्लेच्छ, शूद्र, खींची, पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं । वे दिव्य शरीर धारण करके सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोककी यात्रा करते हैं । तिर्यग्योनिमें पड़े हुए—पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, चीटियाँ, थलचर, जलचर, स्वेदज, अप्पज, उद्दिज्ज और जरायुज आदि प्राणी यदि पुष्कर वनमें प्राण-त्याग करते हैं तो सूर्यके समान कान्तिमान् विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं । जैसे समुद्रके समान दूसरा कोई जलाशय नहीं है, वैसे ही पुष्करके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है ।* अब मैं तुम्हें अन्य देवताओंका परिचय देता हूँ, जो इस पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं । भगवान् श्रीविष्णुके साथ इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता, गणेश, कार्तिकेय, चन्द्रमा, सूर्य और

* यथा महोदयेस्तुल्यो न चान्योऽस्ति जलशयः । तथा वै पुष्करस्यापि समं तीर्थं न विद्यते ॥

देवी—ये सब सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये ब्रह्माजीके निवास-स्थान पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। इस तीर्थमें निवास करनेवाले लोग सत्ययुगमें बारह वर्षोंतक, त्रेतामें एक वर्षतक तथा द्वापरमें एक मासतक तीर्थ-सेवन करनेसे जिस फलको पाते थे, उसे कलियुगमें एक दिन-रातके तीर्थ-सेवनसे ही प्राप्त कर लेते हैं।* यह बात देवाधिदेव ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मुझसे (पुलस्त्यजीसे) स्वयं ही कही थी। पुष्करसे बढ़कर इस पृथ्वीपर दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है; इसलिये पूरा प्रयत्न करके मनुष्यको इस पुष्कर वनका सेवन करना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये सब लोग अपने-अपने शास्त्रोक्त धर्मका पालन करते हुए इस क्षेत्रमें परम गतिको प्राप्त करते हैं।

धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपनी आयुके एक चौथाई भागतक दूसरेकी निन्दासे बचकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप निवास करे तथा गुरुकी सेवासे जो समय बचे, उसमें अध्ययन करे, श्रद्धा और आदरपूर्वक गुरुका आश्रय ले। गुरुके घरमें रहते समय गुरुके सोनेके पश्चात् शयन करे और उनके उठनेसे पहले उठ जाय। शिष्यके करनेयोग्य जो कुछ सेवा आदि कार्य हो, वह सब पूरा करके ही शिष्यको गुरुके पास खड़ा होना चाहिये। वह सदा गुरुका किङ्कर होकर सब प्रकारकी सेवाएँ करे। सब कार्योंमें कुशल हो। पवित्र, कार्यदक्ष और गुणवान् बने। गुरुको प्रिय लगनेवाला उत्तर दे। इन्द्रियोंको जीतकर शान्तभावसे गुरुकी ओर देखे। गुरुके भोजन करनेसे पहले भोजन और जलपान करनेसे पहले जलपान न करे। गुरु खड़े हों तो स्वयं भी बैठे नहीं। उनके सोये बिना शयन भी न करे। उत्तान हाथोंके द्वारा गुरुके चरणोंका स्पर्श करे। गुरुके दाहिने पैरको अपने दाहिने हाथसे और बायें पैरको बायें हाथसे छीर-धीर दबाये और इस प्रकार प्रणाम करके गुरुसे

कहे—‘भगवन्! मुझे पढ़ाइये। प्रभो! यह कार्य मैं पूरा कर लिया है और इस कार्यको मैं अभी करूँगा।’ इस प्रकार पहले कार्य करे और फिर किया हुआ सारा काम गुरुको बता दे। मैंने ब्रह्मचारीके नियमोंका यहाँ विस्तारके साथ वर्णन किया है; गुरुभक्त शिष्यको इन सभी नियमोंका पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार गुरुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए शिष्यको कर्तव्यकर्ममें लगे रहना उचित है। वह एक, दो, तीन या चारों वेदोंको अर्थसहित गुरुमुखसे अध्ययन करे। भिक्षाके अन्नसे जीविका चलाये और धर्तीपर शयन करे। वेदोक्त ब्रतोंका पालन करता रहे और गुरु-दक्षिणा देकर विधिपूर्वक अपना समावर्तन-संस्कार करे। फिर धर्मपूर्वक प्राप्त हुई खांके साथ गार्हपत्यादि अग्नियोंकी स्थापना करके प्रतिदिन हवनादिके द्वारा उनका पूजन करे।

आयुका [प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रममें बितानेके पश्चात्] दूसरा भाग गृहस्थ आश्रममें रहकर व्यतीत करे। गृहस्थ ब्राह्मण यज्ञ करना, यज्ञ कराना, वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना तथा दान देना और दान लेना—इन छः कर्मोंका अनुष्ठान करे। उससे भिन्न वानप्रस्थी विप्र केवल यजन, अध्ययन और दान—इन तीन कर्मोंका ही अनुष्ठान करे तथा चतुर्थ आश्रममें रहनेवाला ब्रह्मनिष संन्यासी जपयज्ञ और अध्ययन—इन दो ही कर्मोंसे सम्बन्ध रखे। गृहस्थके व्रतसे बढ़कर दूसरा कोई महान् तीर्थ नहीं बताया गया है। गृहस्थ पुरुष कभी केवल अपने खानेके लिये भोजन न बनाये [देवता और अतिथियोंके उद्देश्यसे ही रसोई करे]। पशुओंकी हिंसा न करे। दिनमें कभी नींद न ले। रातके पहले और पिछले भागमें भी न सोये। दिन और रात्रिकी सन्धिमें (सूर्योदय एवं सूर्यास्तके समय) भोजन न करे। झूठ न बोले। गृहस्थके घरमें कभी ऐसा नहीं होना चाहिये कि कोई ब्राह्मण अतिथि आकर भूखा रह जाय और उसका

यथावत् सत्कार न हो । अतिथिको भोजन करनेसे देवता और पितर संतुष्ट होते हैं; अतः गृहस्थ पुरुष सदा ही अतिथियोंका सत्कार करे । जो वेद-विद्या और ब्रतमें निष्णात, श्रोत्रिय, वेदोंके पारगामी, अपने कर्मसे जीविका चलानेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान् और तपस्वी हैं, उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कारके लिये हव्य और कव्यका विधान किया गया है । जो नश्वर पदार्थके प्रति आसक्त है, अपने कर्मसे भ्रष्ट हो गया है, अग्निहोत्र छोड़ चुका है, गुरुकी झूठी निन्दा करता है और असत्यभाषणमें आग्रह रखता है, वह देवताओं और पितरोंको अर्पण करनेयोग्य अन्नके पानेका अधिकारी नहीं है । गृहस्थकी सम्पत्तिमें सभी प्राणियोंका भाग होता है । जो भोजन नहीं बनाते, उन्हें भी गृहस्थ पुरुष अन्न दे । वह प्रतिदिन 'विघ्स' और 'अमृत' भोजन करे । यज्ञसे (देवताओं और पितर आदिको अर्पण करनेसे) बचा हुआ अन्न हविष्यके समान एवं अमृत माना गया है । तथा जो कुटुम्बके सभी मनुष्योंके भोजन कर लेनेके पश्चात् उनसे बचा हुआ अन्न ग्रहण करता है; उसे 'विघ्साशी' ('विघ्स' अन्न भोजन करनेवाला) कहा गया है ।

गृहस्थ पुरुषको केवल अपनी ही खीसे अनुराग रखना चाहिये । वह मनको अपने वशमें रखे, किसीके गुणोंमें दोष न देखे और अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखे । ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, कुटुम्बी, सम्बन्धी, बास्थव, माता, पिता, दामाद, भाई, पुत्र, खी, बेटी तथा दास-दासियोंके साथ विवाद नहीं करना चाहिये । जो इनसे विवाद नहीं करता, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो अनुकूल बर्तावके द्वारा इन्हें अपने वशमें कर लेता है, वह सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है, पिता प्रजापति-लोकका प्रभु है, अतिथि सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर है, ऋत्विक् वेदोंका अधिष्ठान और प्रभु होता है । दामाद अप्सराओंके लोकका अधिपति है । कुटुम्बी विश्वेदेवसम्बन्धी लोकोंके अधिष्ठाता हैं । सम्बन्धी और बास्थव दिशाओंके तथा

माता और मामा भूलोकके स्वामी हैं । वृद्ध, बालक और रोगी मनुष्य आकाशके प्रभु हैं । पुरोहित ऋषिलोकके और शरणागत साध्यलोकोंके अधिपति हैं । वैद्य अश्विनीकुमारोंके लोकका तथा भाई वसुलोकका स्वामी है । पत्नी वायुलोककी ईश्वरी तथा कन्या अप्सराओंके घरकी स्वामिनी है । बड़ा भाई पिताके समान होता है । पत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं । दासवर्ग परछाईके समान हैं तथा कन्या अत्यन्त दीन—दयाके योग्य मानी गयी है । इसलिये उपर्युक्त व्यक्ति कोई अपमानजनक बात भी कह दें तो उसे चुपचाप सह लेना चाहिये । कभी क्रोध या दुःख नहीं करना चाहिये । गृहस्थ-धर्मपरायण विद्वान् पुरुषको एक ही साथ बहुत-से काम नहीं आरम्भ करने चाहिये । धर्मज्ञको उचित है कि वह किसी एक ही काममें लगाकर उसे पूरा करे ।

गृहस्थ ब्राह्मणकी तीन जीविकाएँ हैं, उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ एवं कल्याणकारक हैं । पहली है—कुम्भधान्य वृत्ति, जिसमें एक घड़ेसे अधिक धान्यका संग्रह न करके जीवन-निर्वाह किया जाता है । दूसरी उच्छशिल वृत्ति है, जिसमें खेती कट जानेपर खेतोंमें गिरी हुई अनाजकी बालें चुनकर लायी जाती हैं और उन्हींसे जीवन-निर्वाह किया जाता है । तीसरी कापोती वृत्ति है, जिसमें खलिहान और बाजारसे अन्नके बिखरे हुए दाने चुनकर लाये जाते हैं तथा उन्हींसे जीविका चलायी जाती है । जहाँ इन तीन वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले पूजनीय ब्राह्मण निवास करते हैं, उस राष्ट्रकी वृद्धि होती है । जो ब्राह्मण गृहस्थकी इन तीन वृत्तियोंसे जीवन-निर्वाह करता है और मनमें कष्टका अनुभव नहीं करता, वह दस पीढ़ीतकके पूर्वजोंको तथा आगे होनेवाली संतानोंकी भी दस पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है ।

अब तीसरे आश्रम—वानप्रस्थका वर्णन करता हूँ सुनो । गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे शरीरमें द्वार्णियाँ पड़ गयी हैं, सिरके बाल सफेद हो गये हैं और पुत्रके भी पुत्र हो गया है, तब वह वनमें चला जाय । जिन्हें गृहस्थ-आश्रमके नियमोंसे निर्वेद हो गया है, अतएव जो वानप्रस्थकी दीक्षा लेकर गृहस्थ-आश्रमका

त्याग कर चुकते हैं, पवित्र स्थानमें निवास करते हैं, जो बुद्धि-बलसे सम्पन्न तथा सत्य, शौच और क्षमा आदि सद्गुणोंसे युक्त हैं, उन पुरुषोंके कल्याणमय नियमोंका वर्णन सुनो। प्रत्येक द्विजको अपनी आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ-आश्रममें रहकर व्यतीत करना चाहिये। वानप्रस्थ-आश्रममें भी वह उन्हीं अग्नियोंका सेवन करे, जिनका गृहस्थ-आश्रममें सेवन करता था। देवताओंका पूजन करे, नियमपूर्वक रहे, नियमित भोजन करे, भगवान् श्रीविष्णुमें भक्ति रखे तथा यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोंका पालन करते हुए प्रतिदिन अग्निहोत्रका अनुष्ठान करे। धान और जौ वही ग्रहण करे, जो बिना जोती हुई जमीनमें अपने-आप पैदा हुआ हो। इसके सिवा नीवार (तीना) और विघ्स अन्नको भी वह पा सकता है। उसे अग्निमें देवताओंके निमित्त हविष्य भी अर्पण करना चाहिये। वानप्रस्थी लोग वर्षाके समय खुले मैदानमें आकाशके नीचे बैठते हैं, हेमन्त ऋतुमें जलका आश्रय लेते हैं और ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि-सेवनरूप तपस्या करते हैं। उनमेंसे कोई तो धरतीपर लोटते हैं, कोई पंजोंके बल खड़े रहते हैं और कोई-कोई एक स्थानपर एक आसनसे बैठे रह जाते हैं। कोई दाँतोंसे ही ऊखलका काम लेते हैं—दूसरे किसी साधनद्वारा फोड़ी हुई वस्तु नहीं ग्रहण करते। कोई पत्थरसे कूटकर खाते हैं, कोई जौके आटेको पानीमें उबालकर उसीको शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमें एक बार पी लेते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो समयपर अपने-आप प्राप्त हुई वस्तुको ही भक्षण करते हैं। कोई मूल, कोई फल और कोई फूल खाकर ही नियमित जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार वे न्यायपूर्वक वैखानसों (वानप्रस्थियों) के नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं। वे मनीषी पुरुष ऊपर बताये हुए तथा अन्यान्य नाना प्रकारके नियमोंकी दीक्षा लेते हैं।

चौथा आश्रम संन्यास है। यह उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है। गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम प्रायः साधारण—मिलते-जुलते माने गये हैं; किन्तु संन्यास इनसे भिन्न—विलक्षण होता है। तात! प्राचीन युगमें सर्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंने संन्यास-धर्मका आश्रय लिया था।

अगस्त्य, सप्तर्षि, मधुच्छन्दा, गवेषण, साङ्कृति, सुदिव, भाष्णि, यवप्रोथ, कृतश्रम, अहोवीर्य, काम्य, स्थाणु, मेधातिथि, बुध, मनोवाक, शिनीवाक, शून्यपाल और अकृतश्रम—ये धर्म-तत्त्वके यथार्थ ज्ञाता थे। इन्हें धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार हो गया था। इनके सिवा, धर्मकी निपुणताका ज्ञान रखनेवाले, उप्रतपस्वी ऋषियोंके जो यायावर नामसे प्रसिद्ध गण हैं, वे सभी विषयोंसे उपरत हो मायाके बन्धनको तोड़कर वनमें चले गये थे। मुमुक्षुको उचित है कि वह सर्वस्व दक्षिणा देकर—सबका त्याग करके सद्यस्करी (तत्काल आत्मकल्याण करनेवाला) बने। आत्माका ही यज्ञन करे, विषयोंसे उपरत हो आत्मामें ही रमण करे तथा आत्मापर ही निर्भर करे। सब प्रकारके संग्रहका परित्याग करके भावनाके द्वारा गार्हपत्यादि अग्नियोंकी आत्मामें स्थापना करे और उसमें तदनुरूप यज्ञोंका सर्वदा अनुष्ठान करता रहे।

चतुर्थ आश्रम सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। वह तीनों आश्रमोंके ऊपर है। उसमें अनेक प्रकारके उत्तम गुणोंका निवास है। वही सबकी चरम सीमा—परम आधार है। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमोंमें क्रमशः रहनेके पश्चात् काषाय-वस्त्र धारण करके संन्यास ले ले। सर्वस्व-त्यागरूप संन्यास सबसे उत्तम आश्रम है। संन्यासीको चाहिये कि वह मोक्षकी सिद्धिके लिये अकेले ही धर्मका अनुष्ठान करे, किसीको साथ न रखे। जो ज्ञानवान् पुरुष अकेला विचरता है, वह सबका त्याग कर देता है; उसे स्वयं कोई हानि नहीं उठानी पड़ती। संन्यासी अग्निहोत्रके लिये अग्निका चयन न करे, अपने रहनेके लिये कोई घर न बनाये, केवल भिक्षा लेनेके लिये ही गाँवमें प्रवेश करे, कल्के लिये किसी वस्तुका संग्रह न करे, मौन होकर शुद्धभावसे रहे तथा थोड़ा और नियमित भोजन करे। प्रतिदिन एक ही बार भोजन करे। भोजन करने और पानी पीनेके लिये कपाल (काठ या नारियल आदिका पात्रविशेष) रखना, वृक्षकी जड़में निवास करना, मलिन वस्त्र धारण करना, अकेले रहना—ये तथा सब प्राणियोंकी ओरसे उदासीनता रखना—ये भिक्षु (संन्यासी) के लक्षण हैं! जिस पुरुषके भीतर

सबकी बातें समा जाती हैं—जो सबकी सह लेता है तथा जिसके पाससे कोई बात लौटकर पुनः वक्त्ताके पास नहीं जाती—जो कटु वचन कहनेवालेको भी कटु उत्तर नहीं देता, वही संन्यासाश्रममें रहनेका अधिकारी है। कभी किसीकी भी निन्दाको न तो करे और न सुने ही। विशेषतः ब्राह्मणोंकी निन्दा तो किसी तरह न करे। ब्राह्मणका जो शुभकर्म हो, उसीकी सदा चर्चा करनी चाहिये। जो उसके लिये निन्दाकी बात हो, उसके विषयमें मौन रहना चाहिये। यही आत्मशुद्धिकी दवा है।

जो जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेता है, जो कुछ मिल जाय उसीको खाकर भूख मिटा लेता है तथा जहाँ कहीं भी सो रहता है, उसे देवता ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) समझते हैं। जो जन-समुदायको साँप समझकर, स्नेह-सम्बन्धको नरक जानकर तथा खियोंको मुर्दा समझकर उन सबसे डरता रहता है; उसे देवतालोग ब्राह्मण कहते हैं। जो मान या अपमान होनेपर स्वयं हर्ष अथवा क्रोधके वशीभूत नहीं होता, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जो जीवन और मरणका अभिनन्दन न करके सदा कालकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं। जिसका चित्त राग-द्वेषादिके वशीभूत नहीं होता, जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है तथा जिसकी बुद्धि भी दूषित नहीं होती, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्भय है तथा समस्त प्राणी जिससे भय नहीं मानते, उस देहाभिमानसे मुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं होता। जैसे हाथीके पदचिह्नमें अन्य समस्त पादचारी जीवोंके पदचिह्न समा जाते हैं, तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान चित्तमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सारे धर्म और अर्थ

अहिंसामें लीन रहते हैं। राजन् ! जो हिंसाका आश्रय लेता है वह सदा ही मृतकके समान है।

इस प्रकार जो सबके प्रति समान भाव रखता है, भलीभाँति धैर्य धारण किये रहता है, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है तथा सम्पूर्ण भूतोंको त्राण देता है, वह ज्ञानी पुरुष उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जिसका अन्तःकरण उत्तम ज्ञानसे परितृप्त है तथा जिसमें ममताका सर्वथा अभाव है, उस मनीषी पुरुषकी मृत्यु नहीं होती; वह अमृतल्वको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी मुनि सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर आकाशकी भाँति स्थित होता है। जो सबमें विष्णुकी भावना करनेवाला और शान्त होता है, उसे ही देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जिसका जीवन धर्मके लिये, धर्म आत्मसन्तोषके लिये तथा दिन-रात पुण्यके लिये है, उसे देवतालोग ब्राह्मण समझते हैं। जिसके मनमें कोई कामना नहीं होती, जो कर्मोंकी आरम्भका कोई संकल्प नहीं करता तथा नमस्कार और स्तुतिसे दूर रहता है, जिसने योगके द्वारा कर्मोंको क्षीण कर दिया है, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको अभ्यकी दक्षिणा देना संसारमें समस्त दानोंसे बढ़कर है। जो किसीकी निन्दाका पात्र नहीं है तथा जो स्वयं भी दूसरोंकी निन्दा नहीं करता, वही ब्राह्मण परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है। जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, जो इहलोक और परलोकमें भी किसी वस्तुको पानेकी इच्छा नहीं करता, जिसका मोह दूर हो गया है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णको समान दृष्टिसे देखता है, जिसने रोषको त्याग दिया है, जो निन्दा-स्तुति और प्रिय-अप्रियसे रहित होकर सदा उदासीनकी भाँति विचरता रहता है, वही वास्तवमें संन्यासी है।

————★————

पुष्कर क्षेत्रमें ब्रह्माजीका यज्ञ और सरस्वतीका प्राकट्य

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! आपके मुखसे यह सब प्रसङ्ग मैंने सुना; अब पुष्कर क्षेत्रमें जो ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था, उसका वृत्तान्त सुनाइये। क्योंकि इसका श्रवण करनेसे मेरे शरीर [और मन] की शुद्धि होगी।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! भगवान् ब्रह्माजी

पुष्कर क्षेत्रमें जब यज्ञ कर रहे थे, उस समय जो-जो बातें हुईं उन्हें बतलाता हूँ; सुनो। पितामहका यज्ञ आदि कृतयुगमें प्रारम्भ हुआ था। उस समय मरीचि, अङ्गिरा, मैं, पुलह, क्रतु और प्रजापति दक्षने ब्रह्माजीके पास जाकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। धाता, अर्यमा,

सविता, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा और पर्जन्य—आदि बारहों आदित्य भी वहाँ उपस्थित हो अपने जाज्वल्यमान तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। इन देवेश्वरोंने भी पितामहको प्रणाम किया। मृगव्याध, शर्व, महायशस्वी निर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्य, पिनाकी, अपराजित, विश्वेश्वर भव, कपर्दी, स्थाणु और भगवान् भग—ये ग्यारह रुद्र भी उस यज्ञमें उपस्थित थे। दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली मरुदग्ण, विश्वेदेव और साध्य नामक देवता ब्रह्माजीके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े थे। शेषजीके वंशज वासुकि आदि बड़े-बड़े नाग भी विद्यमान थे। ताक्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, वारुणि तथा आरुणि—ये सभी विनताकुमार वहाँ पधारे थे। लोकपालक भगवान् श्रीनारायणने वहाँ स्वयं पदार्पण किया और समस्त महर्षियोंके साथ लोकगुरु ब्रह्माजीसे कहा—‘जगत्पते ! तुम्हारे ही द्वारा इस सम्पूर्ण संसारका विस्तार हुआ है, तुम्हीने इसकी सृष्टि की है; इसलिये तुम सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर हो। यहाँ हमलोगोंके करनेयोग्य जो तुम्हारा महान् कार्य हो, उसे करनेकी हमें आज्ञा दो।’ देवर्षियोंके साथ भगवान् श्रीविष्णुने ऐसा कहकर देवेश्वर ब्रह्माजीको नमस्कार किया।

ब्रह्माजी वहाँ स्थित होकर सम्पूर्ण दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित कर रहे थे तथा भगवान् श्रीविष्णु भी श्रीवत्स-चिह्नसे सुशोभित एवं सुन्दर सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे देदीप्यमान हो रहे थे। उनका एक-एक रोम परम पवित्र है। वे सर्वसमर्थ हैं, उनका वक्षःस्थल विशाल तथा श्रीविग्रह सम्पूर्ण तेजोंका पुञ्ज जान पड़ता है। [देवताओं और ऋषियोंने उनकी इस प्रकार स्तुति की—] जो पुण्यात्माओंको उत्तम गति और पापियोंको दुर्गति प्रदान करनेवाले हैं; योगसिद्ध महात्मा पुरुष जिन्हें उत्तम योगस्वरूप मानते हैं; जिनको अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य नित्य प्राप्त हैं; जिन्हें देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है; मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले संयमी ब्राह्मण योगसे अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके जिन सनातन पुरुषको पाकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं; चन्द्रमा और सूर्य जिनके नेत्र हैं तथा अनन्त आकाश

जिनका विग्रह है; उन भगवान्‌की हम शरण लेते हैं। जो भगवान् सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले हैं, जो ऋषियों और लोकोंके स्वष्टा तथा देवताओंके ईश्वर हैं, जिन्होंने देवताओंका प्रिय और समस्त जगत्‌का पालन करनेके लिये चिरकालसे पितरोंको कव्य तथा देवताओंको उत्तम हविष्य अर्पण करनेका नियम प्रवर्तित किया है, उन देवश्रेष्ठ परमेश्वरको हम सादर प्रणाप करते हैं।

तदनन्तर वृद्ध एवं बुद्धिमान् देवता भगवान् श्रीब्रह्माजी यज्ञशालमें लोकपालक श्रीविष्णुभगवान्‌के साथ बैठकर शोभा पाने लगे। वह यज्ञमण्डप धन आदि सामग्रियों और ऋत्विजोंसे भरा था। परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णु धनुष हाथमें लेकर सब ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। दैत्य और दानवोंके सरदार तथा राक्षसोंके समुदाय भी वहाँ उपस्थित थे। यज्ञ-विद्या, वेद-विद्या तथा पद और क्रमका ज्ञान रखनेवाले महर्षियोंके वेद-घोषसे सारी सभा गूँज उठी। यज्ञमें स्तुति-कर्मके जानकार, शिक्षाके ज्ञाता, शब्दोंकी व्युत्पत्ति एवं अर्थका ज्ञान रखनेवाले और मीमांसाके युक्तियुक्त वाक्योंको समझनेवाले विद्वानोंके उच्चारण किये हुए शब्द सबको सुनायी देने लगे। इतिहास और पुराणोंके ज्ञाता, नाना प्रकारके विज्ञानको जानते हुए भी मौन रहनेवाले, संयमी तथा उत्तम ब्रतोंका पालन करनेवाले विद्वानोंने वहाँ उपस्थित होकर जप और होममें लगे हुए मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंको देखा। देवता और असुरोंके गुरु लोक-पितामह ब्रह्माजी उस यज्ञभूमिमें विराजमान थे। सुर और असुर दोनों ही उनकी सेवामें खड़े थे। प्रजापतिगण—दक्ष, वसिष्ठ, पुलह, मरीचि, अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, गौतम तथा नारद—ये सब लोग वहाँ भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करते थे। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, निरुत्त, कल्प, शिक्षा, आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, गणित, गजविद्या, अश्वविद्या और इतिहास—इन सभी अङ्गोपाङ्गोंसे विभूषित सम्पूर्ण वेद भी मूर्तिमान्

होकर ओङ्कारयुक्त महात्मा ब्रह्माजीकी उपासना करते थे। शङ्करजीसे कहा।

नय, क्रतु, संकल्प, प्राण तथा अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त, बुध, शनैश्चर, राहु, समस्त ग्रह, मरुदग्ण, विश्वकर्मा, पितृगण, सूर्य तथा चन्द्रमा भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। दुर्गम कष्टसे तारनेवाली गायत्री, समस्त वेद-शास्त्र, यम-नियम, सम्पूर्ण अक्षर, लक्षण, भाष्य तथा सब शास्त्र देह धारण करके वहाँ विद्यमान थे। क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास और सम्पूर्ण ऋतुएँ अर्थात् इनके देवता महात्मा ब्रह्माजीकी उपासना करते थे।

इनके सिवा अन्यान्य श्रेष्ठ देवियाँ—ही, कीर्ति, द्वृति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, नीति, विद्या, मति, श्रुति, सृति, कान्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया, नाच-गानमें कुशल समस्त दिव्य अप्सराएँ तथा सम्पूर्ण देव-माताएँ भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थीं। विप्रचिति, शिबि, शङ्कु, केतुमान्, प्रहाद, बलि, कुम्भ, संहाद, अनुहाद, वृषपर्वा, नमुचि, शम्बर, इन्द्रतापन, वातापि, केशी, राहु और वृत्र—ये तथा और भी बहुत-से दानव, जिन्हें अपने बलपर गर्व था, ब्रह्माजीकी उपासना करते हुए इस प्रकार बोले।

दानवोंने कहा—भगवन्! आपने ही हमलोगोंकी सृष्टि की है, हमें तीनों लोकोंका राज्य दिया है तथा देवताओंसे अधिक बलवान् बनाया है; पितामह! आपके इस यज्ञमें हमलोग कौन-सा कार्य करें? हम स्वयं ही कर्तव्यका निर्णय करनेमें समर्थ हैं; अदितिके गर्भसे पैदा हुए इन बेचारे देवताओंसे क्या काम होगा; ये तो सदा हमारेद्वारा मारे जाते और अपमानित होते रहते हैं। फिर भी आप तो हम सबके ही पितामह हैं; अतः देवताओंको भी साथ लेकर यज्ञ पूर्ण कीजिये। यज्ञ समाप्त होनेपर राज्यलक्ष्मीके विषयमें हमारा देवताओंके साथ फिर विरोध होगा; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, किन्तु इस समय हम चुपचाप इस यज्ञको देखेंगे—देवताओंके साथ युद्ध नहीं छेड़ेंगे।

पुलस्त्यजी कहते हैं—दानवोंके ये गर्वयुक्त वचन सुनकर इन्द्रसहित महायशस्वी भगवन् श्रीविष्णुने

भगवान् श्रीविष्णु बोले—प्रभो! पितामहके यज्ञमें प्रधान-प्रधान दानव आये हैं। ब्रह्माजीने इनको भी इस यज्ञमें आमन्त्रित किया है। ये सब लोग इसमें विष्णु डालनेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु जबतक यज्ञ समाप्त न हो जाय तबतक हमलोगोंको क्षमा करना चाहिये। इस यज्ञके समाप्त हो जानेपर देवताओंको दानवोंके साथ युद्ध करना होगा। उस समय आपको ऐसा यत्न करना चाहिये, जिससे पृथ्वीपरसे दानवोंका नामो-निशान मिट जाय। आपको मेरे साथ रहकर इन्द्रकी विजयके लिये प्रयत्न करना उचित है। इन दानवोंका धन लेकर राहगीरों, ब्राह्मणों तथा दुःखी मनुष्योंमें बाँट दें।

भगवान् श्रीविष्णुकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—‘भगवन्! आपकी बात सुनकर ये दानव कुपित हो सकते हैं; किन्तु इस समय इन्हें क्रोध दिलाना आपको भी अभीष्ट न होगा। अतः रुद्र एवं अन्य देवताओंके साथ आपको क्षमा करना चाहिये। सत्ययुगके अन्तमें जब यह यज्ञ समाप्त हो जायगा, उस समय मैं आपलोगोंको तथा इन दानवोंको विदा कर दूँगा; उसी समय आप सब लोग सन्धि या विग्रह, जो उचित हो, कीजियेगा।’

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने पुनः उन दानवोंसे कहा—‘तुम्हें देवताओंके साथ किसी प्रकार विरोध नहीं करना चाहिये। इस समय तुम सब लोग परस्पर मित्रभावसे रहकर मेरा कार्य सम्पन्न करो।’

दानवोंने कहा—पितामह! आपके प्रत्येक आदेशका हमलोग पालन करेंगे। देवता हमारे छोटे भाई हैं, अतः उन्हें हमारी ओरसे कोई भय नहीं है।

दानवोंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीको बड़ा सन्तोष हुआ। थोड़ी ही देर बाद उनके यज्ञका वृत्तान्त सुनकर ऋषियोंका एक समुदाय आ पहुँचा। भगवान् श्रीविष्णुने उनका पूजन किया। पिनाकधारी महादेवजीने उन्हें आसन दिया तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे वसिष्ठजीने उन सबको अर्घ्य निवेदित करके उनका कुशल-क्षेत्र पूछा

और पुष्कर क्षेत्रमें उन्हें निवासस्थान देकर कहा—‘आपलोग आरामसे यहीं रहें।’ तत्पश्चात् जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले वे समस्त महर्षि ब्रह्माजीकी यज्ञ-सभाको सुशोभित करने लगे। उनमें कुछ महात्मा वालखिल्य थे तथा कुछ लोग संप्रख्यान (एक समयके लिये ही अन्न ग्रहण करनेवाले अथवा तत्त्वका विचार करनेवाले) थे। वे नाना प्रकारके नियमोंमें संलग्न तथा वेदीपर शयन करनेवाले थे। उन सभी तपस्वियोंने पुष्करके जलमें ज्यों ही अपना मुँह देखा, उसी क्षण वे अत्यन्त रूपवान् हो गये। फिर एक दूसरेकी ओर देखकर सोचने लगे—‘यह कैसी बात है? इस तीर्थमें मुँहका प्रतिबिम्ब देखनेसे सबका सुन्दर रूप हो गया! ’ ऐसा विचार कर तपस्वियोंने उसका नाम ‘मुखदर्शन तीर्थ’ रख दिया। तत्पश्चात् वे नहाकर अपने-अपने नियमोंमें लग गये। उनके गुणोंकी कहीं उपमा नहीं थी। नरश्रेष्ठ! वे सभी वनवासी मुनि वहाँ रहकर अत्यन्त शोभा पाने लगे। उन्होंने अग्निहोत्र करके नाना प्रकारकी क्रियाएँ सम्पन्न कीं। तपस्यासे उनके पाप भस्म हो चुके थे। वे सोचने लगे कि ‘यह सरोवर सबसे श्रेष्ठ है।’ ऐसा विचार करके उन द्विजातियोंने उस सरोवरका ‘श्रेष्ठ पुष्कर’ नाम रखा।

तदनन्तर ब्राह्मणोंको दानके रूपमें नाना प्रकारके पात्र देनेके पश्चात् वे सभी द्विज वहाँ प्राची सरस्वतीका नाम सुनकर उसमें स्नान करनेकी इच्छासे गये। तीर्थोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीके तटपर बहुत-से द्विज निवास करते थे। नाना प्रकारके वृक्ष उस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह तीर्थ सभी प्राणियोंको मनोरम जान पड़ता था। अनेकों ऋषि-मुनि उसका सेवन करते थे। उन ऋषियोंमेंसे कोई वायु पीकर रहनेवाले थे और कोई जल पीकर। कुछ लोग फलाहारी थे और कुछ केवल पते चबाकर रहनेवाले थे।

सरस्वतीके तटपर महर्षियोंके स्वाध्यायका शब्द गौञ्जता रहता था। मृगोंके सैकड़ों झुंड वहाँ विचरा करते थे। अहिंसक तथा धर्मपरायण महात्माओंसे उस तीर्थकी अधिक शोभा हो रही थी। पुष्कर तीर्थमें सरस्वती नदी

सुप्रभा, काञ्चना, प्राची, नन्दा और विशाला नामसे प्रसिद्ध पाँच धाराओंमें प्रवाहित होती है। भूतलपर वर्तमान ब्रह्माजीकी सभामें—उनके विस्तृत यज्ञमण्डपमें जब द्विजातियोंका शुभागमन हो गया, देवतालोग पुण्याहवाचन तथा नाना प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए जब यज्ञ-कार्यके सम्पादनमें लग गये और पितामह ब्रह्माजी यज्ञकी दीक्षा ले चुके, उस समय सम्पूर्ण भोगोंकी समृद्धिसे युक्त यज्ञके द्वारा भगवान्‌का यज्ञ आरम्भ हुआ। राजेन्द्र! उस यज्ञमें द्विजातियोंके पास उनकी मनचाही वस्तुएँ अपने-आप उपस्थित हो जाती थीं। धर्म और अर्थके साधनमें प्रवीण पुरुष भी स्मरण करते ही वहाँ आ जाते थे। देव, गन्धर्व गान करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। दिव्य बाजे बज उठे। उस यज्ञकी समृद्धिसे देवता भी सन्तुष्ट हो गये। मनुष्योंको तो वहाँका वैभव देखकर बड़ा ही विस्मय हुआ। पुष्कर तीर्थमें जब इस प्रकार ब्रह्माजीका यज्ञ होने लगा, उस समय ऋषियोंने सन्तुष्ट होकर सरस्वतीका सुप्रभा नामसे आवाहन किया। पितामहका सम्मान करती हुई वेगशालिनी सरस्वती नदीको उपस्थित देखकर मुनियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती ब्रह्माजीकी सेवा तथा मनीषी मुनियोंकी प्रसन्नताके लिये ही पुष्कर तीर्थमें प्रकट हुई थी। जो मनुष्य सरस्वतीके उत्तर-तटपर अपने शरीरका परित्याग करता है तथा प्राची सरस्वतीके तटपर जप करता है, वह पुनः जन्म-मृत्युको नहीं प्राप्त होता। सरस्वतीके जलमें डुबकी लगानेवालेको अश्रमेध यज्ञका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो वहाँ नियम और उपवासके द्वारा अपने शरीरको सुखाता है, केवल जल या वायु पीकर अथवा पते चबाकर तपस्या करता है, वेदीपर सोता है तथा यम और नियमोंका पृथक्-पृथक् पालन करता है, वह शुद्ध हो ब्रह्माजीके परम पदको प्राप्त होता है। जिन्होंने सरस्वती तीर्थमें तिलभर भी सुवर्णका दान किया है, उनका वह दान मेरुपर्वतके दानके समान फल देनेवाला है—यह बात पूर्वकालमें स्वयं प्रजापति ब्रह्माजीने कही थी। जो मनुष्य उस तीर्थमें श्राद्ध करेंगे, वे अपने कुलकी इक्कीस

पीढ़ियोंके साथ स्वर्गलोकमें जायेंगे। वह तीर्थ पितरोंको बहुत ही प्रिय है, वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे उन्हें पूर्ण तृप्ति हो जाती है। वे पुष्करतीर्थके द्वारा उद्धार पाकर ब्रह्मलोकमें पधारते हैं। उन्हें फिर अन्न—भोगोंकी इच्छा नहीं होती, वे मोक्षमार्गमें चले जाते हैं। अब मैं सरस्वती नदी जिस प्रकार पूर्ववाहिनी हुई, वह प्रसङ्ग बतलाता हूँ: सुनो।

पहलेकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवताओंकी ओरसे भगवान् श्रीविष्णुने सरस्वतीसे कहा—‘देवि ! तुम पश्चिम-समुद्रके तटपर जाओ और इस बड़वानलको ले जाकर समुद्रमें डाल दो। ऐसा करनेसे समस्त देवताओंका भय दूर हो जायगा। तुम माताकी भाँति देवताओंको अभय-दान दो।’ सबको उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुकी ओरसे यह आदेश मिलनेपर देवी सरस्वतीने कहा—‘भगवन् ! मैं स्वाधीन नहीं हूँ: आप इस कार्यके लिये मेरे पिता ब्रह्माजीसे अनुरोध कीजिये। पिताजीकी आज्ञाके बिना मैं एक पग भी कहीं नहीं जा सकती।’ सरस्वतीका अधिप्राय जानकर देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा—‘पितामह ! आपकी कुमारी कन्या सरस्वती बड़ी साध्वी है—उसमें किसी प्रकारका दोष नहीं देखा गया है; अतः उसे छोड़कर दूसरा कोई नहीं है, जो बड़वानलको ले जा सके।

पुलस्त्यजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजीने सरस्वतीको बुलाया और उसे गोदमें लेकर उसका मस्तक सूँघा। फिर बड़े स्नेहके साथ कहा—‘बेटी ! तुम मेरी और इन समस्त देवताओंकी रक्षा करो। देवताओंके प्रभावसे तुम्हें इस कार्यके करनेपर बड़ा सम्मान प्राप्त होगा। इस बड़वानलको ले जाकर खारे पानीके समुद्रमें डाल दो।’ पिताके वियोगके कारण बालिकाके नेत्रोंमें आँसू छलछला आये। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—‘अच्छा, जाती हूँ।’ उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा उसके पिताने भी कहा—‘भय न करो।’ इससे वह भय छोड़कर प्रसन्न चित्तसे जानेको तैयार हुई। उसकी यात्राके समय शङ्ख

और नगरोंकी ध्वनि तथा मङ्गलघोष होने लगा, जिसकी आवाजसे सारा जगत् गूँज उठा। सरस्वती अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाश फैलाती हुई चली। उस समय गङ्गाजी उसके पीछे हो लीं। तब सरस्वतीने कहा—‘सखी ! तुम कहाँ आती हो ? मैं फिर तुमसे मिलूँगी।’ सरस्वतीके ऐसा कहनेपर गङ्गाने मधुर वाणीमें कहा—‘शुभे ! अब तो तुम जब पूर्वदिशामें आओगी तभी मुझे देख सकोगी। देवताओंसहित तुम्हारा दर्शन तभी मेरे लिये सुलभ हो सकेगा।’ यह सुनकर सरस्वतीने कहा—‘शुचिस्मिते ! तब तुम भी उत्तराभिमुखी होकर शोकका परित्याग कर देना।’ गङ्गा बोलीं—‘सखी ! मैं उत्तराभिमुखी होनेपर अधिक पवित्र मानी जाऊँगी और तुम पूर्वाभिमुखी होनेपर। उत्तरवाहिनी गङ्गा और पूर्ववाहिनी सरस्वतीमें जो मनुष्य श्राद्ध और दान करेंगे, वे तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर मोक्षमार्गका आश्रय लेंगे—इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।’

इसपर वह सरस्वती नदीरूपमें परिणत हो गयी। देवताओंके देखते-देखते एक पाकरके वृक्षकी जड़से प्रकट हुई। वह वृक्ष भगवान् विष्णुका स्वरूप है। सम्पूर्ण देवताओंने उसकी वन्दना की है। उसकी अनेकों शाखाएँ सब ओर फैली हुई हैं। वह दूसरे ब्रह्माजीकी भाँति शोभा पाता है। यद्यपि उस वृक्षमें एक भी फूल नहीं है, तो भी वह डालियोंपर बैठे हुए शुक आदि पक्षियोंके कारण फूलोंसे लदा-सा जान पड़ता है। सरस्वतीने उस पाकरके समीप स्थित होकर देवाधिदेव विष्णुसे कहा—‘भगवन् ! मुझे बड़वानि समर्पित कीजिये; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी।’ उसके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णु बोले—‘शुभे ! तुम्हें इस बड़वानलको पश्चिम-समुद्रकी ओर ले जाते समय जलनेका कोई भय नहीं होगा।’

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने बड़वानलको सोनेके घड़ेमें रखकर सरस्वतीको सौंप दिया। उसने उस घड़ेको अपने उदरमें रखकर पश्चिमकी ओर प्रस्थान किया। अदृश्य गतिसे चलती हुई

वह महानदी पुष्करमें पहुँची और ब्रह्माजीने जिन-जिन कुण्डोंमें हवन किया था, उन सबको जलसे आप्लावित करके प्रकट हुई। इस प्रकार पुष्कर क्षेत्रमें परम पवित्र सरस्वती नदीका प्रादुर्भाव हुआ। जगत्को जीवनदान देनेवाली वायुने भी उसका जल लेकर वहाँके सब तीर्थोंमें डाल दिया। उस पुण्यक्षेत्रमें पहुँचकर पुण्यसलिला सरस्वती मनुष्योंके पापोंका नाश करनेके लिये स्थित हो गयी। जो पुण्यात्मा मनुष्य पुष्कर तीर्थमें विद्यमान सरस्वतीका दर्शन करते हैं, वे नारकी जीवोंकी अधोगतिका अनुभव नहीं करते। जो मनुष्य उसमें भक्ति-भावके साथ स्नान करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें पहुँचकर ब्रह्माजीके साथ आनन्दका अनुभव करते हैं। जो मनुष्य ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करता है, वह उन सबका नरकसे उद्धार कर देता है तथा स्वयं उसका भी चित्त शुद्ध हो जाता है। ब्रह्माजीके क्षेत्रमें पुण्यसलिला सरस्वतीको पाकर मनुष्य दूसरे किस तीर्थकी कामना करे—उससे बढ़कर दूसरा तीर्थ है ही कौन? सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब-का-सब ज्येष्ठ पुष्करमें एक बार दुबकी लगानेसे मिल जाता है। अधिक क्या कहा जाय—जिसने पुष्कर क्षेत्रका निवास, ज्येष्ठ कुण्डका जल तथा उस तीर्थमें मृत्यु—ये तीन बातें प्राप्त कर लीं, उसने परमगति पा ली। जो मनुष्य उत्तम काल, उत्तम क्षेत्र तथा उत्तम तीर्थमें स्नान और होम करके ब्राह्मणको दान देता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है। कार्तिक और वैशाखके शुक्ल पक्षमें तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय स्नान करनेयोग्य कुरुजाङ्गलदेशमें जितने क्षेत्र और तीर्थ मुनीश्वरोद्धारा बताये गये हैं, उन सबमें यह पुष्कर तीर्थ अधिक पवित्र है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है।

जो पुरुष कार्तिककी पूर्णिमाको मध्यम कुण्ड (मध्यम पुष्कर) -में स्नान करके ब्राह्मणको धन देता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार कनिष्ठ कुण्ड (अन्त्य पुष्कर) -में एकाग्रतापूर्वक स्नान करके जो ब्राह्मणको उत्तम अगहनीका चावल दान करता है, वह अभिलोकमें जाता है तथा वहाँ इक्कीस पीढ़ियोंके साथ

रहकर श्रेष्ठ फलका उपभोग करता है। इसलिये पुरुषको उचित है कि वह पूरा प्रयत्न करके पुष्कर तीर्थकी प्राप्तिके लिये—वहाँकी यात्रा करनेके लिये अपना विचार स्थिर करे। मति, सृति, प्रज्ञा, मेधा, बुद्धि और शुभ वाणी—ये छः सरस्वतीके पर्याय बतलाये गये हैं। जो पुष्करके बनमें, जहाँ प्राची सरस्वती है, जाकर उसके जलका दर्शन भर कर लेते हैं, उन्हें भी अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है तथा जो उसके भीतर गोता लगाकर स्नान करता है, वह तो ब्रह्माजीका अनुचर होता है। जो मनुष्य वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करते हैं, वे पितरोंको दुःखदायी नरकसे निकालकर स्वर्गमें पहुँचा देते हैं। जो सरस्वतीमें स्नान करके पितरोंको कुश और तिलसे युक्त जल दान करते हैं, उनके पितर हर्षित हो नाचने लगते हैं। यह पुष्कर तीर्थ सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि यह आदि तीर्थ है। इसीलिये इस पृथ्वीपर यह समस्त तीर्थोंमें विख्यात है। यह मानो धर्म और मोक्षकी क्रीडास्थली है, निधि है। सरस्वतीसे युक्त होनेके कारण इसकी महिमा और भी बढ़ गयी है। जो लोग पुष्कर तीर्थमें सरस्वती नदीका जल पीते हैं वे ब्रह्मा और महादेवजीके द्वारा प्रशंसित अक्षय लोकोंको प्राप्त होते हैं। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले मुनियोंने जहाँ-जहाँ सरस्वतीदेवीका सेवन किया है, उन सभी स्थानोंमें वे परम पवित्ररूपसे स्थित हैं; किन्तु पुष्करमें वे अन्य स्थलोंकी अपेक्षा विशेष पवित्र मानी गयी हैं। पुण्यमयी सरस्वती नदी संसारमें सुलभ है; किन्तु कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र और पुष्करक्षेत्रमें तो वह बड़े भाग्यसे प्राप्त होती है। अतः वहाँ इसका दर्शन दुर्लभ बताया गया है। सरस्वती तीर्थ इस भूतलके समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ—तीनों पुष्करोंमें यत्नपूर्वक स्नान करके उनकी प्रदक्षिणा करे। तत्पश्चात् पवित्र भावसे प्रतिदिन पितामहका दर्शन करे। ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अनुलोमक्रमसे अर्थात् क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ पुष्करमें

तथा विलोमक्रमसे अर्थात् कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ सुखका भागी होता है। पुष्करमें तिल-दानकी मुनिलोग पुष्करमें स्नान करना चाहिये। इसी प्रकार वह उक्त अधिक प्रशंसा करते हैं तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको तीनों पुष्करोंमेंसे किसी एकमें या सबमें नित्य स्नान वहाँ सदा ही स्नान करनेका विधान है।

करता रहे।

पुष्कर क्षेत्रमें तीन सुन्दर शिखर और तीन ही स्रोत हैं। वे सब-के-सब पुष्कर नामसे ही प्रसिद्ध हैं। उन्हें ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर कहते हैं। जो मन और इन्द्रियोंको वशमें करके सरस्वतीमें स्नान करता और ब्राह्मणको एक उत्तम गौ दान देता है, वह शास्त्रीय आज्ञाके पालनसे शुद्धचित्त होकर अक्षय लोकोंको पाता है। अधिक क्या कहें—जो रात्रिके समय भी स्नान करके वहाँ याचकको धन देता है, वह अनन्त

भीष्मी ! पुष्कर वनमें पहुँचकर सरस्वती नदीके प्रकट होनेकी बात बतायी गयी। अब वह पुनः अदृश्य होकर वहाँसे पश्चिम दिशाकी ओर चली। पुष्करसे थोड़ी ही दूर जानेपर एक खजूरका वन मिला, जो फल और फूलोंसे सुशोभित था; सभी ऋतुओंके पुष्प उस वनस्थलीकी शोभा बढ़ा रहे थे, वह स्थान मुनियोंके भी मनको मोहनेवाला था। वहाँ पहुँचकर नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीदेवी पुनः प्रकट हुई। वहाँ वे 'नन्दा'के नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुईं।



सरस्वतीके नन्दा नाम पड़नेका इतिहास और उसका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर देवब्रत भीष्मने पुलस्त्यजीसे पूछा—“ब्रह्मन् ! सरिताओंमें श्रेष्ठ नन्दा कोई दूसरी नदी तो नहीं है ? मेरे मनमें इस बातको लेकर बड़ा कौतूहल हो रहा है कि सरस्वतीका नाम 'नन्दा' कैसे पड़ गया। जिस प्रकार और जिस कारणसे वह 'नन्दा' नामसे प्रसिद्ध हुई, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।” भीष्मके इस प्रकार पूछनेपर पुलस्त्यजीने सरस्वतीका 'नन्दा' नाम क्यों पड़ा, इसका प्राचीन इतिहास सुनाना आरम्भ किया। वे बोले—भीष्म ! पहलेकी बात है, पृथ्वीपर प्रभञ्जन नामसे प्रसिद्ध एक महाबली राजा हो गये हैं। एक दिन वे उस वनमें मृगोंका शिकार खेल रहे थे। उन्होंने देखा, एक झाड़ीके भीतर मृगी खड़ी है। वह राजाके ठीक सामने पड़ती थी। प्रभञ्जनने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चलाकर मृगीको बींध डाला। आहत हरिणीने चकित होकर चारों ओर दृष्टिपात किया। फिर हाथमें धनुष-बाण धारण किये राजाको खड़ा देख वह बोली—‘ओ मूढ ! यह तूने क्या किया ? तुम्हारा यह कर्म पापपूर्ण है। मैं यहाँ नीचे मूँह किये खड़ी थी और निर्भय होकर अपने बच्चेको दूध पिला रही थी। इसी अवस्थामें तूने इस वनके भीतर मुझ निरपराध हरिणीको अपने वज्रके समान बाणका निशाना

बनाया है। तेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, इसलिये तू कच्चा मांस खानेवाले पशुकी योनिमें पड़ेगा। इस कण्टकाकीर्ण वनमें तू व्याघ्र हो जा ।’

मृगीका यह शाप सुनकर सामने खड़े हुए राजाकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे हाथ जोड़कर बोले—‘कल्याणी ! मैं नहीं जानता था कि तू बच्चेको दूध पिला रही है, अनजानमें मैंने तेरा वध किया है। अतः मुझपर प्रसन्न हो ! मैं व्याघ्रयोनिको त्यागकर पुनः मनुष्य-शरीरको कब प्राप्त करूँगा ? अपने इस शापके उद्धारकी अवधि तो बता दो ।’ राजाके ऐसा कहनेपर मृगी बोली—‘राजन् ! आजसे सौ वर्ष बीतनेपर यहाँ नन्दा नामकी एक गौ आयेगी। उसके साथ तुम्हारा वार्तालाप होनेपर इस शापका अन्त हो जायगा ।’

पुलस्त्यजी कहते हैं—मृगीके कथनानुसार राजा प्रभञ्जन व्याघ्र हो गये। उस व्याघ्रकी आकृति बड़ी ही घोर और भयानक थी। वह उस वनमें कालके वशीभूत हुए मृगों, अन्य चौपायों तथा मनुष्योंको भी मार-मारकर खाने और रहने लगा। वह अपनी निन्दा करते हुए कहता था, ‘हाय ! अब मैं पुनः कब मनुष्य-शरीर धारण करूँगा ? अबसे नीच योनिमें डालनेवाला ऐसा निन्दनीय कर्म—महान् पाप नहीं करूँगा। अब इस योनिमें मेरे

द्वारा पुण्य नहीं हो सकता। एकमात्र हिंसा ही मेरी जीवन-वृत्ति है, इसके द्वारा तो सदा दुःख ही प्राप्त होता है। किस प्रकार मृगीकी कही हुई बात सत्य हो सकती है ?'

जब व्याघ्रको उस वनमें रहते सौ वर्ष हो गये, तब एक दिन वहाँ गौओंका एक बहुत बड़ा झुंड उपस्थित हुआ। वहाँ धास और जलकी विशेष सुविधा थी, वही गौओंके आनेमें कारण हुई। आते ही गौओंके विश्रामके लिये बाड़ लगा दी गयी। खालोंके रहनेके लिये भी साधारण घर और स्थानकी व्यवस्था की गयी। गोचरभूमि तो वहाँ थी ही। सबका पड़ाव पड़ गया। वनके पासका स्थान गौओंके रँभानेकी भारी आवाजसे गूँजने लगा। मतवाले गोप चारों ओरसे उस गो-समुदायकी रक्षा करते थे।

गौओंके झुंडमें एक बहुत ही हष्ट-पुष्ट तथा सन्तुष्ट रहनेवाली गाय थी, उसका नाम था नन्दा। वही उस झुंडमें प्रधान थी तथा सबके आगे निर्भय होकर चला करती थी। एक दिन वह अपने झुंडसे बिछुड़ गयी और चरते-चरते पूर्वोक्त व्याघ्रके सामने जा पहुँची। व्याघ्र उसे



देखते ही 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ उसकी ओर दौड़ा और निकट आकर बोला—'आज विधाताने तुझे

मेरा ग्रास नियत किया है, क्योंकि तू स्वयं यहाँ आकर उपस्थित हुई है।' व्याघ्रका यह रोंगटे खड़े कर देनेवाला निष्ठुर वचन सुनकर उस गायको चन्द्रमाके समान कान्तिवाले अपने सुन्दर बछड़ेकी याद आने लगी। उसका गला भर आया—वह गद्गद स्वरसे पुत्रके लिये हङ्कार करने लगी। उस गौको अत्यन्त दुखी होकर क्रन्दन करते देख व्याघ्र बोला—'अरी गाय ! संसारमें सब लोग अपने कर्मोंका ही फल भोगते हैं। तू स्वयं मेरे पास आ पहुँची है, इससे जान पड़ता है तेरी मृत्यु आज ही नियत है। फिर व्यर्थ शोक क्यों करती है ? अच्छा, यह तो बता—तू रोयी किसलिये ?'

व्याघ्रका प्रश्न सुनकर नन्दाने कहा—'व्याघ्र ! तुम्हें नमस्कार है, मेरा सारा अपराध क्षमा करो। मैं जानती हूँ तुम्हारे पास आये हुए प्राणीकी रक्षा असम्भव है; अतः मैं अपने जीवनके लिये शोक नहीं करती। मृत्यु तो मेरी एक-न-एक दिन होगी ही [फिर उसके लिये क्या चिन्ता]। किन्तु मृगराज ! अभी नयी अवस्थामें मैंने एक बछड़ेको जन्म दिया है। पहली बियानका बच्चा होनेके कारण वह मुझे बहुत ही प्रिय है। मेरा बच्चा अभी दूध पीकर ही जीवन चलाता है। धासको तो वह सूँघता भी नहीं। इस समय वह गोष्ठमें बँधा है और भूखसे पीड़ित होकर मेरी राह देख रहा है। उसीके लिये मुझे बारम्बार शोक हो रहा है। मेरे न रहनेपर मेरा बच्चा कैसे जीवन धारण करेगा ? मैं पुत्र-स्नेहके वशीभूत हो रही हूँ और उसे दूध पिलाना चाहती हूँ। [मुझे थोड़ी देरके लिये जाने दो।] बछड़ेको पिलाकर प्यारसे उसका मस्तक चाटूँगी और उसे हिताहितकी जानकारीके लिये कुछ उपदेश करूँगी; फिर अपनी सखियोंकी देख-रेखमें उसे सौंपकर तुम्हारे पास लैट आऊँगी। उसके बाद तुम इच्छानुसार मुझे खा जाना।'

नन्दाकी बात सुनकर व्याघ्रने कहा—'अरी ! अब तुझे पुत्रसे क्या काम है ?' नन्दा बोली—'मृगेन्द्र ! मैं पहले-पहल बछड़ा व्यायी हूँ [अतः उसके प्रति मेरी बड़ी ममता है, मुझे जाने दो]। सखियोंको, नन्हे बच्चेको, रक्षा करनेवाले खालों और गोपियोंको तथा विशेषतः

अपनी जन्मदायिनी माताको देखकर उन सबसे विदा लेकर आ जाऊँगी—मैं शपथपूर्वक यह बात कहती हूँ। यदि तुम्हें विश्वास हो, तो मुझे छोड़ दो। यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ तो मुझे वही पाप लगे, जो ब्राह्मण तथा माता-पिताका वध करनेसे होता है। व्याधों, म्लेच्छों और जहर देनेवालोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। जो गोशालामें विष्णु डालते हैं, सोते हुए प्राणीको मारते हैं तथा जो एक बार अपनी कन्याका दान करके फिर उसे दूसरेको देना चाहते हैं, उन्हें जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। जो अयोग्य बैलोंसे भारी बोझ उठवाता है, उसको लंगनेवाला पाप मुझे भी लगे। जो कथा होते समय विष्णु डालता है और जिसके घरपर आया हुआ मित्र निराश लौट जाता है, उसको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे, यदि मैं पुनः लौटकर 'न आऊँ। इन भयंकर पातकोंके भयसे मैं अवश्य आऊँगी।'

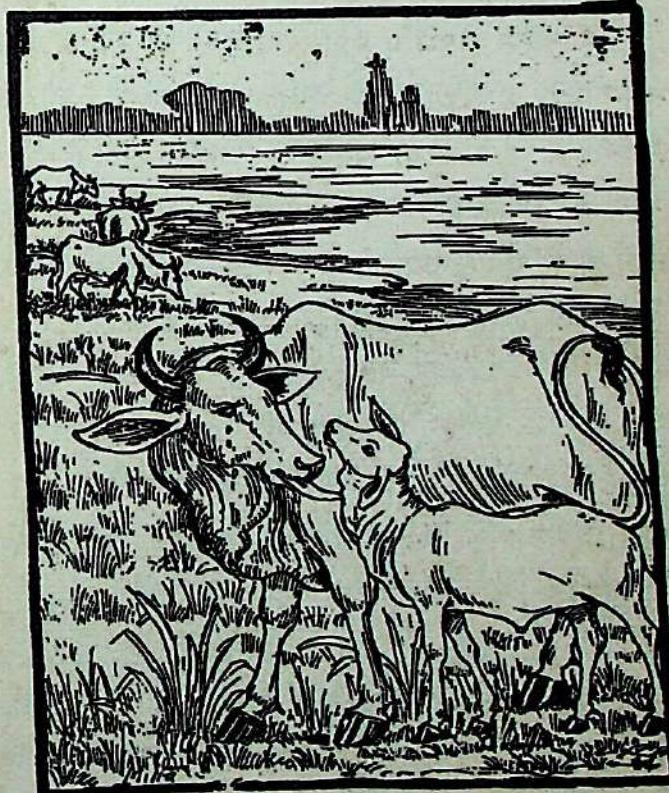
नन्दाकी ये शपथें सुनकर व्याघ्रको उसपर विश्वास हो गया। वह बोला—“गाय ! तुम्हारी इन शपथोंसे मुझे विश्वास हो गया है। पर कुछ लोग तुमसे यह भी कहेंगे कि स्त्रीके साथ हास-परिहासमें, विवाहमें, गौको संकटसे बचानेमें तथा प्राण-संकट उपस्थित होनेपर जो शपथ की जाती है, उसकी उपेक्षासे पाप नहीं लगता।' किन्तु तुम इन बातोंपर विश्वास न करना। इस संसारमें कितने ही ऐसे नास्तिक हैं, जो मूर्ख होते हुए भी अपनेको पण्डित समझते हैं; वे तुम्हारी बुद्धिको क्षणभरमें भ्रममें डाल देंगे। जिनके चित्तपर अज्ञानका परदा पड़ा रहता है, वे क्षुद्र मनुष्य कुतर्कपूर्ण युक्तियों और दृष्टान्तोंसे दूसरोंको मोहमें डाल देते हैं। इसलिये तुम्हारी बुद्धिमें यह बात नहीं आनी चाहिये कि मैंने शपथोंद्वारा व्याघ्रको ठग लिया। तुमने ही मुझे धर्मका सारा मार्ग दिखाया है; अतः इस समय तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो।”

नन्दा बोली—साथो ! तुम्हारा कथन ठीक है, तुम्हें कौन ठग सकता है। जो दूसरोंको ठगना चाहता है, वह तो अपने-आपको ही ठगता है।

व्याघ्रने कहा—गाय ! अब तुम जाओ। पुत्रवत्सले ! अपने पुत्रको देखो, दूध पिलाओ, उसका

मस्तक चाटो तथा माता, भाई, सखी, स्वजन एवं बन्धु-बास्थवोंका दर्शन करके सत्यको आगे रखकर शीघ्र ही यहाँ लौट आओ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—वह पुत्रवत्सला धेनु बड़ी सत्यवादिनी थी। पूर्वोक्त प्रकारसे शपथ करके जब वह व्याघ्रकी आज्ञा ले चुकी, तब गोष्ठकी ओर चली। उसके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वह अत्यन्त दीन भावसे काँप रही थी। उसके हृदयमें बड़ा दुःख था। वह शोकके समुद्रमें ढूबकर बारम्बार डँकराती थी। नदीके किनारे गोष्ठपर पहुँचकर उसने सुना, बछड़ा पुकार रहा है। आवाज कानमें पड़ते ही वह उसकी ओर दौड़ी और निकट पहुँचकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगी। माताको निकट पाकर बछड़ेने शङ्कित होकर पूछा—‘माँ ! [आज क्या



हो गया है ?] मैं तुम्हें प्रसन्न नहीं देखता, तुम्हारे हृदयमें शान्ति नहीं दिखायी देती। तुम्हारी दृष्टिमें भी व्यग्रता है, आज तुम अत्यन्त डरी हुई दीख पड़ती हो।'

नन्दा बोली—बेटा ! स्तनपान करो, यह हमलोगोंकी अन्तिम झेट है; अबसे तुम्हें माताका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। आज एक दिन मेरा दूध पीकर कल सबोरेसे किसका पियोगे ? वत्स ! मुझे अभी लौट जाना

है, मैं शपथ करके यहाँ आयी हूँ। भूखसे पीड़ित बाघको मुझे अपना जीवन अर्पण करना है।

बछड़ा बोला—माँ ! तुम जहाँ जाना चाहती हो; वहाँ मैं भी चलूँगा। तुम्हारे साथ मेरा भी मर जाना ही अच्छा है। तुम न रहोगी तो मैं अकेले भी तो मर ही जाऊँगा, [फिर साथ ही क्यों न मरूँ ?] यदि बाघ तुम्हारे साथ मुझे भी मार डालेगा तो निश्चय ही मुझको वह उत्तम गति मिलेगी, जो मातृभक्त पुत्रोंको मिला करती है। अतः मैं तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगा। मातासे बिछुड़े हुए बालकके जीवनका क्या प्रयोजन है ? केवल दूध पीकर रहनेवाले बच्चोंके लिये माताके समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है। माताके समान रक्षक, माताके समान आश्रय, माताके समान स्नेह, माताके समान सुख तथा माताके समान देवता इहलोक और परलोकमें भी नहीं है। यह ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ परम धर्म है। जो पुत्र इसका पालन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।*

नन्दाने कहा—बेटा ! मेरी ही मृत्यु नियत है, तुम वहाँ न आना। दूसरेकी मृत्युके साथ अन्य जीवोंकी मृत्यु नहीं होती [जिसकी मृत्यु नियत है, उसीकी होती है]। तुम्हारे लिये माताका यह उत्तम एवं अन्तिम सन्देश है; मेरे वचनोंका पालन करते हुए यहाँ रहो, यही मेरी सबसे बड़ी शुश्रूषा है। जलके समीप अथवा वनमें विचरते हुए कभी प्रमाद न करना; प्रमादसे समस्त प्राणी नष्ट हो जाते हैं। लोभवश कभी ऐसी घासको चरनेके लिये न जाना,

जो किसी दुर्गम स्थानमें उगी हो; क्योंकि लोभसे इहलोक और परलोकमें भी सबका विनाश हो जाता है। लोभसे मोहित होकर लोग समुद्रमें, घोर वनमें तथा दुर्गम स्थानोंमें भी प्रवेश कर जाते हैं। लोभके कारण विद्वान् पुरुष भी भयंकर पाप कर बैठता है। लोभ, प्रमाद तथा हर एकके प्रति विश्वास कर लेना—इन तीन कारणोंसे जगत्का नाश होता है; अतः इन तीनों दोषोंका परित्याग करना चाहिये। बेटा ! सम्पूर्ण शिकारी जीवोंसे तथा म्लेच्छ और चोर आदिके द्वारा संकट प्राप्त होनेपर सदा प्रयत्नपूर्वक अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये। पापयोनिवाले पशु-पक्षी अपने साथ एक स्थानपर निवास करते हों, तो भी उनके विपरीत चित्तका सहसा पता नहीं लगता। नखवाले जीवोंका, नदियोंका, सींगवाले पशुओंका, शास्त्र धारण करनेवालोंका, खियोंका तथा दूतोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जिसपर पहले कभी विश्वास नहीं किया गया हो, ऐसे पुरुषपर तो विश्वास करे ही नहीं, जिसपर विश्वास जम गया हो, उसपर भी अत्यन्त विश्वास न करे, क्योंकि [अविश्वसनीयपर] विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह विश्वास करनेवालेका समूल नाश कर डालता है। औरेंकी तो बात ही क्या है, अपने शरीरका भी विश्वास नहीं करना चाहिये। भीरुस्वभाववाले बालकका भी विश्वास न करें; क्योंकि बालक डराने-धमकानेपर प्रमादवश गुप्त बात भी दूसरोंको बता सकते हैं।† सर्वत्र और सदा सूँघते हुए

* नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः। नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम्॥

नास्ति मातृसमो देव इहलोके परत्र च।

एन वै परमं धर्मं प्रजापतिविनिर्मितम्। ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमां गतिम्॥

(१८। ३५३-५४)

† समुद्रमट्टी दुर्गं विशन्ते लोभोहिताः। लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत्॥

लोभात्रमादद्विश्रम्भात्रिविधैः क्षीयते जगत्। तस्माल्लोभं न कुर्वते न प्रमादं न विश्वसेत्॥

आत्मा हि सततं पुत्र रक्षणीयः प्रयत्नतः। सर्वेभ्यः शापदेश्यश्च म्लेच्छवैरादिसङ्कटे॥

तिरश्चां पापयोनीनामेकत्र वसतामपि। विपरीतानि विज्ञायन्ते न पुत्रक॥

नखिनां च नदीनां च शृङ्गिणां शास्त्रधारिणाम्। विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्यमुत्पन्नं मूलादपि निकृत्तति॥

न विश्वसेत् स्वदेहेऽपि बालेऽप्याभीतचेतसि। वक्ष्यन्ति गृहमत्यर्थं सुप्रमत्ते प्रमादतः॥

(१८। ३५९—६५)

ही चलना चाहिये; क्योंकि गन्धसे ही गौएँ भली-बुरी वस्तुकी परख कर पाती हैं। भयंकर वनमें कभी अकेला न रहे। सदा धर्मका ही चिन्तन करे। मेरी मृत्युसे तुम्हें घबराना नहीं चाहिये; क्योंकि एक-न-एक दिन सबकी मृत्यु निश्चित है। जैसे कोई पथिक छायाका आश्रय लेकर बैठ जाता है और विश्राम करके फिर वहाँसे चल देता है, उसी प्रकार प्राणियोंका समागम होता है। * बेटा ! तुम शोक छोड़कर मेरे वचनोंका पालन करो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह कहकर नन्दा पुत्रका मस्तक सूँधकर उसे चाटने लगी और अत्यन्त शोकके वशीभूत हो डबडबायी हुई आँखोंसे बारम्बार लम्बी साँस लेने लगी। तदनन्तर बारम्बार पुत्रको निहारकर वह अपनी माता, सखियों तथा गोपियोंके पास जाकर बोली—‘माताजी ! मैं अपने झुंडके आगे चरती हुई चली जा रही थी। इतनेमें ही एक व्याघ्र मेरे पास आ पहुँचा। मैंने अनेकों सौंगधें खाकर उसे लौट आनेका विश्वास दिलाया है; तब उसने मुझे छोड़ा है। मैं बेटेको देखने तथा आपलोगोंसे मिलनेके लिये चली आयी थी; अब फिर वहीं जा रही हूँ। माँ ! मैंने अपने दुष्ट स्वभावके कारण तुम्हारा जो-जो अपराध किया हो, वह सब क्षमा करना। अब अपने इस नातीको लड़का करके मानना। [सखियोंकी ओर मुड़कर] प्यारी सखियो ! मैंने जानकर या अनजानमें यदि तुमसे कोई अप्रिय बात कह दी हो अथवा और कोई अपराध किया हो तो उसके लिये तुम सब मुझे क्षमा करना। तुम सब सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त हो। तुममें सब कुछ देनेकी शक्ति है। मेरे बालकपर सदा क्षमाभाव रखना। मेरा बच्चा दीन, अनाथ और व्याकुल है; इसकी रक्षा करना। मैं तुम्हीं लोगोंको इसे सौंप रही हूँ; अपने पुत्रकी ही भाँति इसका भी पोषण करना। अच्छा, अब क्षमा माँगती हूँ। मैं सत्यको अपना करना।

चुकी हूँ, अतः व्याघ्रके पास जाऊँगी। सखियोंको मेरे लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये।’

नन्दाकी बात सुनकर उसकी माता और सखियोंको बड़ा दुःख हुआ। वे अत्यन्त आश्र्य और विषादमें पड़कर बोलीं—‘अहो ! यह बड़े आश्र्यकी बात है कि व्याघ्रके कहनेसे सत्यवादिनी नन्दा पुनः उस भयङ्कर स्थानमें प्रवेश करना चाहती है। शपथ और सत्यके आश्रयसे शत्रुको धोखा दे अपने ऊपर आये हुए महान् भयका यलपूर्वक नाश करना चाहिये। जिस उपायसे आत्मरक्षा हो सके, वही कर्तव्य है। नन्दे ! तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिये। अपने नन्हे-से शिशुको त्यागकर सत्यके लोभसे जो तू वहाँ जा रही है, यह तुम्हारे द्वारा अधर्म हो रहा है। इस विषयमें धर्मवादी ऋषियोंने पहले एक वचन कहा था, वह इस प्रकार है। प्राणसंकट उपस्थित होनेपर शपथोंके द्वारा आत्मरक्षा करनेमें पाप नहीं लगता। जहाँ असत्य बोलनेसे प्राणियोंकी प्राणरक्षा होती हो, वहाँ वह असत्य भी सत्य है और सत्य भी असत्य है।†

नन्दा बोली—बहिनो ! दूसरोंके प्राण बचानेके लिये मैं भी असत्य कह सकती हूँ। किन्तु अपने लिये—अपने जीवनकी रक्षाके लिये मैं किसी तरह झूठ नहीं बोल सकती। जीव अकेले ही गर्भमें आता है, अकेले ही मरता है, अकेले ही उसका पालन-पोषण होता है तथा अकेले ही वह सुख-दुःख भोगता है; अतः मैं सदा सत्य ही बोलूँगी। सत्यपर ही संसार टिका हुआ है, धर्मकी स्थिति भी सत्यमें ही है। सत्यके कारण ही समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता। राजा बलि भगवान् विष्णुको पृथ्वी देकर स्वयं पातालमें चले गये और छलसे बाँधे जानेपर भी सत्यपर ही डटे रहे। गिरिराज विश्व अपने सौ शिखरोंके साथ बढ़ते-बढ़ते

* यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामश्रित्य तिष्ठति । विश्रम्य च पुनर्गच्छेतद्बूतसमागमः ॥

(१८। ३६८)

+ उक्त्वानृतं भवेद् यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम् । अनृतं तत्र सत्यं स्यात् सत्यमप्यनृतं भवेत् ॥

(१८। ३९२)

बहुत ऊँचे हो गये थे [यहाँतक कि उन्होंने सूर्यका मार्ग भी रोक लिया था], किन्तु सत्यमें बँध जानेके कारण ही वे [महर्षि अगस्त्यके साथ किये गये] अपने नियमको नहीं तोड़ते। स्वर्ग, मोक्ष तथा धर्म—सब सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं; जो अपने वचनका लोप करता है, उसने मानो सबका लोप कर दिया। सत्य अगाध जलसे भरा हुआ तीर्थ है, जो उस शुद्ध सत्यमय तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है। एक हजार अश्वमेध यज्ञ और सत्यभाषण—ये दोनों यदि तराजूपर रखे जायें तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंसे सत्यका ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य ही उत्तम तप है, सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। सत्यभाषणमें किसी प्रकारका क्लेश नहीं है। सत्य ही साधुपुरुषोंकी परखके लिये कसौटी है। वही सत्युरुषोंकी वंश-परम्परागत सम्पत्ति है। सम्पूर्ण आश्रयोंमें सत्यका ही आश्रय श्रेष्ठ माना गया है। वह अत्यन्त कठिन होनेपर भी उसका पालन करना अपने हाथमें है। सत्य सम्पूर्ण जगत्के लिये आभूषणरूप है। जिस सत्यका उच्चारण करके म्लेच्छ भी स्वर्गमें पहुँच जाता है, उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है।*

सखियाँ बोलीं—नन्दे ! तुम सम्पूर्ण देवताओं और दैत्योंके द्वारा नमस्कार करनेयोग्य हो; क्योंकि तुम

परम सत्यका आश्रय लेकर अपने प्राणोंका भी त्याग कर ही हो, जिनका त्याग बड़ा ही कठिन है। कल्याणी ! इस विषयमें हमलोग क्या कह सकती हैं। तुम तो धर्मका बीड़ा उठा रही हो। इस सत्यके प्रभावसे त्रिभुवनमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। इस महान् त्यागसे हमलोग यही समझती हैं कि तुम्हारा अपने पुत्रके साथ वियोग नहीं होगा। जिस नारीका चित कल्याणमार्गमें लगा हुआ है, उसपर कभी आपत्तियाँ नहीं आतीं।

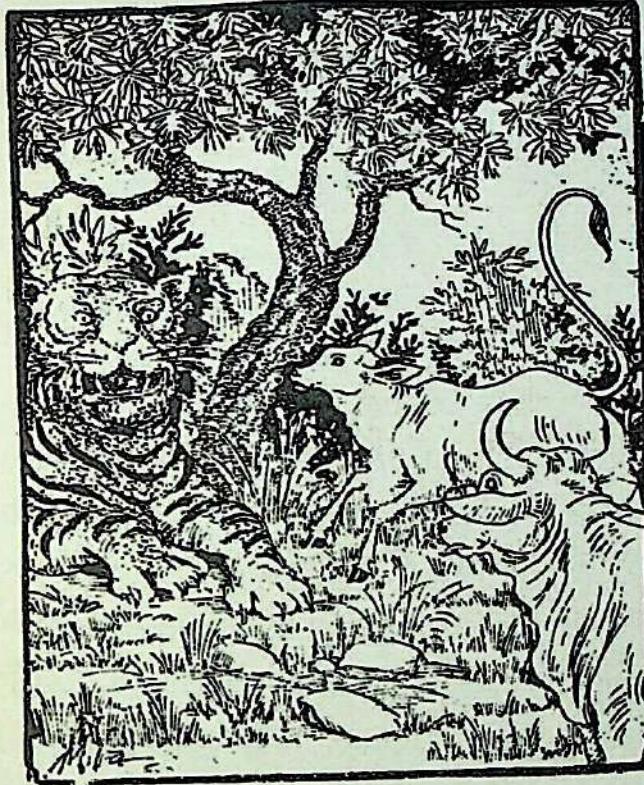
पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर गोपियोंसे मिलकर तथा समस्त गो-समुदायकी परिक्रमा करके वहाँके देवताओं और वृक्षोंसे विदा ले नन्दा वहाँसे चल पड़ी। उसने पृथ्वी, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, दसों दिव्याल, वनके वृक्ष, आकाशके नक्षत्र तथा ग्रह—इन सबको बारम्बार प्रणाम करके कहा—‘इस वनमें जो सिद्ध और वनदेवता निवास करते हैं, वे वनमें चरते हुए मेरे पुत्रकी रक्षा करें।’ इस प्रकार पुत्रके स्वेहवश बहुत-सी बातें कहकर नन्दा वहाँसे प्रस्थित हुई और उस स्थानपर पहुँची, जहाँ वह तीखी दाढ़ों और भयङ्कर आकृतिवाला मांसभक्षी बाघ मुँह बाये बैठा था। उसके पहुँचनेके साथ ही उसका बछड़ा भी अपनी पूँछ ऊपरको उठाये अत्यन्त वेगसे दौड़ता हुआ वहाँ आ गया और

* एकः संश्लिष्ट्यते गर्भे मरणे भरणे तथा । भुद्भृते चैकः सुखं दुःखमतः सत्यं वदाम्यहम् ॥
सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः । उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादां न विलङ्घति ॥
विष्णवे पृथिवीं दत्त्वा बलिः पातालमास्थितः । छद्मनापि बलिर्बद्धः सत्यवाक्येन तिष्ठति ॥
प्रवर्द्धमानः शैलेन्द्रः शतशूङ्कः समुच्छ्रुतः । सत्येन संस्थितो विष्यः प्रबन्धं नातिवर्तते ॥
स्वर्गो मोक्षस्तथा धर्मः सर्वे वाचि प्रतिष्ठिताः । यस्तां लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् ॥

x x x

अगाधसलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाहदे । स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥
सत्यं साधु तपः श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितं साधूनां निकषं सतां कुलधनं सर्वाश्रयाणां वरम् ।
स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जगतः साधारणं भूषणं यन्म्लेच्छोऽप्यभिधाय गच्छति दिवं तत्यज्यते वा कथम् ॥

अपनी माता और व्याघ्र दोनोंके आगे खड़ा हो गया। पुत्रको आया देख तथा सामने खड़े हुए मृत्युरूप बाघपर



दृष्टि डालकर उस गौने कहा—‘मृगराज ! मैं सत्यधर्मका पालन करती हुई तुम्हारे पास आ गयी हूँ; अब मेरे मांससे तुम इच्छानुसार अपनी तृप्ति करो।’

व्याघ्र बोला—गाय ! तुम बड़ी सत्यवादिनी निकली। कल्याणी ! तुम्हारा स्वागत है। सत्यका आश्रय लेनेवाले प्राणियोंका कभी कोई अमङ्गल नहीं होता। तुमने लौटनेके लिये जो पहले सत्यपूर्वक शपथ की थी, उसे सुनकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ था कि यह जाकर फिर कैसे लौटेगी। तुम्हारे सत्यकी परीक्षाके लिये ही मैंने पुनः तुम्हें भेज दिया था। अन्यथा मेरे पास आकर तुम जीती-जागती कैसे लौट सकती थी। मेरा वह कौतूहल पूरा हुआ। मैं तुम्हारे भीतर सत्य खोज रहा था, वह मुझे मिल गया। इस सत्यके प्रभावसे मैंने तुम्हें छोड़ दिया;

आजसे तुम मेरी बहिन हुई और यह तुम्हारा पुत्र मेरा भानजा हो गया। शुभे ! तुमने अपने आचरणसे मुझ महान् पापीको यह उपदेश दिया है कि सत्यपर ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। सत्यके ही आधारपर धर्म टिका हुआ है। कल्याणी ! तृण और लताओंसहित भूमिके वे प्रदेश धन्य हैं, जहाँ तुम निवास करती हो। जो तुम्हारा दूध पीते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, उन्होंने ही पुण्य किया है और उन्होंने ही जन्मका फल पाया है। देवताओंने मेरे सामने यह आदर्श रखा है; गौओंमें ऐसा सत्य है, यह देखकर अब मुझे अपने जीवनसे अरुचि हो गयी। अब मैं वह कर्म करूँगा, जिसके द्वारा पापसे छुटकारा पा जाऊँ। अबतक मैंने हजारों जीवोंको मारा और खाया है। मैं महान् पापी, दुराचारी, निर्दयी और हत्यारा हूँ। पता नहीं, ऐसा दारूण कर्म करके मुझे किन लोकोंमें जाना पड़ेगा। बहिन ! इस समय मुझे अपने पापोंसे शुद्ध होनेके लिये जैसी तपस्या करनी चाहिये, उसे संक्षेपमें बताओ; क्योंकि अब विस्तारपूर्वक सुननेका समय नहीं है।

गाय बोली—भाई बाघ ! विद्वान् पुरुष सत्ययुगमें तपकी प्रशंसा करते हैं और त्रेतामें ज्ञान तथा उसके सहायक कर्मकी। द्वापरमें यज्ञोंको ही उत्तम बतलाते हैं, किन्तु कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ माना गया है। सम्पूर्ण दानोंमें एक ही दान सर्वोत्तम है। वह है—सम्पूर्ण भूतोंको अभय-दान। इससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। जो समस्त चराचर प्राणियोंको अभय-दान देता है, वह सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है। अहिंसाके समान न कोई दान है, न कोई तपस्या। जैसे हाथीके पदचिह्नमें अन्य सभी प्राणियोंके पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसाके द्वारा सभी धर्म प्राप्त हो जाते हैं।* योग एक ऐसा वृक्ष

* तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥
सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम् ॥ अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् ॥
चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति ॥ स सर्वभयसंत्यक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
नास्त्यहिंसासमं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः ॥ यथा हस्तिपदे हन्त्यत्पदं सर्वं प्रलीयते ॥
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र प्रतीयन्ते हृहिंसया ।

है, जिसकी छाया तीनों तापोंका विनाश करनेवाली है। धर्म और ज्ञान उस वृक्षके फूल हैं। स्वर्ग तथा मोक्ष उसके फल हैं। जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीनों प्रकारके दुःखोंसे सन्तुष्ट हैं, वे इस योगवृक्षकी छायाका आश्रय लेते हैं। वहाँ जानेसे उन्हें उत्तम शान्ति प्राप्त होती है, जिससे फिर कभी दुःखोंके द्वारा वे बाधित नहीं होते। यही परम कल्याणका साधन है, जिसे मैंने संक्षेपसे बताया है। तुम्हें ये सभी बातें ज्ञात हैं, केवल मुझसे पूछ रहे हो।

व्याघ्रने कहा— पूर्वकालमें मैं एक राजा था; किन्तु एक मृगीके शापसे मुझे बाघका शरीर धारण करना पड़ा। तबसे निरन्तर प्राणियोंका वध करते रहनेके कारण मुझे सारी बातें भूल गयी थीं। इस समय तुम्हारे सम्पर्क और उपदेशसे फिर उनका स्मरण हो आया है, तुम भी अपने इस सत्यके प्रभावसे उत्तम गतिको प्राप्त होगी। अब मैं तुमसे एक प्रश्न और पूछता हूँ। मेरे सौभाग्यसे तुमने आकर मुझे धर्मका स्वरूप बताया, जो सत्पुरुषोंके मार्गमें प्रतिष्ठित है। कल्याणी ! तुम्हारा नाम क्या है ?

नन्दा बोली— मेरे यूथके स्वामीका नाम 'नन्द' है; उन्होंने ही मेरा नाम 'नन्दा' रख दिया है।



पुलस्त्यजी कहते हैं—नन्दाका नाम कानमें पड़ते ही राजा प्रभञ्जन शापसे मुक्त हो गये। उन्होंने पुनः वल और रूपसे सम्पन्न राजाका शरीर प्राप्त कर लिया। इसी समय सत्यभाषण करनेवाली यशस्विनी नन्दाका दर्शन करनेके लिये साक्षात् धर्म वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'नन्दे ! मैं धर्म हूँ, तुम्हारी सत्य वाणीसे आकृष्ण होकर यहाँ आया हूँ। तुम मुझसे कोई श्रेष्ठ वर माँग लो।' धर्मके ऐसा कहनेपर नन्दाने यह वर माँगा—'धर्मराज ! आपकी कृपासे मैं पुत्रसहित उत्तम पदको प्राप्त होऊँ तथा यह स्थान मुनियोंको धर्मप्रदान करनेवाला शुभ तीर्थ बन जाय। देवेश्वर ! यह सरस्वती नदी आजसे मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो—इसका नाम 'नन्दा' पड़ जाय। आपने वर देनेको कहा, इसलिये मैंने यही वर माँगा है।'

[**पुत्रसहित**] देवी नन्दा तत्काल ही सत्यवादियोंके उत्तम लोकमें चली गयी। राजा प्रभञ्जनने भी अपने पूर्वोपार्जित राज्यको पा लिया। नन्दा सरस्वतीके तटसे स्वर्गको गयी थी, [तथा उसने धर्मराजसे इस आशयका वरदान भी माँगा था।] इसलिये विद्वानोंने वहाँ 'सरस्वती'का नाम नन्दा रख दिया। जो मनुष्य वहाँ आते समय सरस्वतीके नामका उच्चारणमात्र कर लेता है, वह जीवनभर सुख पाता है और मृत्युके पश्चात् देवता होता है। स्नान और जलपान करनेसे सरस्वती नदी मनुष्योंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बन जाती है। अष्टमीके दिन जो लोग एकाग्रचित्त होकर सरस्वतीमें स्नान करते हैं, वे मृत्युके बाद स्वर्गमें पहुँचकर सुख भोगते हुए आनन्दित होते हैं। सरस्वती नदी सदा ही स्त्रियोंको सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। तृतीयाको यदि उसका सेवन किया जाय तो वह विशेष सौभाग्यदायिनी होती है। उस दिन उसके दर्शनसे भी मनुष्यको पाप-राशिसे छुटकारा मिल जाता है। जो पुरुष उसके जलका स्पर्श करते हैं, उन्हें भी मुनीश्वर समझना चाहिये। वहाँ चाँदी दान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है। ब्रह्माकी पुत्री यह सरस्वती नदी परम पावन और पुण्यसलिला है, यही नन्दा नामसे प्रसिद्ध है। फिर जब यह स्वच्छ जलसे युक्त हो दक्षिण दिशाकी ओर प्रवाहित होती है, तब विपुला या विशाला नाम

धारण करती है। वहाँसे कुछ ही दूर आगे जाकर यह पुनः पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गयी है। वहाँसे सरस्वतीकी धारा प्रकट देखी जाती है। उसके तटोंपर अत्यन्त मनोहर तीर्थ और देवमन्दिर हैं, जो मुनियों और

सिद्ध पुरुषोंद्वारा भलीभांति सेवित हैं। नन्दा तीर्थमें स्नान करके यदि मनुष्य सुवर्ण और पृथ्वी अदिका दान करे तो वह महान् अभ्युदयकारी तथा अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है।



पुष्करका माहात्म्य, अगस्त्याश्रम तथा महर्षि अगस्त्यके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि वेदवेता ब्राह्मण तीनों पुष्करोंकी यात्रा किस प्रकार करते हैं तथा उसके करनेसे मनुष्योंको क्या फल मिलता है?

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! अब एकाग्रचित्त होकर तीर्थ-सेवनके महान् फलका श्रवण करो। जिसके हाथ, पैर और मन संयममें रहते हैं तथा जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् होता है, वही तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त करता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है—किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त हो जाय—उसीसे सन्तुष्ट रहता है तथा जिसका अहङ्कार दूर हो गया है, ऐसे मनुष्यको ही तीर्थ-सेवनका पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र! जो स्वभावतः क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम ब्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, उसे तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त होता है।* यह ऋषियोंका परम गोपनीय सिद्धान्त है।

राजेन्द्र! पुष्कर तीर्थ करोड़ों ऋषियोंसे भरा है, उसकी लम्बाई ढाई योजन (दस कोस) और चौड़ाई आधा योजन (दो कोस) है। यहीं उस तीर्थका परिमाण है। वहाँ जानेमात्रसे मनुष्यको राजसूय और अश्वमेथ यज्ञका फल प्राप्त होता है, जहाँ अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदीने ज्येष्ठ पुष्करमें प्रवेश किया है, वहाँ चैत्र शुक्ल चतुर्दशीको ब्रह्मा आदि देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और

चारणोंका आगमन होता है, अतः उक्त तिथिको देवताओं और पितरोंके पूजनमें प्रवृत्त हो मनुष्यको वहाँ स्नान करना चाहिये। इससे वह अभ्युदय पदको प्राप्त होता है और अपने कुलका भी उद्घार करता है। वहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करनेसे उसका स्वरूप चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाता है तथा वह ब्रह्मलोक एवं उत्तम गतिको प्राप्त होता है। मनुष्यलोकमें देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह पुष्कर नामसे प्रसिद्ध तीर्थ त्रिभुवनमें विख्यात है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। पुष्करमें तीनों सन्ध्याओंके समय—प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकालमें दस हजार करोड़ (एक खरब) तीर्थ उपस्थित रहते हैं तथा आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुदण्ड, गङ्धर्व और अप्सराओंका भी प्रतिदिन आगमन होता है। वहाँ तपस्या करके कितने ही देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षि दिव्य योगसे सम्पन्न एवं महान् पुण्यशाली हो गये। जो मनसे भी पुष्कर तीर्थके सेवनकी इच्छा करता है, उस मनस्वीके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। महाराज ! उस तीर्थमें देवता और दानवोंके द्वारा सम्मानित भगवान् ब्रह्माजी सदा ही प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। वहाँ देवताओं और ऋषियोंने महान् पुण्यसे युक्त होकर इच्छानुसार सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। जो मनुष्य देवताओं और पितरोंके पूजनमें तत्पर हो वहाँ स्नान करता है, उसके पुण्यको मनोषी

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्रुते ॥

प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्रुते ॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढब्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्रुते ॥

पुरुष अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा दसगुना अधिक बतलाते हैं। पुष्करारण्यमें जाकर जो एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसके उस अन्नसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको पूर्ण तृप्तिपूर्वक भोजन करनेका फल होता है तथा उस पुण्यकर्मके प्रभावसे वह इहलोक और परलोकमें भी आनन्द मनाता है। [अन्न न हो तो] शाक, मूल अथवा फल—जिससे वह स्वयं जीवन-निर्वाह करता हो, वही—दोष-दृष्टिका परित्याग करके श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करे। उसीके दानसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—सभी इस तीर्थमें स्नान-दानादि पुण्यके अधिकारी हैं। ब्रह्माजीका पुष्कर नामक सरोवर परम पवित्र तीर्थ है। वह वानप्रस्थियों, सिद्धों तथा मुनियोंको भी पुण्य प्रदान करनेवाला है। परम पावन सरस्वती नदी पुष्करसे ही महासागरकी ओर गयी है। वहाँ महायोगी आदिदेव मधुसूदन सदा निवास करते हैं। वे आदिवराहके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते रहते हैं। विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको जो पुष्कर तीर्थकी यात्रा करता है, वह अक्षय फलका भागी होता है—ऐसा मैंने सुना है।

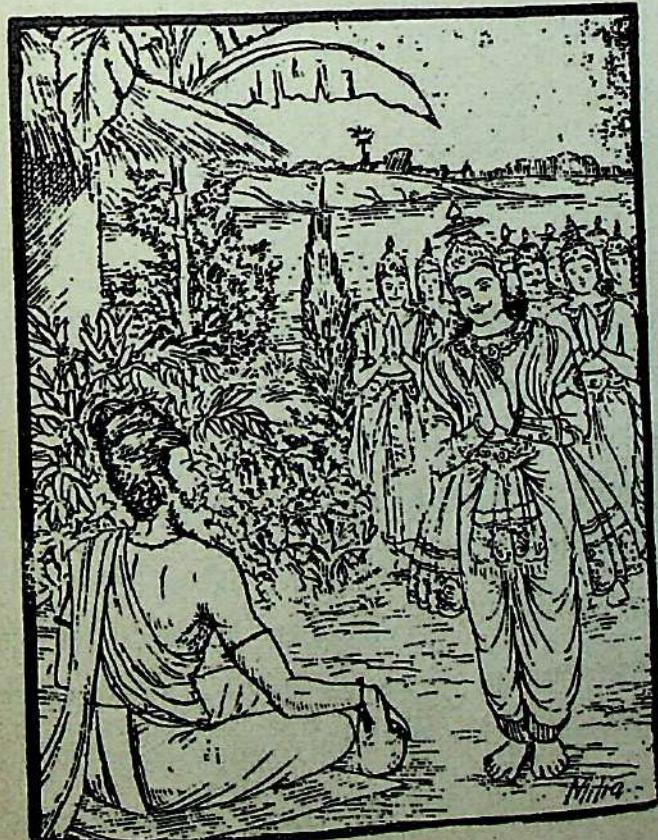
कुरुनन्दन ! जो सायंकाल और सबेरे हाथ जोड़कर तीनों पुष्करोंका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें आचमन करनेका फल प्राप्त होता है। स्त्री हो या पुरुष, पुष्करमें स्नान करनेमात्रसे उसके जन्मभरका सारा पाप नष्ट हो जाता है। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें पुष्कर ही आदि तीर्थ बताया गया है। जो पुष्करमें संयम और पवित्रताके साथ दस वर्षोंतक निवास करता हुआ ब्रह्माजीका दर्शन करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाता है। जो पूरे सौ वर्षोंतक अग्निहोत्र करता है और कार्तिककी एक ही पूर्णिमाको पुष्करमें

निवास करता है, उन दोनोंका फल एक-सा ही होता है। पुष्करमें निवास दुर्लभ है, पुष्करमें तपस्याका सुयोग मिलना कठिन है। पुष्करमें दान देनेका सौभाग्य भी मुश्किलसे प्राप्त होता है तथा वहाँकी यात्राका सुयोग भी दुर्लभ है। * वेदवेत्ता ब्राह्मण ज्येष्ठ पुष्करमें जाकर स्नान करनेसे मोक्षका भागी होता है और श्राद्धसे वह पितरोंको तार देता है। जो ब्राह्मण वहाँ जाकर नाममात्रके लिये भी सन्ध्योपासन करता है, उसे बारह वर्षोंतक सन्ध्योपासन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने स्वयं ही यह बात कही थी। जो अकेले भी कभी पुष्कर तीर्थमें चला जाय, उसको चाहिये कि ज्ञारीमें पुष्करका जल लेकर क्रमशः सन्ध्या-वन्दन कर ले; ऐसा करनेसे भी उसे बारह वर्षोंतक निरन्तर सन्ध्योपासन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जो पलीको पास बिठाकर दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके गायत्री मन्त्रका जप करते हुए वहाँ तर्पण करता है, उसके उस तर्पणद्वारा बारह वर्षोंतक पितरोंको पूर्ण तृप्ति बनी रहती है। फिर पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। इसीलिये विद्वान् पुरुष यह सोचकर स्त्रीके साथ विवाह करते हैं कि हम तीर्थमें जाकर श्रद्धापूर्वक पिण्डदान करेंगे। जो ऐसा करते हैं, उनके पुत्र, धन, धान्य और सन्तानका कभी उच्छेद नहीं होता—यह निःसन्दिग्ध बात है।

राजन् ! अब मैं तुमसे इस तीर्थके आश्रमोंका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। महर्षि अगस्त्यने इस तीर्थमें अपना आश्रम बनाया है, जो देवताओंके आश्रमकी समानता करता है। पूर्वकालमें यहाँ सप्तर्षियोंका भी आश्रम था। ब्रह्मर्षियों और मनुओंने भी यहाँ आश्रम बनाया था। यज्ञ-पर्वतके किनारे यहाँ नागोंकी रमणीय पुरी भी है। महाराज ! मैं महामना अगस्त्यजीके प्रभावका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। पहलेकी बात है—सत्ययुगमें कालकेय

* पुष्करे दुष्करे वासः पुष्करे दुष्करं तपः ॥ पुष्करे दुष्करं दानं गन्तुं चैव सुदुष्करम् ॥

नामसे प्रसिद्ध दानव रहते थे। उनका स्वभाव अत्यन्त कठोर था तथा वे युद्धके लिये सदा उन्मत्त रहते थे। एक समय वे सभी दानव नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो वृत्रासुरको बीचमें करके इन्द्र आदि देवताओंपर चारों ओरसे चढ़ आये। तब देवतालोग इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये। उन्हें हाथ जोड़कर खड़े देख ब्रह्माजीने कहा—“देवताओ! तुमलोग जो कार्य करना चाहते हो, वह सब मुझे मालूम है। मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे तुम वृत्रासुरका वध कर सकोगे। दधीचि नामके एक महर्षि है, उनकी बुद्धि बड़ी ही उदार है। तुम सब लोग एक साथ जाकर उनसे वर माँगो। वे धर्मात्मा हैं, अतः प्रसन्नचित्त होकर तुम्हारी माँग पूरी करेंगे। तुम उनसे यही कहना कि ‘आप त्रिभुवनका हित करनेके लिये अपनी हड्डियाँ हमें प्रदान करें।’ निश्चय ही वे अपना शरीर त्यागकर तुम्हें हड्डियाँ अर्पण कर देंगे। उनकी हड्डियोंसे तुमलोग अत्यन्त भयंकर एवं सुदृढ़ वज्र तैयार करो, जो दिव्य-शक्तिसे सम्पन्न उत्तम अस्त्र होगा। उससे बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा होगी और वह महान्-से-महान् शत्रुका विनाश करनेवाला होगा। उसी वज्रसे इन्द्र वृत्रासुरका वध करेंगे।”



पुलस्त्यजी कहते हैं—ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर समस्त देवता उनकी आज्ञा ले इन्द्रको आगे करके दधीचिके आश्रमपर गये। वह सरखती नदीके उस पार बना हुआ था। नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ उसे घेरे हुए थीं। वहाँ पहुँचकर देवताओंने सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि दधीचिका दर्शन किया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके ब्रह्माजीके कथनानुसार वरदान माँगा। तब दधीचिने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंको प्रणाम करके यह कार्य-साधक वचन कहा—‘अहो! आज इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता यहाँ किसलिये पधरे हैं? मैं देखता हूँ आप सब लोगोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है, आपलोग पीड़ित जान पड़ते हैं। जिस कारणसे आपके हृदयको कष्ट पहुँच रहा है, उसे शान्तिपूर्वक बताइये।’

देवता बोले—महर्षे! यदि आपकी हड्डियोंका शस्त्र बनाया जाय तो उससे देवताओंका दुःख दूर हो सकता है।

दधीचिने कहा—देवताओ! जिससे आपलोगोंका हित होगा, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा। आज आपलोगोंके लिये मैं अपने इस शरीरका भी त्याग करता हूँ।

ऐसा कहकर मनुष्योंमें श्रेष्ठ महर्षि दधीचिने सहसा अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। तब सम्पूर्ण देवताओंने आवश्यकताके अनुसार उनके शरीरसे हड्डियाँ निकाल लीं। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे विजय पानेके लिये विश्वकर्माके पास जाकर बोले—‘आप इन हड्डियोंसे वज्रका निर्माण कीजिये।’ देवताओंके वचन सुनकर विश्वकर्मने बड़े हर्षके साथ प्रयत्नपूर्वक उग्र शक्ति-सम्पन्न वज्रास्त्रका निर्माण किया और इन्द्रसे कहा—‘देवेश्वर! यह वज्र सब अस्त्र-शस्त्रोंमें श्रेष्ठ है, आप इसके द्वारा देवताओंके भयंकर शत्रु वृत्रासुरको भस्म कीजिये।’ उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने शुद्ध भावसे उस वज्रको ग्रहण किया।

तदनन्तर इन्द्र देवताओंसे सुरक्षित हो, वज्र हाथमें लिये, वृत्रासुरका सामना करनेके लिये गये, जो

पृथ्वी और आकाशको घेरकर खड़ा था। कालकेय नामके विशालकाय दानव हाथोंमें शश्व उठाये चारों ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। फिर तो दानवोंके साथ देवताओंका भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। दो घड़ीतक तो ऐसी मार-काट हुई, जो सम्पूर्ण लोकको महान् भयमें डालनेवाली थी। वीरोंकी भुजाओंसे चलायी हुई तलवारें जब शत्रुके शरीरपर पड़ती थीं, तब बड़े जोरका शब्द होता था। आकाशसे पृथ्वीपर गिरते हुए मस्तक ताढ़के फलोंके समान जान पड़ते थे। उनसे वहाँकी सारी भूमि पटी हुई दिखायी देती थी। उस समय सोनेके कवच पहने हुए कालकेय दानव दावानल्से जलते हुए वृक्षोंके समान प्रतीत होते थे। वे हाथोंमें परिधि लेकर देवताओंपर टूट पड़े। उन्होंने एक साथ मिलकर बड़े वेगसे धावा किया था। यद्यपि देवता भी एक साथ संगठित होकर ही युद्ध कर रहे थे, तो भी वे उन दानवोंके वेगको न सह सके। उनके पैर उखड़ गये, वे भयभीत होकर भाग खड़े हुए। देवताओंको डरकर भागते और वृत्रासुरको प्रबल होते देख हजार आँखोंवाले इन्द्रको बड़ी घबराहट हुई। इन्द्रकी ऐसी अवस्था देख सनातन भगवान् श्रीविष्णुने उनके भीतर अपने तेजका सञ्चार करके उनके बलको बढ़ाया। इन्द्रको श्रीविष्णुके तेजसे परिपूर्ण देख देवताओं तथा निर्मल अन्तःकरण-वाले ब्रह्मियोंने भी उनमें अपने-अपने तेजका सञ्चार किया। इस प्रकार भगवान् श्रीविष्णु, देवता तथा महाभाग महर्षियोंके तेजसे वृद्धिको प्राप्त होकर इन्द्र अत्यन्त बलवान् हो गये।

देवराज इन्द्रको सबल जान वृत्रासुरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उसकी विकट गर्जनासे पृथ्वी, दिशाएँ, अन्तरिक्ष, द्युलोक और आकाशमें सभी काँप उठे। वह भयंकर सिंहनाद सुनकर इन्द्रको बड़ा सन्ताप हुआ। उनके हृदयमें भय समा गया और उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ अपना महान् वज्रास्त्र उसके ऊपर छोड़ दिया। इन्द्रके वज्रका आघात पाकर वह महान् असुर निष्पाण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवता तुरंत आगे बढ़कर वृत्रासुरके वधसे सन्ताप हुए

शेष दैत्योंको मारने लगे। देवताओंकी मार पड़नेपर वे महान् असुर भयसे पीड़ित हो वायुके समान वेगसे भागकर अगाध समुद्रमें जा छिपे। वहाँ एकत्रित होकर सब-के-सब तीनों लोकोंका नाश करनेके लिये आपसमें सलाह करने लगे। उनमें जो विचारक थे, उन्होंने नाना प्रकारके उपाय बतलाये—तरह-तरहकी युक्तियाँ सुझायीं। अन्ततोगत्वा यह निश्चय हुआ कि 'तपस्यासे ही सम्पूर्ण लोक टिके हुए हैं, इसलिये उसीका क्षय करनेके लिये शीघ्रता की जाय। पृथ्वीपर जो कोई भी तपसी, धर्मज्ञ और विद्वान् हों, उनका तुरंत वध कर दिया जाय। उनके नष्ट हो जानेपर सम्पूर्ण जगत्का स्वयं ही नाश हो जायगा।

उन सबकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे संसारके विनाशका निश्चय करके वे बहुत प्रसन्न हुए। समुद्ररूप दुर्गका आश्रय लेकर उन्होंने त्रिभुवनका विनाश आरम्भ किया। वे रातमें कुपित होकर निकलते और पवित्र आश्रमों तथा मन्दिरोंमें जो भी मुनि मिलते, उन्हें पकड़कर खा जाते थे। उन दुरात्माओंने वसिष्ठके आश्रममें जाकर आठ हजार आठ ब्राह्मणोंका भक्षण कर लिया तथा उस वनमें और भी जितने तपसी थे, उन्हें भी मौतके घाट उतार दिया। महर्षि च्यवनके पवित्र आश्रमपर, जहाँ बहुत-से द्विज निवास करते थे, जाकर उन्होंने फल-मूलका आहार करनेवाले सौ मुनियोंको अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार रातमें वे मुनियोंका संहार करते और दिनमें समुद्रके भीतर घुस जाते थे। भरद्वाजके आश्रमपर जाकर उन दानवोंने वायु और जल पीकर संयम-नियमके साथ रहनेवाले बीस ब्रह्मचारियोंकी हत्या कर डाली। इस तरह बहुत दिनोंतक उन्होंने मुनियोंका भक्षण जारी रखा, किन्तु मनुष्योंको इन हत्यारोंका पता नहीं चला। उस समय कालकेयोंके भयसे पीड़ित होकर सारा जगत् [धर्म-कर्मकी ओरसे] निरुत्साह हो गया। स्वाध्याय बंद हो गया। यज्ञ और उत्सव समाप्त हो गये। मनुष्योंकी संख्या दिनोंदिन क्षीण होने लगी, वे भयभीत होकर आत्मरक्षाके लिये दसों दिशाओंमें दौड़ने लगे; कोई द्विज गुफाओंमें छिप गये,

दूसरोंने झरनोंकी शरण ली, कितनोंने भयसे व्याकुल होकर प्राण त्याग दिये। इस प्रकार यज्ञ और उत्सवोंसे रहित होकर जब सारा जगत् नष्ट होने लगा, तब इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता व्यथित होकर भगवान् श्रीनारायणकी शरणमें गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवता बोले—प्रभो ! आप ही हमारे जन्मदाता और रक्षक हैं। आप ही संसारका भरण-पोषण करने-वाले हैं। चर और अचर—सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि आपसे ही हुई है। कमलनयन ! पूर्वकालमें यह भूमि नष्ट होकर रसातलमें चली गयी थी। उस समय आपने ही वराहरूप धारण करके संसारके हितके लिये इसका समुद्रसे उद्धर किया था। पुरुषोत्तम ! आदिदैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा पराक्रमी था, तो भी आपने नरसिंहरूप धारण करके उसका वध कर डाला। इस प्रकार आपके बहुत-से ऐसे [अलौकिक] कर्म हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती। मधुसूदन ! हमलोग भयभीत हो रहे हैं, अब आप ही हमारी गति हैं; इसलिये देवदेवेश्वर ! हम आपसे लोककी रक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण लोकोंकी, देवताओंकी तथा इन्द्रकी महान् भयसे रक्षा कीजिये। आपकी ही कृपासे [अप्पज, स्वेदज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—] चार भागोंमें बँटी हुई सम्पूर्ण प्रजा जीवन धारण करती है। आपकी ही दयासे मनुष्य स्वस्थ होंगे और देवताओंकी हव्य-कव्योंसे तृप्ति होगी। इस प्रकार देव-मनुष्यादि सम्पूर्ण लोक एक-दूसरेके आश्रित हैं। आपके ही अनुग्रहसे इन सबका उद्गेग शान्त हो सकता है तथा आपके द्वारा ही इनकी पूर्णतया रक्षा होनी सम्भव है। भगवन् ! संसारके ऊपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है। पता नहीं, कौन रात्रिमें जा-जाकर ब्राह्मणोंका वध कर डालता है। ब्राह्मणोंका क्षय हो जानेपर समूची पृथ्वीका नाश हो जायगा। अतः महाबाहो ! जगत्पते ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे आपके द्वारा सुरक्षित होकर इन लोकोंका विनाश न हो।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—देवताओ ! मुझे प्रजाके विनाशका सारा कारण मालूम है। मैं तुम्हें भी

बताता हूँ निश्चिन्त होकर सुनो। कालकेय नामसे विख्यात जो दानवोंका समुदाय है, वह बड़ा ही निष्ठुर है। उन दानवोंने ही परस्पर मिलकर सम्पूर्ण जगत्को कष्ट पहुँचाना आरम्भ किया है। वे इन्द्रके द्वारा वृत्रासुरको मारा गया देख अपनी जान बचानेके लिये समुद्रमें घुस गये थे। नाना प्रकारके ग्राहोंसे भरे हुए भयङ्कर समुद्रमें रहकर वे जगत्का विनाश करनेके लिये रातमें मुनियोंको खा जाते हैं। जबतक वे समुद्रके भीतर छिपे रहेंगे, तबतक उनका नाश होना असम्भव है, इसलिये अब तुमलोग समुद्रको सुखानेका कोई उपाय सोचो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—भगवान् श्रीविष्णुके ये वचन सुनकर देवता ब्रह्माजीके पास आकर वहाँसे महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मित्रावरुणके पुत्र परम तेजस्वी महात्मा अगस्त्य ऋषिको देखा। अनेकों महर्षि उनकी सेवामें लगे थे। उनमें प्रमादका लेश भी नहीं था। वे तपस्याकी राशि जान पड़ते थे। ऋषिलोग उनके अलौकिक कर्मोंकी चर्चा करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे।

देवता बोले—महर्षे ! पूर्वकालमें जब राजा नेहुषके द्वारा लोकोंको कष्ट पहुँच रहा था, उस समय आपने संसारके हितके लिये उन्हें इन्द्र-पदसे श्रृष्ट किया और इस प्रकार लोकका काँटा दूर करके आप जगत्के आंश्रयदाता हुए। जिस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल सूर्यके ऊपर क्रोध करके बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया था; उस समय आपने ही उसे नतमस्तक किया; तबसे आजतक आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ वह पर्वत बढ़ता नहीं। जब सारा जगत् अन्धकारसे आच्छादित था और प्रजा मृत्युसे पीड़ित होने लगी, उस समय आपको ही अपना रक्षक समझकर प्रजा आपकी शरणमें आयी और उसे आपके द्वारा परम आनन्द एवं शान्तिकी प्राप्ति हुई। जब-जब हमलोगोंपर भयका आक्रमण हुआ, तब-तब सदा ही आपने हमें शरण दी है; इसलिये आज भी हम आपसे एक वरकी याचना करते हैं। आप वरदाता हैं [अतः हमारी इच्छा पूर्ण कीजिये]।

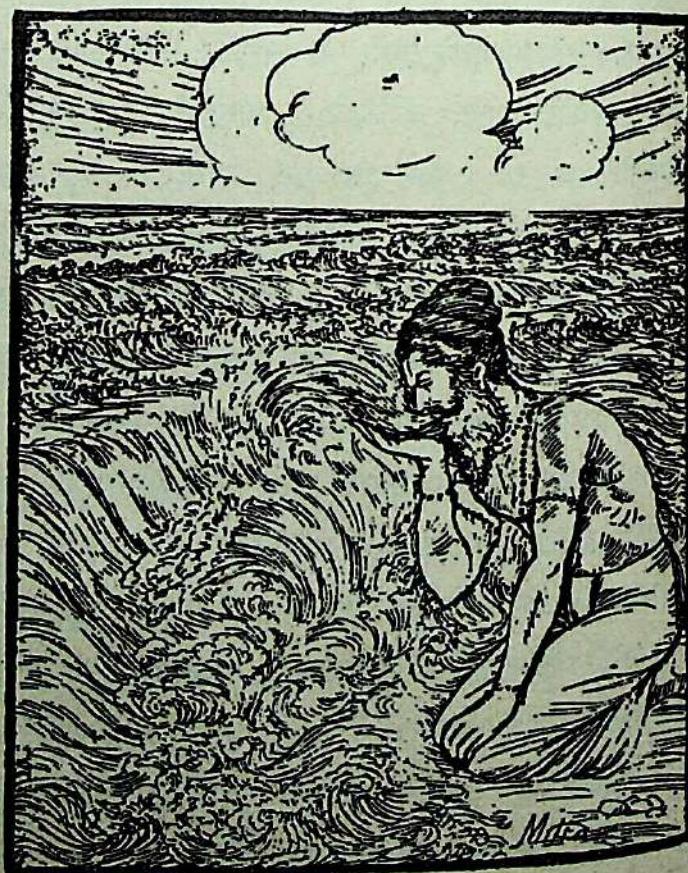
भीष्मजीने पूछा—महामुने ! क्या कारण था, जिससे विन्ध्य पर्वत सहसा क्रोधसे मूर्च्छित हो बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया था ?

पुलस्त्यजीने कहा—सूर्य प्रतिदिन उदय और अस्तके समय सुवर्णमय महापर्वत गिरिराज मेरुकी परिक्रमा किया करते हैं। एक दिन सूर्यको देखकर विन्ध्याचलने उनसे कहा—‘भास्कर ! जिस प्रकार आप प्रतिदिन मेरुपर्वतकी परिक्रमा किया करते हैं, उसी प्रकार मेरी भी कीजिये।’ यह सुनकर सूर्यने गिरिराज विन्ध्यसे कहा—‘शैल ! मैं अपनी इच्छासे मेरुकी परिक्रमा नहीं करता; जिन्होंने इस संसारकी सृष्टि की है, उन विधाताने ही मेरे लिये यह मार्ग नियत कर दिया है।’ उनके ऐसा कहनेपर विन्ध्याचलको सहसा क्रोध हो आया और वह सूर्य तथा चन्द्रमाका मार्ग रोकनेके लिये बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया। तब इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओंने जाकर बढ़ते हुए गिरिराज विन्ध्याचलको रोका, किन्तु उसने उनकी बात नहीं मानी। तब वे महर्षि अगस्त्यके पास जाकर बोले—‘मुनीश्वर ! शैलराज विन्ध्य क्रोधके वशीभूत होकर सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंका मार्ग रोक रहा है; उसे कोई निवारण नहीं कर पाता।’

देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्मर्षि अगस्त्यजी विन्ध्यके पास गये और आदरपूर्वक बोले—‘पर्वतश्रेष्ठ ! मैं दक्षिण दिशामें जानेके लिये तुमसे मार्ग चाहता हूँ; जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तबतक तुम नीचे रहकर ही मेरी प्रतीक्षा करो।’ [मुनिकी बात मानकर विन्ध्याचलने वैसा ही किया।] महर्षि अगस्त्य दक्षिण दिशासे आजतक नहीं लौटे; इसीसे विन्ध्य पर्वत अब नहीं बढ़ता। भीष्म ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार यह प्रसङ्ग मैंने सुना दिया; अब देवताओंने जिस प्रकार कालकेय दैत्योंका वध किया, वह वृत्तान्त सुनो।

देवताओंके वचन सुनकर महर्षि अगस्त्यने पूछा—‘आपलोग किसलिये यहाँ आये हैं और मुझसे क्या वरदान चाहते हैं?’ उनके इस प्रकार पूछनेपर देवताओंने कहा—‘मध्यात्मन् ! हम आपसे एक अद्भुत वरदान चाहते हैं। महर्षे ! आप कृपा करके समुद्रको पी

जाइये। आपके ऐसा करनेपर हमलोग देवदेवोंका लोके नामक दानवोंको उनके सगे-सम्बन्धियोंसहित मार डालेंगे।’ महर्षिने कहा—‘बहुत अच्छा, देवगण ! मैं आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा।’ ऐसा कहकर वे देवताओं और तपःसिद्ध मुनियोंके साथ जलनिधि समुद्रके पास गये। उनके इस अद्भुत कर्मको देखनेकी इच्छासे बहुतेरे मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर भी उन महात्माके पीछे-पीछे गये। महर्षि सहसा समुद्रके तटपर जा पहुँचे। समुद्र भीषण गर्जना कर रहा था। वह अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे नृत्य करता हुआ-सा जान पड़ा था। महर्षि अगस्त्यके साथ सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, नाग और महाभाग मुनि जब महासागरके किनारे पहुँच गये, तब महर्षिने समुद्रको पी जानेकी इच्छासे उन सबको लक्ष्य करके कहा—‘देवगण ! सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये इस समय मैं इस महासागरको पिये लेता हूँ; अब आपलोगोंको जो कुछ करना हो, शीघ्र ही कीजिये।’ यो कहकर वे सबके देखते-देखते समुद्रको



पी गये। यह देखकर इन्द्र आदि देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ तथा वे महर्षिकी स्तुति करते हुए कहने लगे—‘भगवन् ! आप हमारे रक्षक और लोकोंको नया

जन्म देनेवाले हैं। आपकी कृपासे देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्का कभी उच्छेद नहीं हो सकता।' इस प्रकार सम्पूर्ण देवता उनका सम्मान कर रहे थे। प्रधान-प्रधान गन्धर्व हर्षनाद करते थे और महर्षिके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। उन्होंने समूचे महासागरको जलशून्य कर दिया। जब समुद्रमें एक बूँद भी पानी न रहा, तब सम्पूर्ण देवता हर्षमें भरकर हाथोंमें दिव्य आयुध लिये दानवोंपर प्रहार करने लगे। महाबली देवताओंका वेग असुरोंके लिये असह्य हो गया। उनकी मार खाकर भी वे भीमकाय दानव दो घड़ीतक घमासान युद्ध करते रहे; किन्तु वे पवित्रात्मा मुनियोंकी तपस्यासे दग्ध हो चुके थे, इसलिये पूर्ण शक्ति लगाकर यत्न करते रहनेपर भी देवताओंके हाथसे मारे गये। जो मरनेसे बच रहे, वे पृथ्वी फाड़कर पातालमें घुस गये। दानवोंको मारा गया देख देवताओंने नाना प्रकारके वचनोंद्वारा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका स्तवन किया तथा इस प्रकार कहा—

देवता बोले—महाभाग ! आपकी कृपासे संसारके लोगोंको बड़ा सुख मिला। कालकेय दानव बड़े ही क्रूर और पराक्रमी थे, वे सब आपकी शक्तिसे मारे गये। लोकरक्षक महर्षे ! अब इस समुद्रको भर

दीजिये। आपने जो जल पी लिया है, वह सब इसमें वापस छोड़ दीजिये।

उनके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी बोले— 'वह जल तो मैंने पचा लिया, अब समुद्रको भरनेके लिये आपलोग कोई दूसरा उपाय सोचें।' महर्षिकी बात सुनकर देवताओंको विस्मय भी हुआ और विषाद भी। वहाँ इकट्ठे हुए सब लोग एक दूसरेकी अनुमति ले मुनिवर अगस्त्यजीको प्रणाम करके जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। देवतालोग समुद्रको भरनेके विषयमें परस्पर विचार करते हुए ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हाथ जोड़ ब्रह्माजीको प्रणाम किया और समुद्रके पुनः भरनेका उपाय पूछा। तब लोकपितामह ब्रह्माने उनसे कहा—'देवताओ ! तुम सब लोग इच्छानुसार अपने-अपने अभीष्ट स्थानको लौट जाओ, अब बहुत दिनोंके बाद समुद्र अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त होगा। महाराज भगीरथ अपने कुटुम्बी जनोंको तारनेके लिये गङ्गाजीको लायेगे और उन्हींके जलसे पुनः समुद्रको भर देंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने देवताओं और ऋषियोंको भेज दिया।



सप्तर्षि-आश्रमके प्रसङ्गमें सप्तर्षियोंके अलोभका वर्णन तथा ऋषियोंके मुखसे अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! अब मैं तुम्हरे लिये सप्तर्षियोंके आश्रमका वर्णन करूँगा। अत्रि, वसिष्ठ, मैं, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, सुमति, सुमुख, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रतर्दन, रैश्य, बृहस्पति, च्यवन, कश्यप, भृगु, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, उशना, भरद्वाज, यवक्रीत, स्थूलाक्ष, मकराक्ष, कण्व, मेधातिथि, नारद, पर्वत, स्वगन्धी, तृणाम्बु, शबल, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, जमदग्निकुमार परशुराम, अष्टक तथा कृष्णद्वैपायन—ये सभी ऋषि-महर्षि अपने पुत्रों और शिष्योंके साथ पुष्करमें आकर सप्तर्षियोंके आश्रममें रह चुके हैं तथा सबने इन्द्रिय-संयम और शौच-सन्तोषादि नियमोंके पालनपूर्वक पूरी

चेष्टाके साथ तपस्या की है, जिसके फलस्वरूप उनमें इन्द्रिय-जय, धैर्य, सत्य, क्षमा, सरलता, दया और दान आदि सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा हुई है। पूर्वकालकी बात है, समाधिके द्वारा सनातन ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाले सप्तर्षिगण तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए इस पृथ्वीपर विचर रहे थे। इसी बीचमें एक बार बड़ा भारी सूखा पड़ा, जिसके कारण भूखसे पीड़ित होकर सम्पूर्ण जगत्के लोग बड़े कष्टमें पड़ गये। उसी समय उन ऋषियोंको भी कष्ट उठाते देख तत्कालीन राजने, जो प्रजाकी देख-भालके लिये श्रमण कर रहे थे, दुःखी होकर कहा—'मुनिवरो ! ब्राह्मणोंके लिये प्रतिग्रह उत्तम वृत्ति है; अतः आपलोग मुझसे दान ग्रहण

करें—अच्छे-अच्छे गाँव, धान और जौ आदि अन्न, घृत-दुग्धादि रस, तरह-तरहके रस, सुवर्ण तथा दूध देनेवाली गौएँ ले लें।'

ऋषियोंने कहा—राजन् ! प्रतिग्रह बड़ी भयंकर वृत्ति है। वह स्वादमें मधुके समान मधुर, किन्तु परिणाममें विषके समान धातक है। इस बातको स्वयं जानते हुए भी तुम क्यों हमें लोभमें डाल रहे हो ?' दस कसाइयोंके समान एक चक्री (कुम्हार या तेली), दस चक्रियोंके समान एक शराब बेचनेवाला, दस शराब बेचनेवालोंके समान एक वेश्या और दस वेश्याओंके समान एक राजा होता है। जो प्रतिदिन दस हजार हत्यागृहोंका सञ्चालन करता है, वह शौण्डिक है; राजा भी उसीके समान माना गया है। अतः राजाका प्रतिग्रह अत्यन्त भयंकर है। जो ब्राह्मण लोभसे मोहित होकर राजाका प्रतिग्रह स्वीकार करता है, वह तामिस्त्र आदि घोर नरकोंमें पकाया जाता है।* अतः महाराज ! तुम अपने दानके साथ ही यहाँसे पथारो। तुम्हारा कल्याण हो। यह दान दूसरोंको देना।

यह कहकर वे सप्तर्षि वनमें चले गये। तदनन्तर राजाकी आज्ञासे उसके मन्त्रियोंने गूलरके फलोंमें सोना भरकर उन्हें पृथ्वीपर बिखेर दिया। सप्तर्षि अन्नके दाने बीनते हुए वहाँ पहुँचे तो उन फलोंको भी उन्होंने हाथमें उठाया।

उन्हें भारी जानकर अत्रिने कहा—'ये फल ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं। हमारी ज्ञानशक्तिपर मोहका पर्दा नहीं पड़ा है, हम मन्दबुद्धि नहीं हो गये हैं। हम समझदार हैं, ज्ञानी हैं, अतः इस बातको भलीभाँति समझते हैं कि वे गूलरके फल सुवर्णसे भरे हैं। धन इसी लोकमें आनन्ददायक होता है, मृत्युके बाद तो वह बड़े

ही कटु परिणामको उत्पन्न करता है; अतः जो सुख एवं अनन्त पदकी इच्छा रखता हो, उसे तो इसे कदापि नहीं लेना चाहिये।†

वसिष्ठजीने कहा—इस लोकमें धनसञ्चयकी अपेक्षा तपस्याका सञ्चय ही श्रेष्ठ है। जो सब प्रकारके लौकिक संग्रहोंका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। संग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो सुखी रह सके। ब्राह्मण जैसे-जैसे प्रतिग्रहका त्याग करता है, वैसे-ही-वैसे सन्तोषके कारण उसके ब्रह्म-तेजकी वृद्धि होती है। एक ओर अकिञ्चनता और दूसरी ओर राज्यको तराजूपर रखकर तोला गया तो राज्यकी अपेक्षा अकिञ्चनताका ही पलड़ा भारी रहा; इसलिये जितात्मा पुरुषके लिये कुछ भी संग्रह न करना ही श्रेष्ठ है।

कश्यपजी बोले—धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है; इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधन अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़को लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

भरद्वाजने कहा—जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके दाँत और बाल भी पक जाते हैं; किन्तु धन और जीवनकी आशा बूढ़े होनेपर भी जीर्ण नहीं होती—वह सदा नयी ही बनी रहती है। जैसे दर्जी सूईसे वस्त्रमें सूतका प्रवेश करा देता है, उसी प्रकार

* दशसूनासमश्क्री दशचक्रिसमो ध्वजः। दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः॥

दशसूनासहस्राणि यो वाहयति शौण्डिकः। तेन तुल्यस्ततो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः॥

यो राजः प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो लोभमोहितः। तामिस्त्रादिषु घोरेषु नरकेषु स पच्यते॥

(१९। २३६—३८)

† इहैवात्मं बसु प्रीत्यै भेत्य वै कटुकोदयम्। तस्मान्

प्राह्मेवैतत्सुखमानन्त्यमिच्छता॥

(१९। २४३)

तृष्णारूपी सूईसे संसाररूपी सूत्रका विस्तार होता है। तृष्णाका कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है; वह सैकड़ों दोषोंको ढोये फिरती है; उसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं। अतः तृष्णाका परित्याग ही उचित है।

गौतम बोले—इन्द्रियोंके लोभग्रस्त होनेसे सभी मनुष्य सङ्कटमें पड़ जाते हैं। जिसके चित्तमें सन्तोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैर जूतेमें है, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे मढ़ी है। सन्तोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्त चित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले लोगोंको कहाँसे प्राप्त हो सकता है। असन्तोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है; अतः सुख चाहनेवाले पुरुषको सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये।*

विश्वामित्रने कहा—किसी कामनाकी पूर्ति चाहनेवाले मनुष्यकी यदि एक कामना पूर्ण होती है, तो दूसरी नयी उत्पन्न होकर उसे पुनः बाणके समान बींधने लगती है। भोगोंकी इच्छा उपभोगके द्वारा कभी शान्त नहीं होती, प्रत्युत घी डालनेसे प्रज्ञलित होनेवाली अग्रिकी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। भोगोंकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष मोहवश कभी सुख नहीं पाता।

जमदग्नि बोले—जो प्रतिग्रह लेनेकी शक्ति रखते हुए भी उसे नहीं ग्रहण करता, वह दानी पुरुषोंको मिलनेवाले सनातन लोकोंको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण राजासे धन लेता है, वह महर्षियोंद्वारा शोक करनेके योग्य है; उस मूर्खको नरक-यातनाका भय नहीं दिखायी देता। प्रतिग्रह लेनेमें समर्थ होकर भी उसमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि प्रतिग्रहसे ब्राह्मणोंका ब्रह्मतेज

नष्ट हो जाता है।

अरुन्धतीने कहा—तृष्णाका आदि-अन्त नहीं है, वह सदा शरीरके भीतर व्याप्त रहती है। दुष्ट बुद्धिवाले पुरुषोंके लिये जिसका त्याग करना कठिन है, जो शरीरके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणान्तकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है।

पशुसम्ब बोले—धर्मपरायण विद्वान् पुरुष जैसा आचरण करते हैं, आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले विद्वान् पुरुषको वैसा ही आचरण करना चाहिये।

ऐसा कहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करनेवाले वे सभी महर्षि उन सुवर्णयुक्त फलोंको छोड़ अन्यत्र चले गये। घूमते-घामते वे मध्य पुष्करमें गये, जहाँ अकस्मात् आये हुए शुनःसख नामक परिव्राजकसे उनकी भेट हुई। उसके साथ वे किसी वनमें गये। वहाँ उन्हें एक बहुत बड़ा सरोवर दिखायी दिया, जिसका जल कमलोंसे आच्छादित था। वे सब-के-सब उस सरोवरके किनारे बैठ गये और कल्याणका चिन्तन करने लगे। उस समय शुनःसखने क्षुधासे पीड़ित उन समस्त मनियोंसे इस प्रकार कहा—‘महर्षियो ! आप सब लोग बताइये, भूखकी पीड़ा कैसी होती है ?’

ऋषियोंने कहा—शक्ति, खड़, गदा, चक्र, तोमर और बाणोंसे पीड़ित किये जानेपर मनुष्यको जो वेदना होती है, वह भी भूखकी पीड़ाके सामने मात हो जाती है। दमा, खाँसी, क्षय, ज्वर और मिरगी आदि रोगोंसे कष्ट पाते हुए मनुष्यको भी भूखकी पीड़ा उन सबकी अपेक्षा अधिक जान पड़ती है। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे पृथ्वीका सारा जल खींच लिया जाता है, उसी प्रकार पेटकी आगसे शरीरकी समस्त नाड़ियाँ सूख जाती हैं। क्षुधासे पीड़ित मनुष्यको आँखोंसे कुछ सूझ नहीं

* सर्वत्र सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्। उपानदगूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥
सन्तोषामृतवृत्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्। कुतस्तद्वन्लुभ्यानामितश्चेतश्च धावताम्॥
असन्तोषः परं दुःखं सन्तोषः परमं सुखम्। सुखार्थी पुरुषस्तस्मात्सन्तुष्टः सततं भवेत्॥

पड़ता, उसका सारा अन्न जलता और सूखता जाता है। भूखकी आग प्रज्वलित होनेपर मनुष्य गूँगा, बहरा, जड़, पफ्नु, भयंकर तथा मर्यादाहीन हो जाता है। लोग क्षुधासे पीड़ित होनेपर पिता-माता, स्त्री, पुत्र, कन्या, भाई तथा स्वजनोंका भी परित्याग कर देते हैं। भूखसे व्याकुल मनुष्य न पितरोंकी भलीभाँति पूजा कर सकता है न देवताओंकी, न गुरुजनोंका सत्कार कर सकता है न ऋषियों तथा अभ्यागतोंका।

इस प्रकार अन्न न मिलनेपर देहधारी प्राणियोंमें ये सभी दोष आ जाते हैं। इसलिये संसारमें अन्नसे बढ़कर न तो कोई पदार्थ हुआ है, न होगा। अन्न ही संसारका मूल है। सब कुछ अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। पितर, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मनुष्य और पिशाच—सभी अन्नमय माने गये हैं; इसलिये अन्नदान करनेवालेको अक्षय तृप्ति और सनातन स्थिति प्राप्त होती है। तप, सत्य, जप, होम, ध्यान, योग, उत्तम गति, स्वर्ग और सुखकी प्राप्ति—ये सब कुछ अन्नसे ही सुलभ होते हैं। चन्दन, अगर, धूप और शीतकालमें ईंधनका दान अन्नदानके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकता। अन्न ही प्राण, बल और तेज है। अन्न ही पराक्रम है, अन्नसे ही तेजकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भूखेको अन्न देता है, वह ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्माजीके साथ आनन्द मनाता है। जो एकाग्रचित्त होकर अमावास्याको श्राद्धमें अन्नदानका माहात्म्यमात्र सुनाता है; उसके पितर आजीवन सन्तुष्ट रहते हैं।

इन्द्रिय-संयम और मनोनियहसे युक्त ब्राह्मण सुखी एवं धर्मके भागी होते हैं। दम, दान एवं यम—ये तीनों तत्त्वार्थदर्शी पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्म हैं। इनमें भी विशेषतः दम ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है। दम तेजको बढ़ाता है, दम परम पवित्र और उत्तम है। दमसे पुरुष पापरहित एवं तेजस्वी होता है। संसारमें जो कुछ नियम, धर्म, शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंके फल हैं, उन सबकी अपेक्षा दमका महत्त्व अधिक है। दमके बिना दानरूपी क्रियाकी यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती। दमसे ही ब्रह्म और दमसे ही दानकी प्रवृत्ति होती है। जिसने

इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके बनमें रहनेसे क्या लाभ। तथा जिसने मन और इन्द्रियोंका भलीभाँति दमन किया है, उसको [घर छोड़कर] किसी आश्रममें रहनेकी क्या आवश्यकता है। जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ-जहाँ निवास करता है, उसके लिये वही-वही स्थान बन एवं महान् आश्रम है। जो उत्तम शील और आचरणमें रत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर लिया है तथा जो सदा सरल भावसे रहता है, उसको आश्रमोंसे क्या प्रयोजन? विषयासक्त मनुष्योंसे बनमें भी दोष बन जाते हैं तथा घरमें रहकर भी यदि पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया जाय तो वह तपस्या ही है। जो सदा शुभ कर्में ही प्रवृत्त होता है, उस वीतराग पुरुषके लिये घर ही तपोवन है। केवल शब्द-शास्त्र-व्याकरणके चिन्तनमें लगे रहनेवालेका मोक्ष नहीं होता तथा लोगोंका मन बहलानेमें ही जिसकी प्रवृत्ति है, उसको भी मुक्ति नहीं मिलती। जो एकान्तमें रहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करता, इन्द्रियोंकी आसक्तिको दूर हटाता, अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें मन लगाता और सर्वदा अहिंसा-ब्रतका पालन करता है, उसीका मोक्ष निश्चित है। जितेन्द्रिय पुरुष सुखसे सोता और सुखसे जागता है। वह सम्पूर्ण भूतोंके प्रति समान भाव रखता है। उसके मनमें हर्ष-शोक, आदि विकार नहीं आते। छेड़ा हुआ सिंह, अत्यन्त रोषमें भरा हुआ सर्प तथा सदा कुपित रहनेवाला शत्रु भी वैसा अनिष्ट नहीं कर सकता, जैसा संयमरहित चित्त कर डालता है।

मांसभक्षी प्राणियों तथा अजितेन्द्रिय मनुष्योंसे लोगोंको सदा भय रहता है, अतः उनके निवारणके लिये ब्रह्माजीने दण्डका विधान किया है। दण्ड ही प्राणियोंकी रक्षा और प्रजाका पालन करता है। वही पापियोंको पापसे रोकता है। दण्ड सबके लिये दुर्जय होता है। वह सब प्राणियोंको भय पहुँचानेवाला है। दण्ड ही मनुष्योंका शासक है, उसीपर धर्म टिका हुआ है। सम्पूर्ण आश्रमों और समस्त भूतोंमें दम ही उत्तम ब्रत माना गया है। उदारता, कोमल स्वभाव, सन्तोष, दोष-दृष्टिका अभाव, गुरु-शुश्रूषा, प्राणियोंपर दया और चुगली न करना—

इन्हींको शान्त बुद्धिवाले संतों और ऋषियोंने दम कहा है। धर्म, मोक्ष तथा स्वर्ग—ये सभी दमके अधीन हैं। जो अपना अपमान होनेपर क्रोध नहीं करता और सम्मान होनेपर हर्षसे फूल नहीं उठता, जिसकी दृष्टिमें दुःख और सुख समान हैं, उस धीर पुरुषको प्रशान्त कहते हैं। जिसका अपमान होता है, वह साधु पुरुष तो सुखसे सोता और सुखसे जागता है तथा उसकी बुद्धि कल्याणमयी होती है। परन्तु अपमान करनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है। अपमानित पुरुषको चाहिये कि वह कभी अपमान करनेवालेकी बुराई न सोचे। अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए भी दूसरोंके धर्मकी निन्दा न करे।*

जो इन्द्रियोंका दमन करना नहीं जानते, वे व्यर्थ ही शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं; क्योंकि मन और इन्द्रियोंका संयम ही शास्त्रका मूल है, वही सनातन धर्म है। सम्पूर्ण व्रतोंका आधार दम ही है। छहों अङ्गोंसहित पढ़े हुए वेद भी दमसे हीन पुरुषको पवित्र नहीं कर सकते। जिसने इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके सांख्य, योग, उत्तम कुल, जन्म और तीर्थस्नान—सभी व्यर्थ हैं। योगवेत्ता द्विजको चाहिये कि वह अपमानको अमृतके समान समझकर उससे प्रसन्नताका अनुभव करे और सम्मानको विषके तुल्य मानकर उससे घृणा करे। अपमानसे उसके तपकी वृद्धि होती है और सम्मानसे क्षय। पूजा और सत्कार पानेवाला ब्राह्मण दुही हुई गायकी तरह खाली हो जाता है। जैसे गौ घास और जल पीकर फिर पुष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मण जप और होमके द्वारा पुनः ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो जाता है। संसारमें निन्दा करनेवालेके समान दूसरा कोई मित्र नहीं है, क्योंकि वह पाप लेकर अपना पुण्य दे जाता है।† निन्दा करने-

वालोंकी स्वयं निन्दा न करे। अपने मनको रोके। जो उस समय अपने चित्तको वशमें कर लेता है, वह मानो अमृतसे स्नान करता है। वृक्षोंके नीचे रहना, साधारण वस्त्र पहनना, अकेले रहना, किसीकी अपेक्षा न रखना और ब्रह्मचर्यका पालन करना—ये सब परमगतिको प्राप्त करनेवाले होते हैं। जिसने काम और क्रोधको जीत लिया, वह जंगलमें जाकर क्या करेगा? अभ्याससे शास्त्रकी, शीलसे कुलकी, सत्यसे क्रोधका तथा मित्रके द्वारा प्राणोंकी रक्षा की जाती है। जो पुरुष उत्पन्न हुए क्रोधको अपने मनसे रोक लेता है, वह उस क्षमाके द्वारा सबको जीत लेता है। जो क्रोध और भयको जीतकर शान्त रहता है, पृथ्वीपर उसके समान वीर और कौन है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ गूढ़ उपदेश है। प्यारे! हमने धर्मका हृदय—सार तत्त्व तुम्हें बतलाया है।

यज्ञ करनेवालोंके लोक दूसरे हैं, तपस्वियोंके लोक दूसरे हैं तथा इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करनेवाले लोगोंके लोक दूसरे ही हैं। वे सभी परम सम्मानित हैं। क्षमा करनेवालेपर एक ही दोष लागू होता है, दूसरा नहीं; वह यह कि क्षमाशील पुरुषको लोग शक्तिहीन मान बैठते हैं। किन्तु इसे दोष नहीं मानना चाहिये, क्योंकि बुद्धिमानोंका बल क्षमा ही है। जो शान्ति अथवा क्षमाको नहीं जानता, वह इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्ति (तालाब आदि खुदवाना) देनोंके फलोंसे वञ्चित हो जाता है। क्रोधी मनुष्य जो जप, होम और पूजन करता है, वह सब फूटे हुए घड़ेसे जलकी भाँति नष्ट हो जाता है। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इस पुण्यमय दमाध्यायका पाठ करता है, वह धर्मकी नौकापर आरूढ़ होकर सारी कठिनाइयोंको पार कर जाता है। जो द्विज

* अवमाने न कुप्येत सम्माने न प्रहृष्टति। समदुःखसुखो धीरः प्रशान्त इति कीर्त्यते ॥

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं चैव प्रबुद्ध्यति। श्रेयस्तरमतिस्तिष्ठेदवमन्ता विनश्यति ॥

अवमानी तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन। स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत् ॥

(१९।३३२—३४)

† आक्रोशकसमो लोके सुहदन्यो न विद्यते। यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति ॥

(१९।३४४)

सदा ही इस पुण्यप्रद दमाध्यायको दूसरोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है तथा वहाँसे कभी नहीं गिरता।

धर्मका सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो—जो बात अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी काममें न लाये। जो परायी स्त्रीको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्माके समान जानता है, वही ज्ञानी है। जिसकी रसोई बलिवैश्वदेवके लिये और जीवन परोपकारके लिये है, वही विद्वान् है। जैसे धातुओंमें सुवर्ण उत्तम है, वैसे ही परोपकार सबसे श्रेष्ठ धर्म है, वही सर्वस्व है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितका ध्यान रखनेवाला पुरुष अमृतत्व प्राप्त करता है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियोंने शुनःसखके सामने धर्मके सार-तत्त्वका प्रतिपादन करके उसके साथ वहाँसे दूसरे वनमें प्रवेश किया। वहाँ भी उन्हें एक बहुत विस्तृत जलाशय दिखायी दिया, जो पद्म और उत्पलोंसे आच्छादित था। उस सरोवरमें उत्तरकर उन्होंने मृणाल उखाड़े और उन्हें ढेर-के-ढेर किनारेपर रखकर जलसे सम्पन्न होनेवाली पुण्यक्रिया—सन्ध्यातर्पण आदि करने लगे। तत्पश्चात् जब वे जलसे बाहर निकले तो उन मृणालोंको न देखकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे।

ऋषि बोले—हम सब लोग क्षुधासे कष्ट पा रहे हैं—ऐसी दशामें किस पापी और क्रूरने मृणालोंको चुरा लिया?

जब इस तरह कुछ पता न लगा तब सबसे पहले कश्यपजी बोले—जिसने मृणालकी चोरी की हो, उसे सर्वत्र सब कुछ चुरानेका, थाती रखी हुई वस्तुपर जी ललचानेका और झूठी गवाही देनेका पाप लगे। वह दर्शपूर्वक धर्मका आचरण और राजाका सेवन करने, मध्य और मांसका सेवन करने, सदा झूठ बोलने, सूदसे जीविका चलाने और रुपया लेकर लड़की बेचनेके पापका भागी हो।

ब्रह्मिषुजीने कहा—जिसने उन मृणालोंको

चुराया हो, उसे ऋतुकालके बिना ही मैथुन करने, दिनमें सोने, एक दूसरेके यहाँ जाकर अतिथि बनने, जिस गाँवमें एक ही कुँआ हो वहाँ निवास करने, ब्राह्मण होकर शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेका पाप लगे और ऐसे लोगोंको जिन लोकोंमें जाना पड़ता है, वहीं वह भी जाय।

भरद्वाज बोले—जिसने मृणाल चुराये हों, वह सबके प्रति क्रूर, धनके अभिमानी, सबसे डाह रखनेवाले, चुगलखोर और रस बेचनेवालेकी गति प्राप्त करे।

गौतमने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह सदा शूद्रका अन्न खानेवाले, परस्त्रीगामी और धर्म दूसरोंको न देकर अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवालेके समान पापका भागी हो।

विश्वामित्र बोले—जो मृणाल चुरा ले गया हो, वह सदा काम-परायण, दिनमें मैथुन करनेवाले, नित्य पातकी, परायी निन्दा करनेवाले और परस्त्रीगामीकी गति प्राप्त करे।

जमदग्निने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने माता-पिताका अपमान करनेके, अपनी कन्याके दिये हुए धनसे अपनी जीविका चलानेके, सदा दूसरेकी रसोईमें भोजन करनेके, परस्त्रीसे सम्पर्क रखनेके और गौओंकी बिक्री करनेके पापका भागी हो।

पराशरजी बोले—जिसने मृणाल चुराये हों, वह दूसरोंका दास एवं जन्म-जन्म क्रोधी हो तथा सब प्रकारके धर्मकर्मोंसे हीन हो।

शुनःसखने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह न्यायपूर्वक वेदाध्ययन करे, अतिथियोंमें प्रीति रखनेवाला गृहस्थ हो, सदा सत्य बोले, विधिवत् अग्निहोत्र करे, प्रतिदिन यज्ञ करे और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाय।

ऋषियोंने कहा—शुनःसख ! तुमने जो शपथ की है, वह तो द्विजातिमात्रको अभीष्ट ही है; अतः तुम्हानि हम सबके मृणालोंकी चोरी की है।

शुनःसख बोले—ब्राह्मणो ! मैंने ही आप-लोगोंके मुँहसे धर्म सुननेकी इच्छासे ये मृणाल छिपा

दिये थे। मुझे आप इन्द्र समझें। मुनिवरो ! आपने लोभके परित्यागसे अक्षय लोकोंपर विजय पायी है। अतः इस विमानपर बैठिये, अब हमलेग स्वर्गलोकको चलें।

तब महर्षियोंने इन्द्रको पहचानकर उनसे इस प्रकार कहा ।

ऋषि बोले—देवराज ! जो मनुष्य यहाँ आकर मध्यम पुष्करमें स्नान करे और तीन राततक यहाँ अनुभव करता है तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीके एक

नाना प्रकारके ब्रत, स्नान और तर्पणकी विधि तथा अन्नादि पर्वतोंके दानकी प्रशंसामें राजा धर्ममूर्तिकी कथा

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! ज्येष्ठ पुष्करमें गौ, मध्यम पुष्करमें भूमि और कनिष्ठ पुष्करमें सुवर्ण देना चाहिये। यही वहाँके लिये दक्षिणा है। प्रथम पुष्करके देवता श्रीब्रह्माजी, दूसरेके भगवान् श्रीविष्णु तथा तीसरेके श्रीरुद्र हैं। इस प्रकार तीनों देवता वहाँ पृथक्-पृथक् स्थित हैं। अब मैं सब ब्रतोंमें उत्तम महापातकनाशन नामक ब्रतका वर्णन करता हूँ। यह भगवान् शङ्करका बताया हुआ ब्रत है। रात्रिको अन्न तैयार करके कुटुम्बवाले ब्राह्मणको बुलाये और उसे भोजन कराकर एक गौ, सुवर्णमय चक्रसे युक्त त्रिशूल तथा दो वस्त्र—धोती और चद्दर दान करे। जो मनुष्य इस प्रकार पुण्य करता है, वह शिवलोकमें जाकर आनन्दका अनुभव करता है। यही महापातकनाशन ब्रत है। जो एक दिन एकभक्तब्रती रहकर—एक ही अन्नका भोजन कर दूसरे दिन तिलमयी धेनु और वृषभका दान करता है, वह भगवान् शङ्करके पदको प्राप्त होता है। यह पाप और शोकोंका नाश करनेवाला 'रुद्रब्रत' है। जो एक वर्षतक एक दिनका अन्तर दे रात्रिमें भोजन करता है तथा वर्ष पूरा होनेपर नील कमल, सुवर्णमय कमल और चीनीसे भरा हुआ पात्र एवं बैल दान करता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। यह 'नीलब्रत' कहलाता है। जो मनुष्य आषाढ़से लेकर चार महीनोंतक तेलकी मालिश छोड़ देता है और भोजनकी सामग्री दान करता है, वह भगवान् श्रीहरिके धाममें जाता है। यह मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाला होनेके कारण 'प्रीतिब्रत'

उपवासपूर्वक निवास करे, उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। बनवासी महर्षियोंके लिये जो बारह वर्षोंकी यज्ञ-दीक्षा बतायी गयी है, उसका पूरा-पूरा फल उस मनुष्यको भी मिल जाता है। उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। वह सदा अपने कुलवालोंके साथ आनन्दका अनुभव करता है तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीके एक दिनतक (कल्पभर) वहाँ निवास करता है।



कहलाता है। जो चैतके महीनेमें दही, दूध, घी और गुड़का त्याग करता और गौरीकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके उन्हें महीन वस्त्र और रससे भरे पात्र दान करता है, उसपर गौरीदेवी प्रसन्न होती है। यह 'गौरीब्रत' भवानीका लोक प्रदान करनेवाला है। जो आषाढ़ आदि चातुर्मास्यमें कोई भी फल नहीं खाता तथा चौमासा बीतनेपर घी और गुड़के साथ एक घड़ा एवं कार्तिककी पूर्णिमाको पुनः कुछ सुवर्ण ब्राह्मणको दान देता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'शिवब्रत' कहलाता है।

जो मनुष्य हेमन्त और शिशिरमें पुष्पोंका सेवन छोड़ देता है तथा अपनी शक्तिके अनुसार सोनेके तीन पूल बनवाकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको भगवान् श्रीशिव और श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनका दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यब्रत' कहलाता है। जो फाल्गुनसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी तृतीयाको नमक छोड़ देता है और वर्ष पूर्ण होनेपर भवानीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके उन्हें शश्या और आवश्यक सामग्रियोंसहित गृह दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यब्रत' कहते हैं। जो द्विज एक वर्षतक मौनभावसे सञ्च्या करता है और वर्षके अन्तमें घीका घड़ा, दो वस्त्र—धोती और चद्दर, तिल और घण्टा ब्राह्मणको दान करता है, वह सारस्वतलोकको प्राप्त होता है, जहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता।

यह रूप और विद्या प्रदान करनेवाला 'सारस्वत' नामक व्रत है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोद्घारा कमल बनाये। उसके ऊपर भगवान् श्रीशिव या श्रीविष्णुकी प्रतिमा रखकर उसे धीसे स्नान कराये; फिर विधिवत् पूजन करे। इस प्रकार जब एक वर्ष बीत जाय, तब साम-गान करनेवाले ब्राह्मणको शुद्ध सोनेका बना हुआ आठ अंगुलका कमल और तिलकी धेनु दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह 'सामव्रत' कहा गया है।

नवमी तिथिको एकभुक्त रहकर—एक ही अन्नका भोजन करके कुमारी कन्याओंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा गौ, सुवर्ण, सिला हुआ अंगा, धोती, चद्दर तथा सोनेका सिंहासन ब्राह्मणको दान करे; इससे वह शिवलोकको जाता है। अरबों जन्मतक सुरूपवान् होता है। शत्रु उसे कभी परास्त नहीं कर पाते। यह मनुष्योंको सुख देनेवाला 'वीरव्रत' नामका व्रत है। चैतसे आरम्भ कर चार महीनोंतक प्रतिदिन लोगोंको बिना माँगे जल पिलाये और इस व्रतकी समाप्ति होनेपर अन्न-वस्त्रसहित जलसे भरा हुआ माट, तिलसे पूर्ण पात्र तथा सुवर्ण दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। यह उत्तम 'आनन्दव्रत' है। जो पुरुष मांसका बिलकुल परित्याग करके व्रतका आचरण करे और उसकी पूर्तिके निमित्त गौ तथा सोनेका मृग दान करे, वह अश्वमेध यजका फल प्राप्त करता है। इसका नाम 'अहिंसाव्रत' है। एक कल्पतक इसका फल भोगकर अन्तमें मनुष्य राजा होता है। माघके महीनेमें सूर्योदयके पहले स्नान करके द्विज-दम्पतीका पूजन करे तथा उन्हें भोजन कराकर यथाशक्ति वस्त्र और आभूषण दान दे। यह 'सूर्यव्रत' है। इसका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें प्रतिदिन प्रातःस्नान करे और फिर कार्तिककी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर गोदान दे तो वह मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। यह 'विष्णुव्रत' है। जो एक अयनसे दूसरे अनुष्ठानका पुरुष और धृतिका सेवन छोड़ देता है और

व्रतके अन्तमें फूलोंका हार, धी और धृतमिश्रित सौर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है। इसका नाम 'शीलव्रत' है। जो [नियत कालतक] प्रतिदिन सन्ध्याके समय दीप-दान करता है तथा धी और तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, चक्र, शूल, सोना और धोती-चद्दर दान करता है, वह इस संसारमें तेजस्वी होता है तथा अन्तमें रुद्रलोकको जाता है। यह 'दीपिव्रत' है। जो कार्तिकसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी तृतीयाको रातके समय गोमूत्रमें पकायी हुई जौकी लप्सी खाकर रहता है और वर्ष समाप्त होनेपर गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है तथा उसके बाद इस लोकमें राजा होता है। इसका नाम 'रुद्रव्रत' है। यह सदा कल्याण करनेवाला है। जो चार महीनोंतक चन्दन लगाना छोड़ देता है तथा अन्तमें सीपी, चन्दन, अक्षत और दो श्वेत वस्त्र—धोती और चद्दर ब्राह्मणको दान करता है, वह वरुणलोकमें जाता है। यह 'दृढ़व्रत' कहलाता है।

सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहङ्काररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ' ऐसी भावना करके धीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्ति करे। फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोद्घार ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनको अपनी शक्तिके अनुसार तीन तोलेसे अधिक सोना तथा तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम 'ब्रह्मव्रत' है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। जो तीन दिन केवल दूध पीकर रहता है और अपनी शक्तिके अनुसार एक तोलेसे अधिक सोनेका कल्पवृक्ष बनवाकर उसे एक सेर चावलके साथ ब्राह्मणको दान करता है, वह भी ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। यह 'कल्पवृक्षव्रत' है। जो एक महीनेतक उपवास करके ब्राह्मणको सुन्दर गौ दान करता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। इसका नाम 'भीमव्रत' है। जो बीस तोलेसे अधिक सोनेकी

पृथ्वी बनवाकर दान करता है और दिनभर दूध पीकर रहता है, वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह 'धनप्रद' नामक व्रत है। यह सात सौ कल्पोंतक अपना फल देता रहता है। माघ अथवा चैतकी तृतीयाको गुड़की गौ बनाकर दान करे। इसका नाम 'गुडव्रत' है। इसका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष गौरीलोकमें सम्मान पाता है।

अब परम आनन्द प्रदान करनेवाले महाव्रतका वर्णन करता हूँ। जो पंद्रह दिन उपवास करके ब्राह्मणको दो कपिला गौएँ दान करता है, वह देवता और असुरोंसे पूजित हो ब्रह्मलोकमें जाता है तथा कल्पके अन्तमें सबका सम्राट् होता है। इसका नाम 'प्रभाव्रत' भी है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्नका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका घड़ा दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्रासिव्रत' कहते हैं। जो प्रत्येक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहते हैं। जो वर्षा आदि चार ऋतुओंमें ब्राह्मणको ईंधन देता है और अन्तमें धी तथा गौका दान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। यह सब पापोंका नाश करनेवाला 'वैश्वानरव्रत' है।

जो एक वर्षतक प्रतिदिन खीर खाकर रहता है और व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको एक गाय और एक बैल दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। इसका नाम 'देवीव्रत' है। जो प्रत्येक सप्तमीको एक बार रात्रिमें भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर दूध देनेवाली गौ दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'भानुव्रत' है। जो प्रत्येक चतुर्थीको एक बार रात्रिमें भोजन करता है और वर्षके अन्तमें सोनेका हाथी दान करता है, उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। यह 'वैनायकव्रत' है। जो चौमासेभर बड़े-बड़े फलोंका परित्याग करके कर्तिकमें सोनेके फलका दान करता है तथा हवन कराकर उसके अन्तमें ब्राह्मणको गाय-बैल देता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'सौरव्रत' है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास

करके अपनी शक्तिके अनुसार गौ, वस्त्र और सुवर्णके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'विष्णुव्रत' है। जो प्रत्येक चतुर्दशीको एक बार रातमें भोजन करता और वर्षकी समाप्ति होनेपर एक गाय और एक बैल दान करता है, उसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। इसे 'त्र्यम्बक-व्रत' कहते हैं। जो सात रात उपवास करके ब्राह्मणको धीसे भरा हुआ घड़ा दान करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्ति होता है। इसका नाम 'वरव्रत' है। जो काशी जाकर दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह एक कल्पतक इन्द्रलोकमें निवास करता है। यह 'मित्रव्रत' है। जो एक वर्षतक ताम्बूलका सेवन छोड़कर अन्तमें गोदान करता है, वह वरुणलोकको जाता है। इसका नाम 'वारुणव्रत' है। जो चान्द्रायणव्रत करके सोनेका चन्द्रमा बनवाकर दान देता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह 'चन्द्रव्रत' कहलाता है। जो ज्येष्ठ मासमें पञ्चामि तपकर अन्तमें अष्टमी या चतुर्दशीको सोनेकी गौका दान करता है, वह स्वर्गको जाता है। यह 'रुद्रव्रत' कहलाता है। जो प्रत्येक तृतीयाको शिवमन्दिरमें जाकर एक बार हाथ जोड़ता है और वर्ष पूर्ण होनेपर दूध देनेवाली गौ दान करता है, उसे देवीलोककी प्राप्ति होती है। इसका नाम 'भवानीव्रत' है।

जो माघभर गीला वस्त्र पहनता और सप्तमीको गोदान करता है, वह कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास करके अन्तमें इस पृथ्वीपर राजा होता है। इसे 'तापकव्रत' कहते हैं। जो तीन रात उपवास करके फाल्गुनकी पूर्णिमाको घरका दान करता है, उसे आदित्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'धामव्रत' है। जो व्रत रहकर तीनों सन्ध्याओंमें—प्रातः, मध्याह एवं सायंकालमें भूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतीकी पूजा करता है, उसे मोक्ष मिलता है। यह 'मोक्षव्रत' है। जो शुक्लपक्षकी द्वितीयाके दिन ब्राह्मणको नमकसे भरा हुआ पात्र, वस्त्रसे ढका हुआ काँसेका बर्तन तथा दक्षिणा देता है और व्रत समाप्त होनेपर गोदान करता है, वह भगवान् श्रीशिवके लोकमें जाता है तथा एक कल्पके बाद राजाओंका भी राजा होता है। इसका नाम 'सोमव्रत' है। जो हर प्रतिपदाको

एक ही अन्रका भोजन और वर्ष समाप्त होनेपर कमलका दान करता है, वह वैश्वानरलोकमें जाता है। इसे 'अभिव्रत' कहते हैं। जो प्रत्येक दशमीको एक ही अन्रका भोजन और वर्ष समाप्त होनेपर दस गौँैं तथा सोनेका दीप दान करता है, वह ब्रह्माण्डका स्वामी होता है। इसका नाम 'विश्वव्रत' है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो स्वयं कन्यादान करता तथा दूसरेकी कन्याओंका विवाह करा देता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंसहित ब्रह्मलोकमें जाता है। कन्या-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। विशेषतः पुष्करमें और वहाँ भी कार्तिकी पूर्णिमाको, जो कन्या-दान करेंगे, उनका स्वर्गमें अक्षय वास होगा। जो मनुष्य जलमें खड़े होकर तिलकी पीठीके बने हुए हाथीको रत्नोंसे विभूषित करके ब्राह्मणको दान देते हैं, उन्हें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक इन उत्तम ब्रतोंका वर्णन पढ़ता और सुनता है, वह सौ मन्वन्तरोंतक गन्धवोंका स्वामी होता है।

स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न मनकी ही शुद्धि होती है, अतः मनकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नानका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। [किसी जलाशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।] मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'— यह मूलमन्त्र बताया गया है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्राङ्कित वाक्योंद्वारा भगवती गङ्गाका आवाहन करे—गङ्गे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो; श्रीविष्णु ही

तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो! स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, यह वायु देवताका कथन है। माता जाह्नवी! वे सभी तीर्थ तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके सिवा दक्षा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, महादेवी, लोक-प्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि तुम्हारे अनेकों नाम हैं।'* जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगमिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती है।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार मस्तकपर डालें; फिर विधिपूर्वक मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करके अपने अङ्गोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥

(२०। १५५, १५७)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, मेरे उन सब पापोंको तुम हर लो। देवि! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके लिये अरणीके समान हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

* विष्णुप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। पाहि नस्त्वेनस्त्वस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
तिस्मः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता॥
विद्याधरी महादेवी तथा लोकप्रसादिनी। क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥

इस प्रकार मृत्तिका लगाकर पुनः स्नान करे । फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चहर धारण कर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे । सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण करे । तत्पश्चात् देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराएँ, क्रूर सर्प, गरुड़ पक्षी, वृक्ष, जप्तक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ—यह कहकर उन सबको जलगङ्गलि दे । * देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर डाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे । ‘सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोदु और पञ्चशिख—ये सभी मेरे दिये जलसे सदा तृप्त हों ।’ ऐसी भावना करके जल दे । † इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे । इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर बैठे; फिर अग्रिष्ठात्, सौम्य, हविष्यान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा आज्यप नामके पितरोंका तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे । इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्रभावसे परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदिका, नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे । इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ॥

ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽप्यस्मत्तोयकाङ्क्षणः ।

(२० | १६९-७०)

‘जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों । उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति लाभ करें ।’ [ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल गिराये ।]

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये । फिर यत्नपूर्वक सूर्यदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रत्नचन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य दे । अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ।
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ॥
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ।
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ॥
नमस्ते सर्वलोकेषु सुप्तांस्तान् प्रतिबुध्यसे ।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वदा ॥
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥

(२० | १७२—७५)

‘भगवान् सूर्य ! आप विश्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है । आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है । भक्तवत्सल ! रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको बारम्बार नमस्कार है । कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषणोंसे विभूषित पद्मनाभ ! आपको नमस्कार है । भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोकोंके सोये हुए जीवोंको जगाते हैं, आपको मेरा प्रणाम है । आप सदा सबके पाप-पुण्यको देखा करते हैं । सत्यदेव ! आपको नमस्कार है । भास्कर ! मुझपर प्रसन्न होइये । दिवाकर !

* देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वास्मरसां वराः ॥

क्रूरः सर्पाः सुपर्णश्च तर्वो जप्तकादयः । विद्याधरा निराधाराश्च ये जीवा पापे धर्मे रताश्च ये । तेषामायायनं चैव दीयते सलिलं मया ॥

जलधरास्तथैवाकाशगामिनः ॥

(२० | १५९—६१)

† सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । कपिलशासुरिश्चैव वोदुः पञ्चशिखस्तथा ॥
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुद्धा सदा ।

(२० | १६२—६४)

आपको नमस्कार है। प्रभाकर ! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार करके तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श करके अपने घरमें जाय और वहाँ भगवान्‌की पावन प्रतिमाका पूजन करे। [तदनन्तर भगवान्‌को भोग लगाकर बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात्] पहले ब्राह्मणोंको भोजन करा पीछे स्वयं भोजन करे। इस विधिसे नित्य-कर्म करके समस्त ऋषियोंने सिद्धि प्राप्त की है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! पूर्वकालकी बात है—बृहत् नामक कल्पमें धर्ममूर्ति नामके एक राजा थे, जिनकी इन्द्रके साथ मित्रता थी। उन्होंने सहस्रों दैत्योंका वध किया था। सूर्य और चन्द्रमा भी उनके तेजके सामने प्रभाहीन जान पड़ते थे। उन्होंने सैकड़ों शत्रुओंको परास्त किया था। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। मनुष्योंसे उनकी कभी पराजय नहीं हुई थी। उनकी पलीका नाम था भानुमती। वह त्रिभुवनमें सबसे सुन्दरी थी। उसने लक्ष्मीकी भाँति अपने रूपसे देवसुन्दरियोंको भी मात कर दिया था। भानुमती ही राजाकी पटरानी थी। वे उसे प्राणोंसे भी बढ़कर मानते थे। एक दिन राजसभामें बैठे हुए महाराज धर्ममूर्तिने विस्मय-विमुग्ध हो अपने पुरोहित मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको प्रणाम करके पूछा—‘भगवन् ! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वोत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है ? मेरे शरीरमें जो सदा उत्तम और विपुल तेज भरा रहता है—इसका क्या कारण है ?’

वसिष्ठजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें एक लीलावती नामकी वेश्या थी, जो सदा भगवान् शङ्करके भजनमें तत्पर रहती थी। एक बार उसने पुष्करमें चतुर्दशीको नमकका पहाड़ बनाकर सोनेकी बनी देवप्रतिमाके साथ विधिपूर्वक दान किया था। शुद्ध नामका एक सुनार था, जो लीलावतीके घरमें नौकरका काम करता था। उसीने बड़ी श्रद्धाके साथ मुख्य-मुख्य देवताओंकी सुवर्णमयी प्रतिमाएँ बनायी थीं, जो देखनेमें

अत्यन्त सुन्दर तथा शोभासम्पन्न थीं। धर्मका काम समझकर उसने उन प्रतिमाओंके बनानेकी मजदूरी नहीं ली थी। उस नमकके पर्वतपर जो सोनेके वृक्ष लाये गये थे, उन्हें उस सुनारकी खीने तपाकर देदीप्यमान बनाया था। [सुनारकी पली भी लीलावतीके अपरिचारिकाका काम करती थी।] उन्हीं दोनोंने ब्राह्मणोंके सेवासे लेकर सारा कार्य सम्पन्न किया था। तदनन्तर दीर्घ कालके पश्चात् लीलावती वेश्या सब पापोंसे मुक्त होकर शिवजीके धामको चली गयी तथा वह सुनार, जो दरिद्र होनेपर भी अत्यन्त सत्त्विक था और जिसे वेश्यासे मजदूरी नहीं ली थी, आप ही हैं। उसी पुण्यके प्रभावसे आप सातों द्वीपोंके स्वामी तथा हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी हुए हैं। सुनारकी ही भाँति उसकी पलीमें भी सोनेके वृक्षों और देवमूर्तियोंको कान्तिमान् बनाया था, इसलिये वही आपकी महारानी भानुमती हुई है। प्रतिमाओंको जगमग बनानेके कारण महारानीका रूप अत्यन्त सुन्दर हुआ है। और उसी पुण्यके प्रभावसे आप मनुष्यलोकमें अपराजित हुए हैं तथा आपको आरोग्य और सौभाग्यसे युक्त राजलक्ष्मी प्राप्त हुई है; इसलिये आप भी विधिपूर्वक धान्य-पर्वत आदि दस प्रकारके पर्वत बनाकर उनका दान कीजिये।

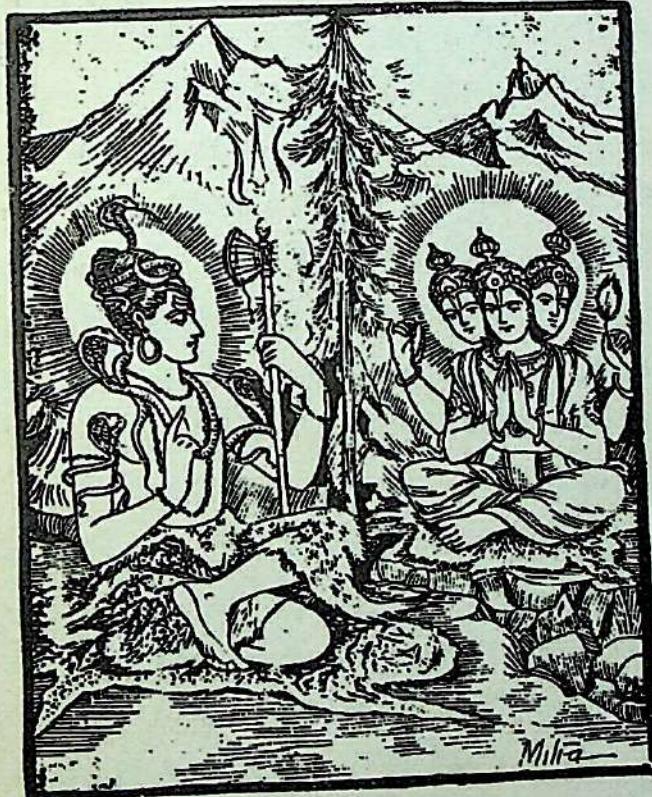
पुलस्त्यजी कहते हैं—राजा धर्ममूर्तिने ‘बहुत अच्छा’ कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और अनाज आदिके पर्वत बनाकर उन सबका विधिपूर्वक दान किया। तत्पश्चात् वे देवताओंसे पूजित होकर महादेवजीके परम धामको चले गये। जो मनुष्य इस प्रसङ्गका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह भी पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। राजन् ! अत्रादि पर्वतोंके दानका पाठमात्र करनेसे दुःखप्रोंका नाश हो जाता है; फिर जो इस पुष्कर क्षेत्रमें शान्तचित्त होकर सब प्रकारके पर्वतोंका स्वयं दान करता है, उसको मिलनेवाले फलका क्या वर्णन हो सकता है।



भीमद्वादशी-ब्रतका विधान

भीष्मजीने कहा—विप्रवर ! भगवान् शङ्करने जिन वैष्णव-धर्मोंका उपदेश किया है, उनका मुझसे वर्णन कीजिये । वे कैसे हैं और उनका फल क्या है ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! प्राचीन रथन्तर कल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शङ्कर मन्दराचल-पर विराजमान थे । उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर पूछा—‘परमेश्वर ! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?’ ब्रह्माजीके



इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले ।

महादेवजीने कहा—एक समय द्वारकाकी सभामें अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण वृष्णिवंशी पुरुषों, विद्वानों, कौरवों और देव-गन्धर्वोंके साथ बैठे हुए थे । धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली पौराणिक कथाएँ हो रही थीं । इसी समय भीमसेनने भगवान्-से परमपदकी प्राप्तिके विषयमें पूछा । उनका प्रश्न सुनकर भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—‘भीम ! मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका

परिचय देता हूँ । उस दिन निम्राङ्कित विधिसे उपवास करके तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो । जिस दिन माघ मासकी दशमी तिथि आये, उस दिन समस्त शरीरमें धी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा ‘ॐ नमो नारायणाय’ इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे । ‘कृष्णाय नमः’ कहकर दोनों चरणोंकी ओर ‘सर्वात्मने नमः’ कहकर मस्तककी पूजा करे । ‘वैकुण्ठाय नमः’ इस मन्त्रसे कण्ठकी ओर ‘श्रीवत्सधारिणे नमः’ इससे हृदयकी अर्चा करे । फिर ‘शङ्खाने नमः’, ‘चक्रिणे नमः’, ‘गदाने नमः’, ‘वरदाय नमः’ तथा ‘सर्व नारायणः’ (सब कुछ नारायण ही है) —ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्-की पूजा करे । इसके बाद ‘दामोदराय नमः’ कहकर उदरका, ‘पञ्चजनाय नमः’ इस मन्त्रसे कमरका, ‘सौभाग्यनाथाय नमः’ इससे दोनों जाँघोंका, ‘भूतधारिणे नमः’ से दोनों घुटनोंका, ‘नीलाय नमः’ इस मन्त्रसे पिंडलियों (घुटनेसे नीचेके भाग) का और ‘विश्वसुजे नमः’ इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे । तत्पश्चात् ‘देव्यै नमः’, ‘शान्त्यै नमः’, ‘लक्ष्यै नमः’, श्रियै नमः’, ‘तुष्ट्यै नमः’, ‘पुष्ट्यै नमः’, ‘व्युष्ट्यै नमः’ —इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे । इसके बाद ‘वायुवेगाय नमः’, ‘पक्षिणे नमः’, ‘विषप्रमथनाय नमः’, ‘विहङ्गनाथाय नमः’ —इन मन्त्रोंके द्वारा गरुड़की पूजा करनी चाहिये ।

इसी प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे । फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर धीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे । भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खौरकी दाँतन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे; फिर मुँह धोकर आचमन करे । सूर्यास्त होनेके बाद उत्तराभिमुख बैठकर सायङ्कालकी सन्ध्या करे । उसके अन्तमें यह कहे—‘भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है । भगवन् ।

मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'* [इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे।]

दूसरे दिन एकादशीको निराहार रहकर भगवान् केशवकी पूजा करे और रातभर बैठा रहकर शेषशायी भगवान्‌की आराधना करे। फिर अग्रिमें धीकी आहुति देकर प्रार्थना करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष ! मैं द्वादशीको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ हीं खीरका भोजन करूँगा। मेरा यह व्रत निर्विघ्रतापूर्वक पूर्ण हो।' यह कहकर इतिहास-पुराणकी कथा सुननेके पश्चात् शयन करे। सबेरा होनेपर नदीमें जाकर प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। पाखण्डियोंके संसर्गसे दूर रहे। विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करके पितरोंका तर्पण करे। फिर शेषशायी भगवान्‌को प्रणाम करके घरके सामने भक्तिपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये। उसके भीतर चार हाथकी सुन्दर वेदी बनवाये। वेदीके ऊपर दस हाथका तोरण लगाये। फिर सुदृढ़ खंभोंके आधारपर एक कलश रखे, उसमें नीचेकी ओर उड़दके दानेके बराबर छेद कर दे। तदनन्तर उसे जलसे भरे और स्वयं उसके नीचे काला मृगचर्म बिछाकर बैठ जाय। कलशसे गिरती हुई धाराको सारी रात अपने मस्तकपर धारण करे। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने धाराओंकी अधिकताके अनुपातसे फलमें भी अधिकता बतलायी है; इसलिये व्रत करनेवाले द्विजको चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक उसे धारण करे। दक्षिण दिशाकी ओर अर्धचन्द्रके समान, पश्चिमकी ओर गोल तथा उत्तरकी ओर पीपलके पत्तेकी आकृतिका मण्डल बनवाये। वैष्णव द्विजको मध्यमें कमलके आकारका मण्डल बनवाना चाहिये। पूर्वकी ओर जो वेदीका स्थान है, उसके दक्षिण ओर भी एक दूसरी वेदी बनवाये। भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर हो पूर्वोक्त जलकी धाराको बराबर मस्तकपर धारण करता रहे। दूसरी वेदी भगवान्‌की स्थापनाके लिये हो। उसके ऊपर कर्णिकासहित कमलकी आकृति बनाये और उसके मध्यभागमें भगवान् पुरुषोत्तमको विराजमान करे। उनके निमित्त एक कुण्ड बनवाये, जो हाथभर लम्बा, उतना ही

चौड़ा और उतना ही गहरा हो। उसके ऊपरी किनारे तीन मेखलाएँ बनवाये। उसमें यथास्थान योनि और मुखके चिह्न बनवाये। तदनन्तर ब्राह्मण [कुण्डमें अविप्रज्वलित करके] जौ, धी और तिलोंका श्रीविष्णु-सम्बन्धी मन्त्रोद्घारा हवन करे। इस प्रकार वहाँ विष्णुपूर्वक वैष्णवयागका सम्पादन करे। फिर कुण्डके मध्यमें यलपूर्वक धीकी धारा गिराये, देवाधिदेव भगवान्‌के श्रीविग्रहपर दूधकी धारा छोड़े तथा अपने मस्तकपर पूर्वोक्त जलधाराको धारण करे। धीकी धारा मटक्के दालके बराबर मोटी होनी चाहिये। परन्तु दूध और जलकी धाराको अपनी इच्छाके अनुसार मोटी या पतली किया जा सकता है। ये धाराएँ रातभर अविच्छिन्न रूपसे गिरती रहनी चाहिये। फिर जलसे भरे हुए तेह कलशोंकी स्थापना करे। वे नाना प्रकारके भक्षपदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलङ्कृत होने चाहिये। उनके साथ चँदोवा, उदुम्बर-पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है। वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विष्णुरुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण वैष्णव-सामका गायन करते रहें। उपर्युक्त बराबर ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अङ्गूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शश्या आदि देकर उनका पूर्ण सल्कार करे। इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे।

इस प्रकार गीत और माझ़लिक शब्दोंके साथ गति व्यतीत करे। उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित) को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे। रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर [नित्यकर्मके पश्चात्] तेरह गौएँ दान करनी चाहिये। उनके साथकी समस्त सामग्री सोनेकी होनी चाहिये। वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सुशीला हों। उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसें मँडे हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो। गौओंके साथ काँसीका दोहनपात्र भी होना

चाहिये। गोदानके पश्चात् ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे तृप्त करके नाना प्रकारके वस्त्र दान करे। फिर स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे। पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों। श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं। मैं इन दोनोंमें अन्तर नहीं देखता—इस धारणासे मेरा कल्याण हो।’* यह कहकर उन कलशों, गौओं, शश्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणोंके घर पहुँचवा दे। अधिक शश्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही शश्याको सब सामानोंसे सुसज्जित करके दान करे। भीमसेन ! वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये। अतः तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्याग करके इस व्रतका अनुष्ठान करो। यह बहुत गुप्त व्रत है, किन्तु स्नेहवश मैंने तुम्हें बता दिया है। वीर ! तुम्हरे द्वारा इसका अनुष्ठान होनेपर यह व्रत तुम्हरे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। इसे लोग ‘भीमद्वादशी’ कहेंगे। यह भीमद्वादशी सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी होगी। प्राचीन कल्पोंमें इस व्रतको ‘कल्याणिनी’ व्रत कहा जाता था।

इसका स्मरण और कीर्तनमात्र करनेसे देवराज इन्द्रका सारा पाप नष्ट हो गया था। इसीके अनुष्ठानसे मेरी प्रिया सत्यभामाने मुझे पतिरूपमें प्राप्त किया। इस कल्याणमयी तिथिको सूर्यदेवने सहस्रों धाराओंसे स्नान किया था, जिससे उन्हें तेजोमय शरीरकी प्राप्ति हुई। इन्द्रादि देवताओं तथा करोड़ों दैत्योंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया है। यदि एक मुखमें दस हजार करोड़ (एक खरब) जिह्वाएँ हों तो भी इसके फलका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता।

महादेवजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! कलियुगके पापोंको नष्ट करनेवाली एवं अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस कल्याणमयी तिथिकी महिमाका वर्णन यादवराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे करेंगे। जो इसके व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए पितरोंका भी यह उद्धार करनेमें समर्थ है। जो अत्यन्त भक्तिके साथ इस कथाको सुनता तथा दूसरोंके उपकारके लिये पढ़ता है, वह भगवान् श्रीविष्णुका भक्त और इन्द्रका भी पूज्य होता है। पूर्व कल्पमें जो माघ मासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही धार्ढुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी ‘भीमद्वादशी’के नामसे प्रसिद्ध होगी।

————★————

आदित्य-शयन और रोहिणी-चन्द्र-शयन-व्रत, तडागकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि तथा सौभाग्य-शयन-व्रतका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! जो अभ्यास न होनेके कारण अथवा रोगवश उपवास करनेमें असमर्थ है, किन्तु उसका फल चाहता है, उसके लिये कौन-सा व्रत उत्तम है—यह बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! जो लोग उपवास करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये वही व्रत अभीष्ट है,

जिसमें दिनभर उपवास करके रात्रिमें भोजनका विधान हो; मैं ऐसे महान् व्रतका परिचय देता हूँ सुनो। उस व्रतका नाम है—आदित्य-शयन। उसमें विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा की जाती है। पुराणोंके ज्ञाता महर्षि जिन नक्षत्रोंके योगमें इस व्रतका उपदेश करते हैं, उन्हें बताता हूँ। जब सप्तमी तिथिको हस्त नक्षत्रके साथ

* प्रीयताम्ब्र देवेशः केशवः लेशनाशनः ॥

शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः। यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः ॥

रविवार हो अथवा सूर्यकी संक्रान्ति हो, वह तिथि समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली होती है। उस दिन सूर्यके नामोंसे भगवती पार्वती और महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। सूर्यदेवकी प्रतिमा तथा शिवलिङ्गका भी भक्ति-पूर्वक पूजन करना उचित है। हस्त नक्षत्रमें 'सूर्याय नमः'का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रा नक्षत्रमें 'अर्काय नमः' कहकर उनके गुलफों (घुड़ियों)की, स्वाती नक्षत्रमें 'पुरुषोत्तमाय नमः'से पिंडलियोंकी, विशाखामें 'धात्रे नमः'से घुटनोंकी तथा अनुराधामें 'सहस्रभानवे नमः'से दोनों जाँधोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठा नक्षत्रमें 'अनङ्गाय नमः' से गुह्य प्रदेशकी, मूलमें 'इङ्गाय नमः' और 'भीमाय नमः'से कटिभागकी, पूर्वांशाढा और उत्तरांशाढामें 'त्वष्ट्रे नमः' और 'सप्तुरङ्गमाय नमः'से नाभिकी, श्रवणमें 'तीक्ष्णांशवे नमः'से उदरकी, धनिष्ठामें 'विकर्तनाय नमः'से दोनों बगलोंकी और शतभिषा नक्षत्रमें 'ध्वन्तविनाशनाय नमः'से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वा और उत्तरा भाद्रपदामें 'चण्डकराय नमः'से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें 'साम्रामधीशाय नमः'से दोनों हाथोंका, अश्विनीमें 'सप्ताश्वधुरन्धराय नमः'से नखोंका और भरणीमें 'दिवाकराय नमः'से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन करे। कृत्तिकामें ग्रीवाकी, रोहिणीमें ओठोंकी, मृगशिरामें जिह्वाकी तथा आद्रमें 'हरये नमः'से सूर्यदेवके दाँतोंकी अर्चना करे। पुनर्वसुमें 'सवित्रे नमः'से शङ्खरजीकी नासिकाका, पुष्यमें 'अष्टोरुहवल्लभाय नमः'से ललाटका तथा 'वैदशारीरथारिणे नमः'से बालोंका, आश्लेषामें 'विबुधप्रियाय नमः'से मस्तकका, मघामें दोनों कानोंका, पूर्वों फाल्गुनीमें 'गोब्राह्मणनन्दनाय नमः'से शम्भुके सम्पूर्ण अङ्गोंका तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें 'विश्वेश्वराय नमः'से उनकी दोनों भौंहोंका पूजन करे। 'पाश, अङ्कुश, कमल, त्रिशूल, कपाल, सर्प, चन्द्रमा

तथा धनुष धारण करनेवाले श्रीमहादेवजीको नमस्कार है।'* 'गयासुर, कामदेव, त्रिपुर और अन्धकासुर आदिके विनाशके मूल कारण भगवान् श्रीशिवको प्रणाम है।† इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करके प्रत्येक अङ्गकी पूजा करनेके पश्चात् 'विश्वेश्वराय नमः'से भगवान्के मस्तकका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अन्न भोजन करना उचित है। भोजनमें तेल और खारे नमकका सम्पर्क नहीं रहना चाहिये। मांस और उच्छिष्ट अन्नका तो कदापि सेवन न करे।

राजन्! इस प्रकार रात्रिमें शुद्ध भोजन करके पुनर्वसु नक्षत्रमें दान करना चाहिये। किसी बर्तनमें एक सेर अगहनीका चावल, गूलरकी लकड़ीका पात्र तथा घृत रखकर सुवर्णके साथ उसे ब्राह्मणको दान करे। सातवें दिनके पारणमें और दिनोंकी अपेक्षा एक जोड़ा वस्त्र अधिक दान करना चाहिये। चौदहवें दिनके पारणमें गुड़, खीर और घृत आदिके द्वारा ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। तदनन्तर कर्णिकासहित सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जो आठ अङ्गुलका हो तथा जिसमें पद्मरागमणि (नीलम) की पत्तियाँ अङ्कित की गयी हों। फिर सुन्दर शश्या तैयार करावे, जिसपर सुन्दर बिछौने बिछाकर तकिया रखा गया हो और ऊपरसे चँदोवा तना हो। शश्याके ऊपर पंखा रखा गया हो। उसके आस-पास खड़ाऊँ, जूता, छत्र, चँवर, आसन और दर्पण रखे गये हों। फल, वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे वह शश्या सुशोभित होनी चाहिये। ऊपर बताये हुए सोनेके कमलको उस शश्यापर रख दे। इसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूध देनेवाली अत्यन्त सीधी कपिल मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूध देनेवाली अत्यन्त सीधी कपिल गौका दान करे। वह गौ उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, उसके खुर चाँदीसे और सींग सोनेसे मँडे होने चाहिये। उसके खुर चाँदीसे और सींग सोनेसे मँडे होने चाहिये। तथा उसके साथ काँसीकी दोहनी होनी चाहिये। दिनके पूर्व भागमें ही दान करना उचित है। समयका उल्लङ्घन

* पाशाङ्कुशापद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय नमः।

† गयासुरमहगणपुराणकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय।

कंदापि नहीं करना चाहिये। शश्यादानके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—‘सूर्यदेव ! जिस प्रकार आपकी शश्या कान्ति, धृति, श्री और पुष्टिसे कभी सूनी नहीं होती, वैसे ही मेरी भी वृद्धि हो। वेदोंके विद्वान् आपके सिवा और किसीको निष्पाप नहीं जानते, इसलिये आप सम्पूर्ण दुःखोंसे भरे हुए इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।’ इसके पश्चात् भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विसर्जन करे। शश्या और गौ आदिको ब्राह्मणके घर पहुँचा दे।

भगवान् शङ्करके इस व्रतकी चर्चा दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे। भगवान्‌के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही यह आनन्ददायी एवं कल्याणमय गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह व्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे कभी रोग, दुःख और मोहका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीन कालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक व्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है।

भीष्मजीने कहा—मुने ! अब आप चन्द्रमाके व्रतका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे

पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं। इस लोकमें ‘रोहिणी-चन्द्र-शयन’ नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है। इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणी नक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सबेरे पञ्चगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष ‘आप्यायस्वं’ इत्यादि मन्त्रको आठ सौ बार जपे। यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक ‘सोमाय नमः’, ‘वरदाय नमः’, ‘विष्णावे नमः’—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियोंसे—विधर्मियोंसे बातचीत न करे। जप करनेके पश्चात् घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे। साथ ही चन्द्रमाके नामोंका उच्चारण करता रहे। ‘सोमाय शान्ताय नमः’ कहकर भगवान्‌के चरणोंका, ‘अनन्तधामे नमः’ का उच्चारण करके उनके घुटनों और पिडलियोंका, ‘जलेदाय नमः’ से दोनों जाँघोंका, ‘कामसुखप्रदाय नमः’ से चन्द्रस्वरूप भगवान्‌के कटिभागका, ‘अमृतोदराय नमः’ से उदरका, ‘शशाङ्काय नमः’ से नाभिका, ‘चन्द्राय नमः’ से मुखमण्डलका, ‘द्विजानामधिपाय नमः’ से दाँतोंका, ‘चन्द्रमसे नमः’ से मुँहका, ‘कौमोदवनप्रियाय नमः’ से ओठोंका, ‘वनौषधीनामधिनाथाय नमः’ से नासिकाका, ‘आनन्दबीजाय नमः’ से दोनों भौंहोंका, ‘इन्दीवरव्यासकराय नमः’ से भगवान् श्रीकृष्णके कमल-सदृश नेत्रोंका, ‘समस्तासुरवन्दिताय दैत्यनिषूदनाय नमः’ से दोनों कानोंका, ‘उदधिप्रियाय नमः’ से चन्द्रमाके ललाटका, ‘सुषुप्राधिपतये नमः’ से केशोंका, ‘शशाङ्काय नमः’ से मस्तकका और ‘विश्वेश्वराय नमः’ से भगवान् मुरारिके किरीटका पूजन करे। फिर ‘रोहिणीनामधेयलक्ष्मीसौभाग्यसौख्यामृत-सागराय पद्मश्रिये नमः’ (रोहिणी नाम धारण करनेवाली लक्ष्मीके सौभाग्य और सुखरूप अमृतके समुद्र तथा कमलकी-सी कान्तिवाले भगवान्‌को नमस्कार है) —इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌के सामने

मस्तक झुकाये । तत्पश्चात् सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य और धूप आदिके द्वारा इन्दुपली रोहिणी देवीका भी पूजन करे ।

इसके बाद रात्रिके समय भूमिपर शयन करे और सबेरे उठकर स्नानके पश्चात् 'पापविनाशाय नमः' का उच्चारण करके ब्राह्मणको घृत और सुवर्णसहित जलसे भरा कलश दान करे । फिर दिनभर उपवास करनेके पश्चात् गोमूत्र पीकर मांसवर्जित एवं खारे नमकसे रहित अत्रके इकतीस ग्रास धीके साथ भोजन करे । तदनन्तर दो घड़ीतक इतिहास, पुराण आदिका श्रवण करे । राजन् ! चन्द्रमाको कदम्ब, नील कमल, केवड़ा, जाती पुष्प, कमल, शतपत्रिका, बिना कुम्हलाये कुञ्जके फूल, सिन्दुवार, चमेली, अन्यान्य श्वेत पुष्प, करवीर तथा चम्पा—ये ही फूल चढ़ाने चाहिये । उपर्युक्त फूलोंकी जातियोंमेंसे एक-एकको श्रावण आदि महीनोंमें क्रमशः अर्पण करे । जिस महीनेमें व्रत शुरू किया जाय, उस समय जो भी पुष्प सुलभ हों, उन्हींके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये ।

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शश्यादान करे । रोहिणी और चन्द्रमाकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये । उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये । आठ मोतियोंसे युक्त श्वेत नेत्रोंवाली उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसीके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे । फिर वस्त्र और दोहनीके साथ दूध देनेवाली गौ, शङ्ख तथा पात्र प्रस्तुत करे । उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतीको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलङ्कृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पतीके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं । तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—‘चन्द्रदेव ! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं । आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हों ।’ [इस प्रकार

विनय करके शश्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे ।]

राजन् ! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है । यह रूप और आरोग्य प्रदान करनेवाला है । यही पितरोंके सर्वदा प्रिय है । जो इसका अनुष्ठान करता है वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इक्कीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है । उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है । चन्द्रमाके नाम-कीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है ।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! अब मुझे तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिका विधान बतलाइये ।

पुलस्त्यजी बोले—महाबाहो ! सुनो; तालाब आदिकी प्रतिष्ठाका जो विधान है, उसका इतिहास-पुराणोंमें इस प्रकार वर्णन है । उत्तरायण आनेपर शुभ शुरू पक्षमें ब्राह्मणद्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा ले । उस दिन ब्राह्मणोंका वरण करे और तालाबके समीप, जहाँ कोई अपवित्र वस्तु न हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर वेदी बनाये । वेदी सब ओर समतल हो और चारों दिशाओंमें उसका मुख हो । फिर सोलह हाथका मण्डप तैयार कराये । जिसके चारों ओर एक-एक दरवाजा हो । वेदीके सब ओर कुण्डोंका निर्माण कराये । कुण्डोंकी संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिये । कुण्डोंकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक रत्निकी^१ हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओंसे सुशोभित हों । उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये । योनिकी लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अंगुलकी हो । मेखलाएँ तीन पर्व^२ ऊँची और एक हाथ लम्बी होनी

१. कोहनीसे लेकर मुट्ठी बैंधे हुए हाथतककी लम्बाईको 'रत्नि' या 'अरत्नि' कहते हैं ।

२. अंगुलियोंके पोरको 'पर्व' कहते हैं ।

चाहिये। वे चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायें। मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायें। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ही इस कार्यमें नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, निर्मल आसन और दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें।

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी बलि (दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंके द्वारा पृथ्वीपर सब देवताओंके लिये बलि समर्पण करे। अरतिके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले, वृक्षकी शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पच्चीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अँगूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषण प्रत्येक ऋत्विजको बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शश्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुन्दुभ, ताँबेके केंकड़ा और मेढ़क तथा लोहेके दो सूँस बनवाकर सबको सोनेके पात्रमें रखे। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वैषधि-मिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिमद्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। उस समय माझलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् पुरुष पाँच रंगके चूर्णोंसे मण्डल बनाये और उसमें सोलह अरोंसे युक्त चक्र चिह्नित करे। उसके गर्भमें कमलका आकार बनाये। चक्र देखनेमें सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओरसे गोल होनेके साथ ही मध्यभागमें अधिक शोभायमान जान पड़ता हो। उस चक्रको वेदीके ऊपर स्थापित करके उसके चारों ओर प्रत्येक दिशामें मन्त्र-पाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालोंकी स्थापना करे। फिर मध्यभागमें वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करे और उसीके ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वतीकी भी स्थापना करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये भूतसमुदायको स्थापित करे। इस प्रकार पुष्प, चन्दन और फलोंके द्वारा सबकी स्थापना करके कलशोंके भीतर पञ्चरत्न छोड़कर उन्हें वस्त्रोंसे आवेषित कर दे। फिर पुष्प और चन्दनके द्वारा उन्हें अलङ्कृत करके द्वार-रक्षाके लिये नियुक्त ब्राह्मणोंसे वेदपाठ करनेके लिये कहे और स्वयं आचार्यका पूजन करे। पूर्व दिशाकी ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिणद्वारपर दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वारपर दो सामवेदी तथा उत्तरद्वारपर दो अथर्ववेदी विद्वानोंको रखना चाहिये। यजमान मण्डलके दक्षिण-भागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और द्वार-रक्षक विद्वानोंसे कहे—‘आपलोग वेदपाठ करें।’ फिर यज्ञ करानेवाले आचार्यसे कहे—‘आप यज्ञ प्रारम्भ करायें।’ तत्पश्चात् जप करनेवाले ब्राह्मणोंसे कहे—‘आपलोग उत्तम मन्त्रका जप करते रहें।’ इस प्रकार सबको प्रेरित करके मन्त्रज पुरुष अग्निको प्रज्वलित करे तथा मन्त्र-पाठपूर्वक घी और समिधाओंकी आहुति दे। ऋत्विजोंको भी वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा सब ओरसे हवन करना चाहिये। ग्रहोंके निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यजकर्ममें इन्द्र, शिव, मरुदण्ड और लोकपालोंके निमित्त भी विधिपूर्वक होम करे।

पूर्वद्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्ति, रुद्र, पवमान, सुमङ्गल तथा पुरुषसम्बन्धी सूक्तोंका पृथक्-पृथक् जप करे। दक्षिणद्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र, रुद्र, सोम, कूष्माण्ड, अग्नि तथा सूर्य-सम्बन्धी

सूक्तोंका जप करे। पश्चिमद्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम, पुरुषसूक्त, सुपर्णसूक्त, रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम, वामदेव्यसाम, बृहत्साम, रौरवसाम, रथन्तरसाम, गोब्रत, विकीर्ण, रक्षोग्र और यम-सम्बन्धी सामोंका गान करें। उत्तर द्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें। इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी तथा साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी मिट्टी लेकर कलशोंमें छोड़ दे। उसके बाद सर्वोषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़। फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे। अभिषेकके समय विद्वान् पुरुष वेदमन्त्रोंका पाठ करते रहें।

इस प्रकार शास्त्रविहित कर्मके द्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभातका उदय होनेपर हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको सौ, पचास, छत्तीस अथवा पचीस गौ दान करे। तदनन्तर शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आनेपर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनिके साथ एक गौको सुवर्णसे अलङ्कृत करके तालाबके जलमें उतारे और उसे सामगान करनेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् पञ्चरत्नोंसे युक्त सोनेका पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदिको रखे और उसे किसी बड़ी नदीसे मँगाये हुए जलसे भर दे। फिर उस पात्रको दही-अक्षतसे विभूषित करके वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् चार ब्राह्मण हाथसे पकड़ें और यजमानकी प्रेरणासे उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाबके जलमें डाल दें। इस प्रकार 'आयो मयो' इत्यादि मन्त्रके द्वारा उसे जलमें डालकर पुनः सब लोग यज्ञ-मण्डपमें आ जाऊँ और यजमान सदस्योंकी पूजा करके सब ओर देवताओंके उद्देश्यसे बलि अर्पण करे। इसके बाद लगातार चार दिनोंतक हवन होना चाहिये। चौथे दिन चतुर्थी-कर्म

करना उचित है। उसमें भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। चतुर्थी-कर्म पूर्ण करके यज्ञ-सम्बन्धी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें त्रैत्विजोंमें बराबर बाँट देना चाहिये। फिर मण्डपको भी विभाजित करे। सुवर्णपत्र और शश्या किसी ब्राह्मणको दान कर दे। इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। पुराणोंमें तालाबकी प्रतिष्ठाके लिये यही विधि बतलायी गयी है। कुआँ, बावली और पुष्करिणीके लिये भी यही विधि है। देवताओंकी प्रतिष्ठामें भी ऐसा ही विधान समझना चाहिये। मन्दिर और बगीचे आदिके प्रतिष्ठा-कार्यमें केवल मन्त्रोंका ही भेद है। विधि-विधान प्रायः एक-से ही है। उपर्युक्त विधिका यदि पूर्णतया पालन करनेकी शक्ति न हो तो आधे व्ययसे भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्माजीने कही है।

जिस पोखरेमें केवल वर्षाकालमें ही जल रहता है, वह सौ अग्निष्टोम यज्ञोंके बराबर फल देनेवाला होता है। जिसमें शरत्कालतक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकालतक रहनेवाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञका फल देता है। वसन्तकालतक टिकनेवाले जलको अश्वमेध यज्ञके समान फलदायक बतलाया गया है तथा जो जल ग्रीष्म-कालतक मौजूद रहता है, वह राजसूय यज्ञसे भी अधिक फल देनेवाला होता है।

महाराज ! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है—विधिपूर्वक कुआँ, बावली, पोखरा आदि खुदवाता है तथा मन्दिर, बगीचा आदि बनवाता है, वह शुद्धचित होकर ब्रह्माजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेकों कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है। दो परार्द्ध (ब्रह्माजीकी आयु) तक वहाँका सुख भोगनेके पश्चात् ब्रह्माजीके साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्म ! अब आप मुझे विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये। विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि मैं तुम्हें बतलाता हूँ। तालाबकी प्रतिष्ठाके विषयमें जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि पूर्ण करके वृक्षके पौधोंको सर्वोषधि-मिश्रित जलसे सूंचे। फिर उनके ऊपर दही और अक्षत छोड़े। उसके बाद उन्हें पुष्प-मालाओंसे अलङ्कृत करके वस्त्रमें लपेट दे। वहाँ गूगलका धूप देना श्रेष्ठ माना गया है। वृक्षोंको पृथक्-पृथक् ताम्रपात्रमें रखकर उन्हें सप्तधान्यसे आवृत करे तथा उनके ऊपर वस्त्र और चन्दन चढ़ाये। फिर प्रत्येक वृक्षके पास कलश स्थापन करके उन कलशोंकी पूजा करे। और रातमें द्विजातियों-द्वारा इन्द्रादि लोकपालों तथा वनस्पतिका विधिवत् अधिवास कराये। तदनन्तर दूध देनेवाली एक गौको लाकर उसे श्वेत वस्त्र ओढ़ाये। उसके मस्तकपर सोनेकी कलगी लगाये, सींगोंको सोनेसे मँड़ा दे। उसको दुहनेके लिये काँसेकी दोहनी प्रस्तुत करे। इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न उस गौको उत्तराभिमुख खड़ी करके वृक्षोंके बीचसे छोड़े। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण बाजों और मङ्गलगीतोंकी ध्वनिके साथ अभिषेकके मन्त्र—तीनों वेदोंकी वरुणसम्बन्धिनी ऋचाएँ पढ़ते हुए उत्तर कलशोंके जलसे यजमानका अभिषेक करें। अभिषेकके पश्चात् नहाकर यजकर्ता पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार गौ, सोनेकी जंजीर, कड़े, अँगूठी, पवित्री, वस्त्र, शश्या, शश्योपयोगी सामान तथा चरणपादुका देकर एकाग्र चित्तवाले सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन करे। इसके बाद चार दिनोंतक दूधसे अभिषेक तथा धी, जौ और काले तिलोंसे होम करे। होममें पलाश (ढाक) की लकड़ी उत्तम मानी गयी है। वृक्षारोपणके पश्चात् चौथे दिन विशेष उत्सव करे। उसमें अपनी शक्तिके अनुसार पुनः दक्षिणा दे। जो-जो वस्तु अपनेको अधिक प्रिय हो, ईर्ष्या छोड़कर उसका दान करे। आचार्यको दूनी दक्षिणा दे तथा प्रणाम करके यजकी समाप्ति करे।

जो विद्वान् उपर्युक्त विधिसे वृक्षारोपणका उत्सव करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा वह

अक्षय फलका भागी होता है। राजेन्द्र ! जो इस प्रकार वृक्षकी प्रतिष्ठा करता है, वह जबतक तीस हजार इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तबतक सर्वाङ्गलोकमें निवास करता है। उसके शरीरमें जितने रोम होते हैं, अपने पहले और पीछेकी उतनी ही पीढ़ियोंका वह उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्तिसे रहित परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रेसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह भी देवताओंद्वारा सम्मानित और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वृक्ष पुत्रहीन पुरुषको पुत्रवान् होनेका फल देते हैं। इतना ही नहीं, वे अधिदेवतारूपसे, तीर्थोंमें जाकर वृक्ष लगानेवालोंको पिंड भी देते हैं। अतः भीष्म ! तुम यत्नपूर्वक पीपलके वृक्ष लगाओ। वह अकेला ही तुम्हें एक हजार पुत्रोंका फल देगा। पीपलका पेड़ लगानेसे मनुष्य धनी होता है। अशोक शोकका नाश करनेवाला है। पाकड़ यजका फल देनेवाला बताया गया है। नीमका वृक्ष आयु प्रदान करनेवाला माना गया है। जामुन कन्या देनेवाला कहा गया है। अनारका वृक्ष पली प्रदान करता है। पीपल रोगका नाशक और पलाश ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य बहेड़ेका वृक्ष लगाता है, वह प्रेत होता है। अङ्गोल लगानेसे वंशकी वृद्धि होती है। खैरका वृक्ष लगानेसे आरोग्यकी प्राप्ति होती है। नीम लगानेवालोंपर भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं। बेलके वृक्षमें भगवान् शङ्खरका और गुलाबके पेड़में देवी पार्वतीका निवास है। अशोक वृक्षमें अप्सराएँ और कुन्द (मोगरे) के पेड़में श्रेष्ठ गन्धर्व निवास करते हैं। बेंतका वृक्ष लुटेरोंको भय प्रदान करनेवाला है। चन्दन और कटहलके वृक्ष क्रमशः पुण्य और लक्ष्मी देनेवाले हैं। चम्पाका वृक्ष सौभाग्य प्रदान करता है। ताढ़का वृक्ष सन्तानका नाश करनेवाला है। मौलसिरीसे कुलकी वृद्धि होती है। नारियल लगानेवाला अनेक स्त्रियोंका पति होता है। दाखका पेड़ सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री प्रदान करनेवाला है। केवड़ा शत्रुका नाश करनेवाला है। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्ष भी जिनका यहाँ नाम नहीं लिया गया है, यथायोग्य फल प्रदान करते हैं। जो लोग वृक्ष लगाते हैं, उन्हें [परलोकमें] प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! इसी प्रकार एक दूसरा व्रत बतलाता हूँ जो समस्त मनोवाच्छित फलोंको देनेवाला है। उसका नाम है—सौभाग्यशयन। इसे पुराणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब भूलोक, भुवर्लोक, स्वलोक तथा महलोक आदि सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्रित होकर वैकुण्ठमें जा भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहङ्कारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी भयङ्कर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्‌का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने नहीं पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। प्रजापति दक्षका बल और तेज बहुत बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, तरुराज, निष्पाव, राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ और कुसुम। आठवाँ नमक है। इन आठोंकी सौभाग्यष्टक संज्ञा कहते हैं।

योग और ज्ञानके तत्त्वको जाननेवाले ब्रह्मपुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्य-रसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। नील कमलके समान मनोहर शरीरवाली वह कन्या लोकमें ललिताके नामसे भी प्रसिद्ध है। पिनाकधारी भगवान् शङ्करने उस त्रिभुवनसुन्दरी देवीके साथ विवाह किया। सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। उनकी आराधना करके नर या नारी क्या नहीं प्राप्त कर सकती।

भीष्मजीने पूछा—मुने ! जगद्वात्री सतीको आराधना कैसे की जाती है ? जगत्की शान्तिके लिये जो विधान हो, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको दिनके पूर्व भागमें मनुष्य तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उस दिन परम सुन्दरी भगवती सतीका विश्वात्मा भगवान् शङ्करके साथ वैवाहिक मन्त्रोद्घारा विवाह हुआ था; अतः तृतीयाको सती देवीके साथ ही भगवान् शङ्करका भी पूजन करे। पञ्चगव्य तथा चन्दन-मिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोद्घारा उन दोनोंकी पूजा करनी चाहिये। ‘पार्वतीदेव्य नमः,’ ‘शिवाय नमः’ इन मन्त्रोंसे क्रमशः पार्वती और शिवके चरणोंका; ‘जयायै नमः,’ ‘शिवाय नमः’ से दोनोंकी घुड्डियोंका; ‘त्र्यम्बकाय नमः,’ ‘भवान्यै नमः’ से पिडलियोंका; ‘भद्रेश्वराय नमः,’ ‘विजयायै नमः’ से घुटनोंका; ‘हरिकेशाय नमः,’ ‘वरदायै नमः’ से जाँघोंका; ‘ईशाय शङ्कराय नमः,’ ‘रत्यै नमः’ से दोनोंके कटिभागका; ‘कोटिन्यै नमः,’ ‘शूलिने नमः’ से कुक्षिभागका; ‘शूलपाण्ये नमः,’ ‘मङ्गलायै नमः’ से उदरका; ‘सर्वात्मने नमः,’ ‘ईशान्यै नमः’ से दोनों स्तनोंका; ‘चिदात्मने नमः,’ ‘रुद्राण्यै नमः’ से कण्ठका; ‘त्रिपुरग्राय नमः,’ ‘अनन्तायै नमः’ से दोनों हाथोंका; ‘त्रिलोचनाय नमः,’ ‘कालानलप्रियायै नमः’ से बाँहोंका; ‘सौभाग्यभवनाय नमः’ से आभूषणोंका; ‘स्वधायै नमः,’ ‘ईश्वराय नमः’ से दोनोंके मुखमण्डलका; ‘अशोकवनवासिन्यै नमः’—इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका; ‘स्थाणवे नमः,’ ‘चन्द्रमुखप्रियायै नमः’ से मुँहका; ‘अर्द्धनारीश्वराय नमः,’ ‘असिताङ्ग्यै नमः’ से नासिकाका; ‘उआय नमः,’ ‘ललितायै नमः’ से दोनों धौंहोंका; ‘शर्वाय नमः,’ ‘वासुदेव्यै नमः’ से केशोंका; ‘श्रीकण्ठनाथाय नमः’ से केवल शिवके बालोंका तथा ‘भीमोग्रस्तपिण्यै नमः,’ ‘सर्वात्मने नमः’ से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे। इस प्रकार शिव और पार्वतीकी

विधिवत् पूजा करके उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे। निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीरजीरक, तरुराज, इक्षु, लवण, कुसुम तथा राजधान्य— इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है; इसलिये इनकी 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है। इस प्रकार शिव-पार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके चैतमें सिंघाड़ा खाकर रातको भूमिपर शयन करे। फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र हो माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललिता देवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे। दानके समय इस प्रकार कहे— 'ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवा, गौरी, मङ्गला, कमला, सती और उमा—ये प्रसन्न हों।'

बारह महीनोंकी प्रत्येक द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुकी तथा उनके साथ लक्ष्मीजीकी भी पूजा करे। इसी प्रकार परलोकमें उत्तम गति चाहनेवाले पुरुषको प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको सावित्रीसहित ब्रह्माजीकी विधिवत् आराधना करनी चाहिये। तथा ऐश्वर्यकी कामनावाले मनुष्यको सौभाग्याष्टकका दान भी करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करके पुरुष, स्त्री या कुमारी भक्तिके साथ रात्रिमें शिवजीकी पूजा करे। व्रतकी समाप्तिके समय सम्पूर्ण

सामग्रियोंसे युक्त शश्या, शिव-पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमा, बैल और गौका दान करे। कृपणता छोड़कर दृढ़ निश्चयके साथ भगवान्का पूजन करे। जो स्त्री इस प्रकार उत्तम सौभाग्यशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। अथवा [यदि वह निष्काम-भावसे इस व्रतको करती है तो] उसे नित्यपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको एक फलका परित्याग कर देना चाहिये। प्रतिमास इसका आचरण करनेवाला पुरुष यश और कीर्ति प्राप्त करता है। राजन्! सौभाग्यशयनका दान करनेवाला पुरुष कभी सौभाग्य, आरोग्य, सुन्दर रूप, वस्त्र, अलङ्कार और आभूषणोंसे वञ्चित नहीं होता। जो बारह, आठ या सात वर्षोंतक सौभाग्यशयन व्रतका अनुष्ठान करता है, वह ब्रह्मलोकनिवासी पुरुषोंद्वारा पूजित होकर दस हजार कल्पोंतक वहाँ निवास करता है। इसके बाद वह विष्णुलोक तथा शिवलोकमें भी जाता है। जो नारी या कुमारी इस व्रतका पालन करती है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे ललित होकर पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाका श्रवण करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह देता है, वह भी विद्याधर होकर चिरकाल-तक स्वर्गलोकमें निवास करता है। पूर्वकालमें इस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान कामदेवने, राजा शताधन्वाने, वरुणदेवने, भगवान् सूर्यने तथा धनके स्वामी कुबेरने भी किया था।

—★—

तीर्थमहिमाके प्रसङ्गमें वामन-अवतारकी कथा, भगवान्का बाष्कलि दैत्यसे त्रिलोकीके राज्यका अपहरण

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं तीर्थोंका अद्भुत माहात्म्य सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। आप विस्तारके साथ उसका वर्णन करो।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! ऐसे अनेकों पावन तीर्थ हैं, जिनका नाम लेनेसे भी बड़े-बड़े पातकोंका नाश हो जाता है। तीर्थोंका दर्शन करना, उनमें स्नान करना, वहाँ जाकर बार-बार डुबकी लगाना तथा समस्त

तीर्थोंका स्मरण करना—ये मनोवाञ्छित फलको देनेवाले हैं। भीष्म! पर्वत, नदियाँ, क्षेत्र, आश्रम और मानस आदि सरोवर—सभी तीर्थ कहे गये हैं, जिनमें तीर्थयात्राके उद्देश्यसे जानेवाले पुरुषको पग-पगपर अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

भीष्मजीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे भगवान् श्रीविष्णुका चरित्र सुनना चाहता हूँ। सर्वसमर्थ एवं

सर्वव्यापक श्रीविष्णुने यज्ञ-पर्वतपर जा वहाँ अपने चरण रखकर किस दानवका दमन किया था ? महामुने ! ये सारी बातें मुझे बताइये ।

पुलस्त्यजी बोले— वत्स ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है, एकाग्रचित्त होकर सुनो । प्राचीन सत्ययुगकी बात है—बलिष्ठ दानवोंने समूचे स्वर्गपर अधिकार जमा लिया था । इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर उनसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया था । उनमें बाष्कलि नामका दानव सबसे बलवान् था । उसने समस्त दानवोंको यज्ञका भोक्ता बना दिया । इससे इन्द्रको बड़ा दुःख हुआ । वे अपने जीवनसे निराश हो चले । उन्होंने सोचा—‘ब्रह्माजीके वरदानसे दानवराज बाष्कलि मेरे तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये युद्धमें अवध्य हो गया है । अतः मैं ब्रह्मलोकमें चलकर भगवान् ब्रह्माजीकी ही शरण लूँगा । उनके सिवा और कोई मुझे सहारा देनेवाला नहीं है ।’ ऐसा विचार कर देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले तुरंत उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् ब्रह्माजी विराजमान थे ।

इन्द्र बोले— देव ! क्या आप हमारी दशा नहीं जानते, अब हमारा जीवन कैसे रहेगा ? प्रभो ! आपके वरदानसे दैत्योंने हमारा सर्वस्व छीन लिया । मैं दुरात्मा बाष्कलिकी सारी करतूतें पहले ही आपको बता चुका हूँ । पितामह ! आप ही हमारे पिता हैं । हमारी रक्षाके लिये शीघ्र ही कोई उपाय कीजिये । संसारसे वेदपाठ और यज्ञ-यागादि उठ गये । उत्सव और मङ्गलकी बातें जाती रहीं । सबने अध्ययन करना छोड़ दिया है । दण्डनीति भी उठा दी गयी है । इन सब कारणोंसे संसारके प्राणी किसी तरह सांसारिणी ले रहे हैं । जगत् पीड़ाग्रस्त तो था ही, अब और भी कष्टतर दशाको पहुँच गया है । इतने समयमें हमलोगोंको बड़ी गलानि उठानी पड़ी है ।

ब्रह्माजीने कहा— देवराज ! मैं जानता हूँ बाष्कलि बड़ा नीच है और वरदान पाकर घमंडसे भर गया है । यद्यपि तुमलोगोंके लिये वह अजेय है, तथापि मैं समझता हूँ भगवान् श्रीविष्णु उसे अवश्य ठीक कर देंगे ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—उस समय ब्रह्माजी समाधिमें स्थित हो गये । उनके चिन्तन करनेपर ध्यानमात्रसे चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु थोड़े ही समयमें सबके देखते-देखते वहाँ आ पहुँचे ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले— ब्रह्मन् ! इस ध्यानको छोड़ो । जिसके लिये तुम ध्यान करते हो, वही मैं साक्षात् तुम्हरे पास आ गया हूँ ।

ब्रह्माजीने कहा— स्वामीने यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया, यह बहुत बड़ी कृपा हुई । जगत्के लिये जगदीश्वरको जितनी चिन्ता है, उतनी और किसको हो सकती है । मेरी उत्पत्ति भी आपने जगत्के लिये ही की थी और जगत्की यह दशा है; अतः उसके लिये भगवान्का यह शुभागमन वास्तवमें कोई आश्वर्यकी बात नहीं है । प्रभो ! विश्वके पालनका कार्य आपके ही अधीन है । इस इन्द्रका राज्य बाष्कलिने छीन लिया है । चराचर प्राणियोंके सहित त्रिलोकीको अपने अधिकारमें कर लिया है । केशव ! अब आप ही सलाह देकर अपने इस सेवककी सहायता कीजिये ।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा— ब्रह्मन् ! तुम्हारे वरदानसे वह दानव इस समय अवध्य है, तथापि उसे बुद्धिके द्वारा बन्धनमें डालकर परास्त किया जा सकता है । मैं दानवोंका विनाश करनेके लिये वामनरूप धारण करूँगा । ये इन्द्र मेरे साथ बाष्कलिके घर चलें और वहाँ पहुँचकर मेरे लिये इस प्रकार वरकी याचना करें—‘राजन् ! इस बौने ब्राह्मणके लिये तीन पग भूमिका दान दीजिये । महाभाग ! इनके लिये मैं आपसे याचना करता हूँ ।’ ऐसा कहनेपर वह दानवराज अपना प्राणतक दे सकता है । पितामह ! उस दानवका दान स्वीकार करके पहले उसे राज्यसे वञ्चित करूँगा, फिर उसे बाँधकर पातालका निवासी बनाऊँगा ।

यों कहकर भगवान् श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर कार्य-साधनके अनुकूल समय आनेपर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले देवाधिदेव भगवान्ने देवताओंका हित करनेके लिये अदितिका पुत्र होनेका विचार किया । भगवान्ने जिस दिन गर्भमें प्रवेश किया,

उस दिन स्वच्छ वायु बहने लगी। सम्पूर्ण प्राणी बिना किसी उपद्रवके अपने-अपने इच्छित पदार्थ प्राप्त करने लगे। वृक्षोंसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, समस्त दिशाएँ निर्मल हो गयीं तथा सभी मनुष्य सत्य-परायण हो गये। देवी अदिति ने एक हजार दिव्य वर्षोंतक भगवान्‌को गर्भमें धारण किया। इसके बाद वे भूतभावन प्रभु वामनरूपमें प्रकट हुए। उनके अवतार लेते ही नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। वायु सुगन्ध बिखेरने लगी। उस तेजस्वी पुत्रके प्रकट होनेसे महर्षि कश्यपको भी बड़ा आनन्द हुआ। तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले समस्त प्राणियोंके मनमें अपूर्व उत्साह भर गया। भगवान् जनार्दनका प्रादुर्भाव होते ही स्वर्गलोकमें नगरे बज उठे। अत्यन्त हर्षोल्लासके कारण त्रिलोकीके मोह और दुःख नष्ट हो गये। गन्धवेणि अत्यन्त उच्च स्वरसे संगीत आरम्भ किया। कोई ऊँचे स्वरसे भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे, कोई अत्यन्त हर्षमें भरकर जोर-जोरसे गर्जना करते हुए बारम्बार भगवान्‌को साधुवाद देने लगे तथा कुछ लोग जन्म, भय, बुद्धापा और मृत्युसे छुटकारा पानेके लिये उनका ध्यान करने लगे। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे अत्यन्त प्रसन्न हो उठा।

देवतालोग मन-ही-मन विचार करने लगे—‘ये साक्षात् परमात्मा श्रीविष्णु हैं। ब्रह्माजीके अनुरोधसे जगत्‌की रक्षाके लिये इन जगदीश्वरने यह छोटा-सा शरीर धारण किया है। ये ही ब्रह्मा, ये ही विष्णु और ये ही महेश्वर हैं। देवता, यज्ञ और स्वर्ग—सब कुछ ये ही हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् श्रीविष्णुसे व्याप्त है। ये एक होते हुए भी पृथक् शरीर धारण करके ब्रह्माके नामसे विख्यात हैं। जिस प्रकार बहुत-से रंगोंवाली वस्तुओंका सान्निध्य होनेपर स्फटिक मणि विचित्र-सी प्रतीत होने लगती है, वैसे ही मायामय गुणोंके संसर्गसे स्वयम्भू परमात्माकी नाना रूपोंमें प्रतीति होती है। जैसे एक ही गार्हपत्य अग्नि दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि आदि भिन्न-भिन्न संज्ञाओंको प्राप्त होती है, उसी प्रकार ये एक ही श्रीविष्णु ब्रह्मा आदि अनेक नाम एवं रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। ये

भगवान् सब तरहसे देवताओंका कार्य सिद्ध करेंगे।’ शुद्ध चित्तवाले देवगण जब इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय भगवान् वामन इन्द्रके साथ बाष्कलिके घर गये। उन्होंने दूरसे ही बाष्कलिकी नगरीको देखा, जो परकोटेसे घिरी थी। सब प्रकारके रत्नोंसे सजे हुए ऊँचे-ऊँचे सफेद महल, जो आकाशचारी प्राणियोंके लिये भी अगम्य थे, उस पुरीकी शोभा बड़ा रहे थे। नगरकी सड़कें बड़ी ही सुन्दर एवं क्रमबद्ध बनायी गयी थीं। कोई ऐसा पुष्प नहीं, ऐसी विद्या नहीं, ऐसा शिल्प नहीं तथा ऐसी कला नहीं, जो बाष्कलिकी नगरीमें मौजूद न रही हो। वहीं रहकर दानवराज बाष्कलि चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीका पालन करता था। वह धर्मका ज्ञाता, कृतज्ञ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। सभी प्राणी उससे सुगमतापूर्वक मिल सकते थे। न्याय-अन्यायका निर्णय करनेमें उसकी बुद्धि बड़ी ही कुशल थी। वह ब्राह्मणोंका भक्त, शरणागतोंका रक्षक तथा दीन और अनाथोंपर दया करनेवाला था। मन्त्र-शक्ति, प्रभु-शक्ति और उत्साहशक्ति—इन तीनों शक्तियोंसे वह सम्पन्न था। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, दैधीभाव और समाश्रय—राजनीतिके इन छः गुणोंका अवसरके अनुकूल उपयोग करनेमें उसका सदा उत्साह रहता था। वह सबसे मुसकराकर बात करता था। वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका उसे पूर्ण ज्ञान था। वह यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, तपस्या-परायण, उदार, सुशील, संयमी, प्राणियोंकी हिसामे विरत, माननीय पुरुषोंको आदर देनेवाला, शुद्धहृदय, प्रसन्नमुख, पूजनीय पुरुषोंका पूजन करनेवाला, सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता, दुर्दमनीय, सौभाग्यशाली, देखनेमें सुन्दर, अन्रका बहुत बड़ा संग्रह रखनेवाला, बड़ा धनी और बहुत बड़ा दानी था। वह धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनमें संलग्न रहता था। बाष्कलि त्रिलोकीका एक श्रेष्ठ पुरुष था। वह सदा अपनी नगरीमें ही रहता था। उसमें देवता और दानवोंके भी घमंडको चूर्ण करनेकी शक्ति थी। ऐसे गुणोंसे विभूषित होकर वह त्रिभुवनकी समस्त प्रजाका पालन करता था। उस दानवराजके राज्यमें कोई भी अधर्म नहीं

होने पाता था। उसकी प्रजामें कोई भी ऐसा नहीं था जो दीन, रोगी, अल्पायु, दुःखी, मूर्ख, कुरुप, दुर्भाग्यशाली और अपमानित हो।

इन्द्रको आते देख दानवोंने जाकर राजा बाष्कलिसे कहा—‘प्रभो ! बड़े आश्र्यकी बात है कि आज इन्द्र एक बौने ब्राह्मणके साथ अकेले ही आपकी पुरीमें आ रहे हैं। इस समय हमारे लिये जो कर्तव्य हो, उसे शीघ्र बताइये।’ उनकी बात सुनकर बाष्कलिने कहा—‘दानवो ! इस नगरमें देवराजको आदरके साथ ले आना चाहिये। वे आज हमारे पूजनीय अतिथि हैं।’

पुलस्त्यजी कहते हैं—दानवराज बाष्कलि दानवोंसे ऐसा कहकर फिर स्वयं इन्द्रसे मिलनेके लिये अकेला ही राजमहलसे बाहर निकल पड़ा और अपने शोभा-सम्पन्न नगरकी सातवीं ड्योडीपर जा पहुँचा। इतनेमें ही उधरसे भगवान् वामन और इन्द्र भी आ पहुँचे। दानवराजने बड़े प्रेमसे उनकी ओर देखा और प्रणाम करके अपनेको कृतार्थ माना। वह हर्षमें भरकर सोचने लगा—‘मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि आज मैं त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होकर इन्द्रको याचकके रूपमें अपने घरपर आया देखता हूँ। ये मुझसे कुछ याचना करेंगे। घरपर आये हुए इन्द्रको मैं



अपनी स्त्री, पुत्र, महल तथा अपने प्राण भी दे डालूँगा; फिर त्रिलोकीके राज्यकी तो बात ही क्या है।’ यह सोचकर उसने सामने आ इन्द्रको अङ्कुरमें भरकर बड़े आदरके साथ गले लगाया और अपने राजभवनके भीतर ले जाकर अर्ध्य तथा आचमनीय आदिसे उन दोनोंका यत्नपूर्वक पूजन किया। इसके बाद बाष्कलि बोला—‘इन्द्र ! आज मैं आपको अपने घरपर स्वयं आया देखता हूँ; इससे मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। प्रभो ! मेरे पास आपका किस प्रयोजनसे आगमन हुआ ? मुझे सारी बात बताइये। आपने यहाँतक आनेका कष्ट उठाया, इसे मैं बड़े आश्र्यकी बात समझता हूँ।’

इन्द्रने कहा—बाष्कले ! मैं जानता हूँ दानव-वंशके श्रेष्ठ पुरुषोंमें तुम सबसे प्रधान हो। तुम्हारे पास मेरा आना कोई आश्र्यकी बात नहीं है। तुम्हारे घरपर आये हुए याचक कभी विमुख नहीं लौटते। तुम याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हो। तुम्हारे समान दाता कोई नहीं है। तुम प्रथमें सूर्यके समान हो। गम्भीरतामें सागरकी समानता करते हो। क्षमाशीलताके कारण तुम्हारी पृथ्वीके साथ तुलना की जाती है। ये ब्राह्मणदेवता वामन कश्यपजीके उत्तम कुलमें उत्पन्न हैं। इन्होंने मुझसे तीन पग भूमिके लिये याचना की है; किन्तु बाष्कले ! मेरा त्रिभुवनका राज्य तो तुमने पराक्रम करके छीन लिया है। अब मैं निराधार और निर्धन हूँ। इन्हें देनेके लिये मेरे पास कोई भूमि नहीं है। इसलिये तुमसे याचना करता हूँ। याचक मैं नहीं, ये हैं। दानवेन्द्र ! यदि तुम्हें अभीष्ट हो तो इन वामनजीको तीन पग भूमि दे दो।

बाष्कलिने कहा—देवेन्द्र ! आप भले पधारे, आपका कल्याण हो। जरा अपनी ओर तो देखिये; आप ही सबके परम आश्रय हैं। पितामह ब्रह्माजी त्रिभुवनकी रक्षाका भार आपके ऊपर डालकर सुखसे बैठे हैं और ध्यान-धारणासे युक्त हो परमपदका चिन्तन करते हैं। भगवान् श्रीविष्णु भी अनेकों संग्रामोंसे थककर जगत्की चिन्ता छोड़ आपके ही भरोसे क्षीर-सागरका आश्रय ले सुखकी नींद सो रहे हैं। उमानाथ भगवान् शङ्कर भी

आपको ही सारा भार सौंपकर कैलास पर्वतपर विहार करते हैं। मुझसे भिन्न बहुत-से दानवोंको, जो बलवानोंसे भी बलवान् थे, आपने अकेले ही मार गिराया। बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, आठ वसु तथा सनातन देवता धर्म—ये सब लोग आपके ही बाहुबलका आश्रय ले स्वर्गलोकमें यजका भाग ग्रहण करते हैं। आपने उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न सौ यज्ञोद्घारा भगवान्का यजन किया है। वृत्र और नमुचि—आपके ही हाथसे मरे गये हैं। आपने ही पाक नामक दैत्यका दमन किया है। सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुने आपकी ही आज्ञासे दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अपनी जाँधपर बिठाकर मर डाला था। आप ऐरावतके मस्तकपर बैठकर वज्र हाथमें लिये जब संग्राम-भूमिमें आते हैं, उस समय आपको देखते ही सब दानव भाग जाते हैं। पूर्वकालमें आपने बड़े-बड़े बलिष्ठ दानवोंपर विजय पायी है। देवराज ! आप ऐसे प्रभावशाली हैं। आपके सामने मेरी क्या गिनती हो सकती है। आपने मेरा उद्धार करनेकी इच्छासे ही यहाँ पदार्पण किया है। निस्सन्देह मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, आपके लिये अपने प्राण भी दे दूँगा। देवेश्वर ! आपने मुझसे इतनी-सी भूमिकी बात क्यों कही ? यह स्त्री, पुत्र, गौण तथा और जो कुछ भी धन मेरे पास है, वह सब एवं त्रिलोकीका सारा राज्य इन ब्राह्मणदेवताको दे दीजिये। आप ऐसा करके मुझपर तथा मेरे पूर्वजोंपर कृपा करेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। क्योंकि भावी प्रजा कहेगी—‘पूर्वकालमें राजा बाष्कलिने अपने घरपर आये हुए इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दे दिया था।’ [आप ही क्यों,] दूसरा भी कोई याचक यदि मेरे पास आये तो वह सदा ही मुझे अत्यन्त प्रिय होगा। आप तो उन सबमें मेरे लिये विशेष आदरणीय हैं; अतः आपको कुछ भी देनेमें मुझे कोई विचार नहीं करना है। परन्तु देवराज ! मुझे इस बातसे बड़ी लज्जा हो रही है कि इन ब्राह्मणदेवताके विशेष प्रार्थना करनेपर आप मुझसे तीन ही पग भूमि माँग रहे हैं। मैं इन्हें अच्छे-अच्छे गाँव दूँगा और आपको स्वर्गका राज्य अर्पण कर दूँगा। वामनजीको

स्त्री और भूमि दोनों दान करूँगा। आप मुझपर कृपा करके यह सब स्वीकार करें।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! दानवराज बाष्कलिके ऐसा कहनेपर उसके पुरोहित शुक्राचार्यने उससे कहा—‘महाराज ! तुम्हें उचित-अनुचितका बिलकुल ज्ञान नहीं है; किसको कब क्या देना चाहिये—इस बातसे तुम अनभिज्ञ हो। अतः मन्त्रियोंके साथ भलीभाँति विचार करके युक्तायुक्तका निर्णय करनेके पश्चात् तुम्हें कोई कार्य करना चाहिये। तुमने इन्द्रसहित देवताओंको जीतकर त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया है। अपने वचनको पूरा करते ही तुम बन्धनमें पड़ जाओगे। राजन् ! ये जो वामन हैं, इन्हें साक्षात् सनातन विष्णु ही समझो। इनके लिये तुम्हें कुछ नहीं देना चाहिये; क्योंकि इन्होंने ही तो पहले तुम्हारे वंशका उच्छेद कराया है और आगे भी करायेंगे। इन्होंने मायासे दानवोंको परास्त किया है और मायासे ही इस समय बौने ब्राह्मणका रूप बनाकर तुम्हें दर्शन दिया है; अतः अब बहुत कहनेकी, आवश्यकता नहीं है। इन्हें कुछ न दो। [तीन पग तो बहुत है,] मक्खीके पैरके बराबर भी भूमि देना न स्वीकार करो। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो शीघ्र ही तुम्हारा नाश हो जायगा; यह मैं तुम्हें सच्ची बात कह रहा हूँ।’

बाष्कलिने कहा—गुरुदेव : मैंने धर्मकी इच्छासे इन्हें सब कुछ देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। प्रतिज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिये, यह सत्युरुषोंका सनातन धर्म है। यदि ये भगवान् विष्णु हैं और मुझसे दान लेकर देवताओंको समृद्धिशाली बनाना चाहते हैं, तब तो मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं होगा। ध्यान-परायण योगी निरन्तर ध्यान करते रहनेपर भी जिनका दर्शन जल्दी नहीं पाते, उन्होंने ही यदि मुझे दर्शन दिया है, तब तो इन देवेश्वरने मुझे और भी धन्य बना दिया। जो लोग हाथमें कुश और जल लेकर दान देते हैं, वे भी ‘मेरे दानसे सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों’ इस वचनके कहनेपर मोक्षके भागी होते हैं। इस कार्यको निश्चित रूपसे करनेके लिये मेरा जो दृढ़ संकल्प हुआ है, उसमें

आपका उपदेश ही कारण है। बचपनमें आपने एक बार उपदेश दिया था, जिसे मैंने अच्छी तरह अपने हृदयमें धारण कर लिया था। वह उपदेश इस प्रकार था—‘शत्रु भी यदि घरपर आ जाय तो उसके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है—उसे कुछ भी देनेसे इनकार नहीं करना चाहिये।’* गुरुदेव ! यही सोचकर मैंने इन्द्रके लिये स्वर्गका राज्य और वामनजीके लिये अपने प्राणतक दे डालनेका निश्चय कर लिया है। जिस दानके देनेमें कुछ भी कष्ट नहीं होता, ऐसा दान तो संसारमें सभी लोग देते हैं।

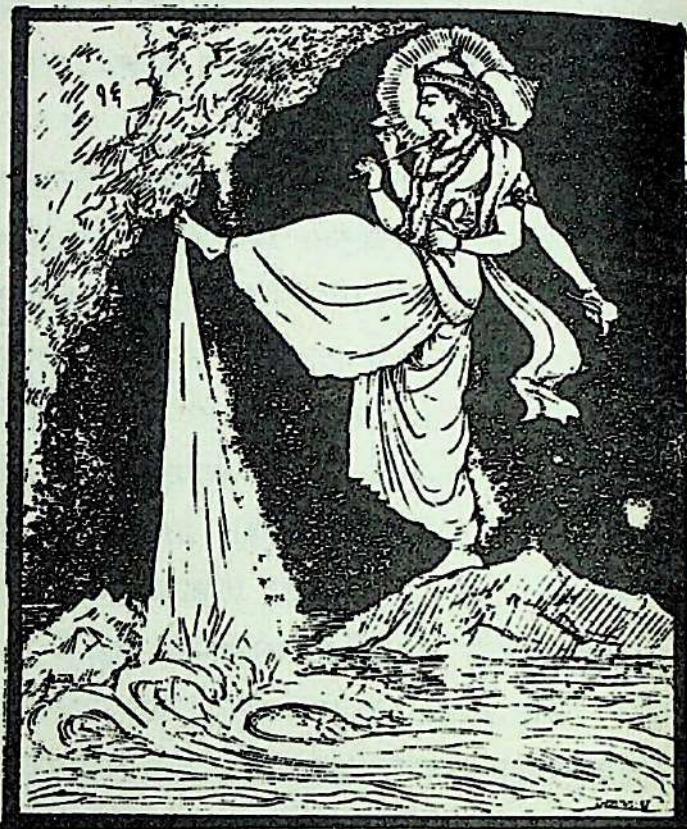
यह सुनकर गुरुजीने लज्जासे अपना मुँह नीचा कर लिया। तब बाष्कलिने इन्द्रसे कहा—‘देव ! आपके माँगनेपर मैं सारी पृथ्वी दे सकता हूँ; यदि इन्हें तीन ही पग भूमि देनी पड़ी तो यह मेरे लिये लज्जाकी बात होगी।’

इन्द्रने कहा—दानवराज ! तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु इन ब्राह्मणदेवताने मुझसे तीन ही पग भूमिकी याचना की है। इनको इतनी ही भूमिकी आवश्यकता है। मैंने भी इन्हींके लिये तुमसे याचना की है। अतः इन्हें यही वर प्रदान करो।

बाष्कलिने कहा—देवराज ! आप वामनको मेरी ओरसे तीन पग भूमि दे दीजिये और आप भी चिरकालतक वहाँ सुखसे निवास कीजिये।

पुलस्यजी कहते हैं—यह कहकर बाष्कलिने हाथमें जल ले ‘साक्षात् श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों’ ऐसा कहते हुए वामनजीको तीन पग भूमि दे दी। दानवराजके दान करते ही श्रीकृष्णने वामनरूप त्याग दिया और देवताओंका हित करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण लोकोंको नाप लिया। वे यज्ञ-पर्वतपर पहुँचकर उत्तरकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। उस समय दानवलोक भगवान्के बायें चरणके नीचे आ गया। तब जगदीश्वरने पहला पग सूर्यलोकमें रखा और दूसरा ध्रुवलोकमें। फिर अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान्ने तीसरे पगसे ब्रह्माण्डपर आधात किया। उनके ऊँगूठेके अग्रभागसे लगकर ब्रह्माण्ड-कटाह फूट गया, जिससे बहुत-सा जल बाहर

निकला। उसे ही भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट



होनेवाली वैष्णवी नदी गङ्गा कहते हैं। गङ्गाजी अनेक कारणबशा भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई है। उनके द्वारा चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी व्याप है। तत्पश्चात् भगवान् श्रीवामनने बाष्कलिसे कहा—‘मेरे तीन पग पूर्ण करो।’ बाष्कलिने कहा—‘भगवन् ! आपने पूर्वकालमें जितनी बड़ी पृथ्वी बनायी थी, उसमेंसे मैंने कुछ भी छिपाया नहीं है। पृथ्वी छोटी है और आप महान् हैं। मुझमें सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं है। [जिससे कि दूसरी पृथ्वी बनाकर आपके तीन पग पूर्ण करूँ]। देव ! आप-जैसे प्रभुओंकी इच्छा-शक्ति ही मनोवाञ्छित कार्य करनेमें समर्थ होती है।’

सत्यवादी बाष्कलिको निरुत्तर जानकर भगवान् श्रीविष्णु बोले—‘दानवराज ! बोलो, मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ ? तुम्हारा दिया हुआ संकल्पका जल मेरे हाथमें आया है, इसलिये तुम वर पानेके योग्य हो। वरदानके उत्तम पात्र हो। तुम्हें जिस वस्तुकी इच्छा हो, माँगो; मैं उसे दूँगा।’

बाष्कलिने कहा—देवेश्वर ! मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ। मेरी मृत्यु भी आपके ही हाथसे हो, जिससे मुझे आपके परमधाम श्वेतद्वीपकी प्राप्ति हो, जो तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—बाष्कलिके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णुने कहा—‘तुम एक कल्पतक ठहरे रहो। जिस समय वराहरूप धारण करके मैं रसातलमें प्रवेश करूँगा, उसी समय तुम्हारा वध करूँगा; इससे तुम मेरे रूपमें लीन हो जाओगे।’ भगवान्के ऐसे वचन सुनकर वह दानव उनके सामनेसे चला गया। भगवान् भी उससे त्रिलोकीका राज्य छीनकर अन्तर्धान हो गये। बाष्कलि पाताललोकका निवासी होकर सुखपूर्वक रहने लगा। बुद्धिमान् इन्द्र तीनों लोकोंका पालन करने लगे। यह जगद्गुरु भगवान् श्रीविष्णुके वामन-अवतारका वर्णन है, इसमें श्रीगङ्गाजीके प्रादुर्भावकी कथा भी आ गयी है। यह प्रसङ्ग सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह मैंने श्रीविष्णुके तीनों पर्गोंका इतिहास बतलाया है, जिसे सुनकर मनुष्य इस संसारमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रीविष्णुके पर्गोंका दर्शन कर लेनेपर उसके दुःखप्र, दुश्खिन्ता और घोर पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। पापी मनुष्य प्रत्येक युगमें यज्ञ-पर्वतपर स्थित श्रीविष्णुके चरणोंका

दर्शन करके पापसे छुटकारा पा जाते हैं। भीष्म ! जो मनुष्य मौन होकर यज्ञ-पर्वतपर चढ़ता है अथवा तीनों पुष्करोंकी यात्रा करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वह सब पापोंसे मुक्त हो मृत्युके पश्चात् श्रीविष्णुधाममें जाता है।

भीष्मजी बोले—भगवन् ! यह तो बड़े आश्वर्यकी बात है कि वामनजीके द्वारा दानवराज बाष्कलि बन्धनमें डाला गया। मैंने तो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके मुखसे ऐसी कथा सुन रखी है कि भगवान् ने वामनरूप धारण करके राजा बलिको बाँधा था और विरोचनकुमार बलि आजतक पाताल-लोकमें मौजूद हैं। अतः आप मुझसे बलिके बाँधे जानेकी कथाका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—नृपश्रेष्ठ ! मैं तुम्हें सब बातें बताता हूँ, सुनो। पहली बारकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। दूसरी बार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरमें भी भगवान् श्रीविष्णुने त्रिलोकीको अपने चरणोंसे नापा था। उस समय उन देवाधिदेवने अकेले ही यज्ञमें जाकर राजा बलिको बाँधा और भूमिको नापा था। उस अवसरपर भगवान्का पुनः वामन-अवतार हुआ तथा पुनः उन्होंने त्रिविक्रमरूप धारण किया था। वे पहले वामन होकर फिर अवामन (विराट) हो गये।

————★————

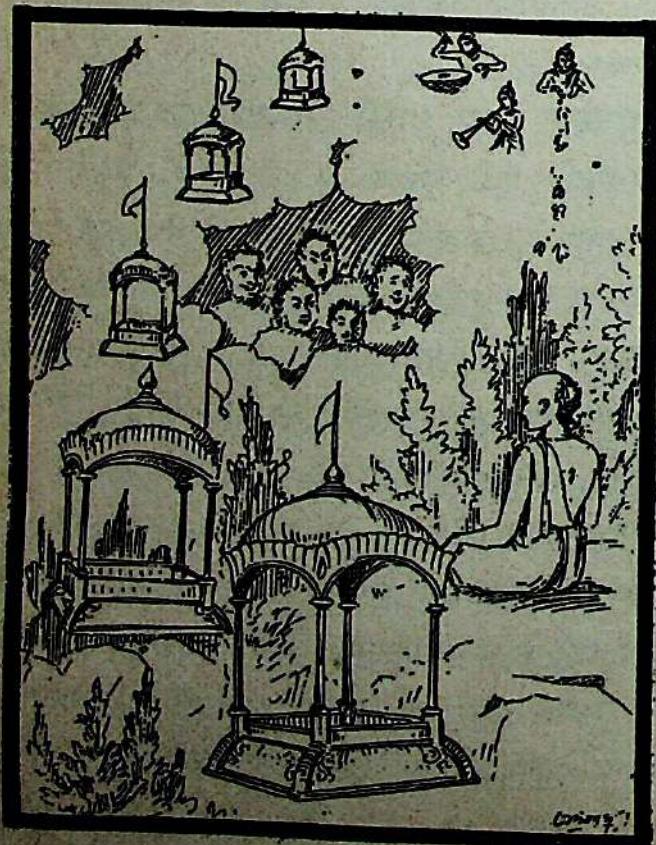
सत्सङ्गके प्रभावसे पाँच प्रेतोंका उद्धार और पुष्कर तथा प्राची सरस्वतीका माहात्म्य

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्म ! किस कर्मके परिणामसे मनुष्य प्रेत-योनिमें जाता है तथा किस कर्मके द्वारा वह उससे छुटकारा पाता है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! मैं तुम्हें ये सब बातें विस्तारसे बतलाता हूँ, सुनो; जिस कर्मसे जीव प्रेत होता है तथा जिस कर्मके द्वारा देवताओंके लिये भी दुस्तर घोर नरकमें पड़ा हुआ प्राणी भी उससे मुक्त हो जाता है, उसका वर्णन करता हूँ। प्रेत-योनिमें पड़े हुए मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप तथा पुण्यतीर्थोंका बारम्बार कीर्तन करनेसे उससे छुटकारा पा जाते हैं। भीष्म ! सुना जाता है—प्राचीन कालमें कठिन नियमोंका पालन

करनेवाले एक ब्राह्मण थे, जो ‘पृथु’ नामसे सर्वत्र विख्यात थे। वे सदा सन्तुष्ट रहा करते थे। उन्हें योगका ज्ञान था। वे प्रतिदिन स्वाध्याय, होम और जप-यज्ञमें संलग्न रहकर समय व्यतीत करते थे। उन्हें परमात्माके तत्त्वका बोध था। वे शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय-संयम) और क्षमासे युक्त रहते थे। उनका चित्त अहिंसाधर्ममें स्थित था। वे सदा अपने कर्तव्यका ज्ञान रखते थे। ब्रह्मचर्य, तपस्या, पितृकार्य (श्राद्ध-तर्पण) और वैदिक कर्मोंमें उनकी प्रवृत्ति थी। वे परलोकका भय मानते और सत्य-भाषणमें रत रहते थे। सबसे मीठे वचन बोलते और अतिथियोंके सत्कारमें मन लगाते थे। सुख-दुःखादि सम्पूर्ण द्वन्द्वोंका परित्याग करनेके लिये

सदा योगाभ्यासमें तत्पर रहते थे। अपने कर्तव्यके पालन और स्वाध्यायमें लगे रहना उनका नित्यका नियम था। इस प्रकार संसारको जीतनेकी इच्छासे वे सदा शुभ कर्मका अनुष्ठान किया करते थे। ब्राह्मणदेवताको वनमें निवास करते अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार उनका ऐसा विचार हुआ कि मैं तीर्थ-यात्रा करूँ, तीर्थोंके पावन जलसे अपने शरीरको पवित्र बनाऊँ। ऐसा सोचकर उन्होंने सूर्योदयके समय शुद्ध चित्तसे पुष्कर तीर्थमें स्नान किया और गायत्रीका जप तथा नमस्कार करके यात्राके लिये चल पड़े। जाते-जाते एक जंगलके बीच कण्टकाकीर्ण भूमिमें, जहाँ न पानी था न वृक्ष, उन्होंने अपने सामने पाँच पुरुषोंको खड़े देखा, जो बड़े ही भयङ्कर थे। उन विकट आकार तथा पापपूर्ण दृष्टिवाले अत्यन्त घोर प्रेतोंको देखकर उनके हृदयमें कुछ भयका सञ्चार हो आया; फिर भी वे निश्चलभावसे खड़े रहे। यद्यपि उनका चित्त भयसे उद्धिग्र हो रहा था, तथापि उन्होंने धैर्य धारण करके मधुर शब्दोंमें पूछा—‘विकराल मुखवाले प्राणियो ! तुमलोग कौन हो ? किसके द्वारा कौन-सा ऐसा कर्म बन गया है, जिससे तुम्हें इस विकृत रूपकी प्राप्ति हुई है ?’



प्रेतोंने कहा—हम भूख और प्याससे पीड़ित हो सर्वदा महान् दुःखसे घिरे रहते हैं। हमारा ज्ञान और विवेक नष्ट हो गया है, हम सभी अचेत हो रहे हैं। हमें इतना भी ज्ञान नहीं है कि कौन दिशा किस ओर है। दिशाओंके बीचकी अवान्तर दिशाओंको भी नहीं पहचानते। आकाश, पृथ्वी तथा स्वर्गका भी हमें ज्ञान नहीं है। यह तो दुःखकी बात हुई। सुख इतना ही है कि सूर्योदय देखकर हमें प्रभात-सा प्रतीत हो रहा है। हममेंसे एकका नाम पर्युषित है, दूसरेका नाम सूचीमुख है, तीसरेका नाम शीघ्रग, चौथेका रोधक और पाँचवेंका लेखक है।

ब्राह्मणने पूछा—तुम्हारे नाम कैसे पड़ गये ? क्या कारण है, जिससे तुमलोगोंको ये नाम प्राप्त हुए हैं ?

प्रेतोंमेंसे एकने कहा—मैं सदा स्वादिष्ट भोजन किया करता था और ब्राह्मणोंको पर्युषित (बासी) अन्न देता था; इसी हेतुको लेकर मेरा नाम पर्युषित पड़ा है। मेरे इस साथीने अन्न आदिके अभिलाषी बहुत-से ब्राह्मणोंकी हिस्सा की है, इसलिये इसका नाम सूचीमुख पड़ा है। यह तीसरा प्रेत भूखे ब्राह्मणके याचना करनेपर भी [उसे कुछ देनेके भयसे] शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चला गया था; इसलिये इसका नाम शीघ्रग हो गया। यह चौथा प्रेत ब्राह्मणोंको देनेके भयसे उद्धिग्र होकर सदा अपने घरपर ही स्वादिष्ट भोजन किया करता था; इसलिये यह रोधक कहलाता है तथा हमलोगोंमें सबसे बड़ा पापी जो यह पाँचवाँ प्रेत है, यह याचना करनेपर चुपचाप खड़ा रहता था या धरती कुरेदने लगता था, इसलिये इसका नाम लेखक पड़ गया। लेखक बड़ी कठिनाईसे चलता है। रोधकको सिर नीचा करके चलना पड़ता है। शीघ्रग पञ्ज हो गया है। सूची (हिसा करनेवाले) का सूईके समान मुँह हो गया है तथा मुँझ पर्युषितकी गर्दन लम्बी और पेट बड़ा हो गया है। अपने पापके प्रभावसे मेरा अण्डकोष भी बढ़ गया है तथा दोनों ओठ भी लम्बे होनेके कारण लटक गये हैं। यही हमारे प्रेतयोनिमें आनेका वृत्तान्त है, जो सब मैंने तुम्हें बता दिया। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कुछ और भी पूछो। पूछनेपर उस बातको भी बतायेंगे।

ब्राह्मण बोले—इस पृथ्वीपर जितने भी जीव मैं तुमलोगोंका भी आहार जानना चाहता हूँ।

प्रेत बोले—विप्रवर ! हमारे आहारकी बात सुनिये । हमलोगोंका आहार सभी प्राणियोंके लिये निन्दित है । उसे सुनकर आप भी बारम्बार निन्दा करेंगे । बलगम, पेशाब, पाखाना और खीके शरीरका मैल—इन्हींसे हमारा भोजन चलता है । जिन घरोंमें पवित्रता नहीं है, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं । जो घर स्त्रियोंके द्वारा दग्ध और छिन्न-भिन्न है, जिनके सामान इधर-उधर बिखरे पड़े रहते हैं तथा मल-मूत्रके द्वारा जो घृणित अवस्थाको पहुँच चुके हैं, उन्हीं घरोंमें प्रेत भोजन करते हैं । जिन घरोंमें मानसिक लज्जाका अभाव है, पतितोंका निवास है तथा जहाँके निवासी लूट-पाटका काम करते हैं, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं । जहाँ बलिवैश्वदेव तथा वेद-मन्त्रोंका उच्चारण नहीं होता, होम और व्रत नहीं होते, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं । जहाँ गुरुजनोंका आदर नहीं होता, जिन घरोंमें स्त्रियोंका प्रभुत्व है, जहाँ क्रोध और लोभने अधिकार जमा लिया है, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं । तात ! मुझे अपने भोजनका परिचय देते लज्जा हो रही है, अतः इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता । तपोधन ! तुम नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले हो, इसलिये प्रेतयोनिसे दुःखी होकर हम तुमसे पूछ रहे हैं । बताओ, कौन-सा कर्म करनेसे जीव प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता ?

ब्राह्मणने कहा—जो मनुष्य एक रात्रिका, तीन रात्रियोंका तथा कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि अन्य व्रतोंका अनुष्ठान करता है, वह कभी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता । जो प्रतिदिन तीन, पाँच या एक अग्रिका सेवन करता है तथा जिसके हृदयमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता । जो मान और अपमानमें, सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें तथा शत्रु और मित्रमें समान भाव रखता है, वह प्रेत नहीं होता । देवता, अतिथि, गुरु तथा पितरोंकी पूजामें सदा प्रवृत्त रहनेवाला मनुष्य भी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता । शुक्ल पक्षमें मंगलवारके दिन

चतुर्थी तिथि आनेपर उसमें जो श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता । जिसने क्रोधको जीत लिया है, जिसमें डाहका सर्वथा अभाव है, जो तृष्णा और आसक्तिसे रहित, क्षमावान् और दानशील है, वह प्रेतयोनिमें नहीं जाता । जो गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदी और देवताओंको प्रणाम करता है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता ।

प्रेत बोले—महामुने ! आपके मुखसे नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले; हम दुःखी जीव हैं, इसलिये पुनः पूछते हैं—जिस कर्मसे प्रेतयोनिमें जाना पड़ता है, वह हमें बताइये ।

ब्राह्मणने कहा—यदि कोई द्विज और विशेषतः ब्राह्मण शूद्रका अन्न खाकर उसे पेटमें लिये ही मर जाय तो वह प्रेत होता है । जो आश्रमधर्मका त्याग करके मदिरा पीता, परायी खीका सेवन करता तथा प्रतिदिन मांस खाता है, उस मनुष्यको प्रेत होना पड़ता है । जो ब्राह्मण यज्ञके अनधिकारी पुरुषोंसे यज्ञ करवाता, अधिकारी पुरुषोंका त्याग करता और शूद्रकी सेवामें रत रहता है, वह प्रेतयोनिमें जाता है । जो मित्रकी धरोहरको हड्प लेता, शूद्रका भोजन बनाता, विश्वासघात करता और कूटनीतिका आश्रय लेता है, वह निश्चय ही प्रेत होता है । ब्रह्महत्यारा, गोघाती, चोर, शराबी, गुरुपतीके साथ सम्बोग करनेवाला तथा भूमि और कन्याका अपहरण करनेवाला निश्चय ही प्रेत होता है । जो पुरोहिती नास्तिकतामें प्रवृत्त होकर अनेकों ऋत्विजोंके लिये मिली हुई दक्षिणाको अकेले ही हड्प लेता है, उसे निश्चय ही प्रेत होना पड़ता है ।

विप्रवर पृथु जब इस प्रकार उपदेश कर रहे थे, उसी समय आकाशमें सहसा नगरे बजने लगे । हजारों देवताओंके हाथसे छोड़े हुए फूलोंकी वर्षा होने लगी । प्रेतोंके लिये चारों ओरसे विमान आ गये । आकाशवाणी हुई—‘इन ब्राह्मणदेवताके साथ वार्तालाप और पुण्यकथाका कीर्तन करनेसे तुम सब प्रेतोंको दिव्यगति प्राप्त हुई है ।’ [इस प्रकार सत्सङ्गके प्रभावसे उन प्रेतोंका उद्धार हो गया ।] गङ्गानन्दन ! यदि तुम्हें कल्याण-

साधनकी आवश्यकता है तो तुम आलस्य छोड़कर पूर्ण प्रयत्न करके सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप—सत्सङ्ग करो। यह पाँच प्रेतोंकी कथा सम्पूर्ण धर्मोंका तिलक है। जो मनुष्य इसका एक लाख पाठ करता है, उसके वंशमें कोई प्रेत नहीं होता। जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ इस प्रसङ्गका बास्त्वार श्रवण करता है, वह भी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! पुष्करकी स्थिति अन्तरिक्षमें क्योंकर बतलायी जाती है? धर्मशील मुनि इस लोकमें उसे कैसे प्राप्त करते हैं और किस-किसने प्राप्त किया है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! एक समयकी बात है—दक्षिणभारतके निवासी एक करोड़ ऋषि पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेके लिये आये; किन्तु पुष्कर आकाशमें स्थित हो गया। यह जानकर वे समस्त मुनि प्राणायाममें तत्पर हो परब्रह्मका ध्यान करते हुए बारह वर्षोंतक वहीं खड़े रह गये। तब ब्रह्माजी, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि-महर्षि आकाशमें अलक्षित होकर उन्हें [पुष्कर-प्राप्तिके लिये] अत्यन्त दुष्कर नियम बताते हुए बोले—‘द्विजगण! तुमलोग मन्त्रद्वारा पुष्करका आवाहन करो। ‘आपो हि ष्टा मयो’ इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करनेसे यह तीर्थ तुम्हारे समीप आ जायगा और अधर्मर्षण-मन्त्रका जप करनेसे पूर्ण फलदायक होगा।’ उन ब्रह्मर्षियोंकी बात समाप्त होनेपर उन सब मुनियोंने वैसा ही किया। ऐसा करनेसे वे परम पावन बन गये—उन्हें पुष्कर-प्राप्तिका पूरा-पूरा फल मिल गया।

राजन्! जो कार्तिककी पूर्णिमाको पुष्करमें स्नान करता है, वह परम पवित्र हो जाता है। ब्रह्माजीके सहित पुष्कर तीर्थ सबको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वहाँ आनेवाले सभी वर्णोंके लोग अपने पुण्यकी वृद्धि करते हैं। वे मन्त्रशानके बिना ही ब्राह्मणोंके तुल्य हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि कार्तिककी पूर्णिमाको कृतिका नक्षत्र हो तो उसे स्नान-दानके लिये अत्यन्त उत्तम समझना चाहिये। यदि उस दिन भरणी

नक्षत्र हो तो भी वह तिथि मुनियोंद्वारा परम पुण्यदायिनी बतलायी गयी है और यदि उस तिथिको रोहिणी नक्षत्र हो तो वह महाकार्तिकी पूर्णिमा कहलाती है। उस दिनका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यदि शनिवार, रविवार तथा बृहस्पतिवार—इन तीनों दिनोंमेंसे किसी दिन उपर्युक्त तीन नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र हो तो उस दिन पुष्करमें स्नान करनेवालेको निश्चय ही अश्वमेध यज्ञका पुण्य होता है। उस दिन किया हुआ दान और पितरोंका तर्पण अक्षय होता है। यदि सूर्य विशाखा नक्षत्रपर और चन्द्रमा कृतिका नक्षत्रपर हों तो पद्मक नामका योग होता है, यह पुष्करमें अत्यन्त दुर्लभ माना गया है। जो आकाशसे उतरे हुए ब्रह्माजीके इस शुभ तीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। महाराज! उन्हें दूसरे किसी पुण्यके करने-न-करनेकी लालसा नहीं रहती। यह मैंने सच्ची बात कही है। पुष्कर इस पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ बताया गया है। संसारमें इससे बढ़कर पुण्यतीर्थ दूसरा कोई नहीं है। कार्तिककी पूर्णिमाको यह विशेष पुण्यदायक होता है। वहाँ उदुम्बर वनसे सरस्वतीका आगमन हुआ है और उसीके जलसे मुनिजन-सेवित पुष्कर तीर्थ भरा हुआ है। सरस्वती ब्रह्माजीकी पुत्री है। वह पुण्यसलिला एवं पुण्यदायिनी नदी है। वंशसंतानसे विसृत आकार धारण करके वह उत्तरकी ओर प्रवाहित हुई है। इस रूपमें कुछ दूर जाकर वह फिर पश्चिमकी ओर बहने लगती है और वहाँसे प्राणियोंपर दया करनेके लिये अदृश्यभावका परित्याग करके स्वच्छ जलकी धारा बहाती हुई प्रकट रूपमें स्थित होती है। कनका, सुप्रभा, नन्दा, प्राची और सरस्वती—ये पाँच स्नोत पुष्करमें विद्यमान हैं। इसलिये ब्रह्माजीने सरस्वतीको पञ्चस्नोता कहा है। उसके तटपर अत्यन्त सुन्दर तीर्थ और मन्दिर हैं, जो सब ओरसे सिद्धों और मुनियोंद्वारा सेवित हैं। उन सब तीर्थोंमें सरस्वती ही धर्मकी हेतु है। वहाँ स्नान करने, जल पीने तथा सुवर्ण आदि दान करनेसे महानदी सरस्वती अक्षय फल उत्पन्न करती है।

मुनीश्वरगण अन्न और वस्त्रका दान श्रेष्ठ बतलाते

हैं; जो मनुष्य सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंमें उक्त वस्तुओंका दान करते हैं, उनका दान धर्मका साधक और अत्यन्त उत्तम माना गया है। जो स्त्री या पुरुष संयमसे रहकर प्रयत्नपूर्वक उन तीर्थोंमें उपवास करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर यथेष्ट आनन्दका अनुभव करते हैं। जो स्थावर या जड़म प्राणी प्रारब्ध कर्मका क्षय हो जानेपर सरस्वतीके तटपर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सब हठात् यज्ञके सम्पूर्ण श्रेष्ठ फल प्राप्त करते हैं। जिनका चित्त जन्म और मृत्यु आदिके दुःखसे पीड़ित है, उन मनुष्योंके लिये सरस्वती नदी धर्मको उत्पन्न करनेवाली अरणीके समान है। अतः मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक उत्तम फल प्रदान करनेवाली महानदी सरस्वतीका सब प्रकारसे सेवन करना चाहिये। जो सरस्वतीके पवित्र जलका नित्य पान करते हैं, वे मनुष्य नहीं, इस पृथ्वीपर रहनेवाले देवता हैं। द्विजलोग यज्ञ, दान एवं तपस्यासे जिस फलको प्राप्त करते हैं, वह यहाँ स्नान करनेमात्रसे शूद्रोंको भी सुलभ हो जाता है। महापातकी मनुष्य भी पुष्कर तीर्थके दर्शनमात्रसे पापरहित हो जाते हैं और शरीर छूटनेपर स्वर्गको जाते हैं। पुष्करमें उपवास करनेसे पौष्टिकीय यज्ञका फल मिलता है। जो वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिमास भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिलका दान करता है, वह वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य वहाँ शुद्ध वृत्तिसे रहकर तीन राततक उपवास करते हैं और ब्राह्मणोंको धन देते हैं, वे मरनेके पश्चात् ब्रह्माका रूप धारण कर विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके साथ सायुज्य मोक्षको प्राप्त होते हैं।

पुष्करमें गङ्गोद्देव तीर्थ है, जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी सरस्वतीको देखनेके लिये आयी थीं। उस समय वहाँ आकर गङ्गाजीने कहा—‘सखी ! तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। तुमने देवताओंका वह दुष्कर कार्य किया है, जिसे दूसरा कोई कभी नहीं कर सकता था। महाभागे ! इसीलिये देवता भी तुम्हारा दर्शन करने आये हैं। तुम मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा इनका सत्कार करो।’

पुलस्त्यजी कहते हैं—गङ्गाजीके ऐसा कहनेपर

ब्रह्मकुमारी सरस्वती उन सुरेश्वरोंकी पूजा करके फिर अपनी सखियोंसे मिली। ज्येष्ठ और मध्यम पुष्करके बीच उनका विश्वविश्वात समागम हुआ था। वहाँ सरस्वतीका मुख पंश्चिम दिशाकी ओर और गङ्गाका उत्तरकी ओर है। तदनन्तर, पुष्करमें आये हुए समस्त देवता सरस्वतीके दुष्कर कर्मका महत्व समझकर उसकी सुनि करने लगे।

देवता बोले—देवि ! तुम्हीं धृति, तुम्हीं मति, तुम्हीं लक्ष्मी, तुम्हीं विद्या और तुम्हीं परागति हो। श्रद्धा, परानिष्ठा, बुद्धि, मेधा, धृति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम्हीं सिद्धि हो, तुम्हीं स्वाहा और स्वधा हो तथा तुम्हीं परम पवित्र मत (सिद्धान्त) हो। सम्भ्या, रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती, यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या, सुन्दर आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), त्रयीविद्या (वेदत्रयी) और दण्डनीति—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। समुद्रको जानेवाली श्रेष्ठ नदी ! तुम्हें नमस्कार है। पुण्यसलिला सरस्वती ! तुम्हें नमस्कार है। पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली देवी ! तुम्हें नमस्कार है। वराङ्गने ! तुम्हें नमस्कार है।

देवताओंने जब इस प्रकार उस दिव्य देवीका स्तवन किया, तब वह पूर्वाभिमुख होकर स्थित हुई। ब्रह्माजीके कथनानुसार वहीं प्राची सरस्वती है। सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त होनेके कारण देवी सरस्वती सब तीर्थोंमें प्रधान हैं। वहाँ सुधावट नामका एक पितामह-सम्बन्धी तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे महापातकी पुरुष भी शुद्ध हो जाते हैं और ब्रह्माजीके समीप रहकर दिव्य भोग भोगते हैं। जो नरश्रेष्ठ वहाँ उपवास करते हैं, वे मृत्युके पश्चात् हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो निर्भयतापूर्वक शिवलोकको जाते हैं। जो लोग वहाँ शुद्ध अन्तःकरण-वाले ब्रह्मज्ञानी महात्माओंको थोड़ा भी दान करते हैं, उनका वह दान उन्हें सौ जन्मोंतक फल देता रहता है। जो मनुष्य वहाँ टूटे-फूटे तीर्थोंका जीर्णोद्धार करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर सुखी एवं आनन्दित होते हैं। जो मनुष्य वहाँ ब्रह्माजीकी भक्तिके परायण हो पूजा, जप और होम करते हैं, उन्हें वह सब कुछ अनन्त पुण्यफल

प्रदान करता है। उस तीर्थमें दीप-दान करनेसे ज्ञान-नेत्रकी प्राप्ति होती है, मनुष्य अतीन्द्रिय पदमें स्थित होता है और धूप-दानसे उसे ब्रह्मधाम प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय, प्राची सरस्वती और गङ्गाके सङ्गममें जो कुछ दिया जाता है, वह जीते-जी तथा मरनेके बाद भी अक्षयफल प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ स्नान, जप और होम करनेसे अनन्त फलकी सिद्धि होती है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी उस तीर्थमें आकर मार्कण्डेयजीके कथनानुसार अपने पिता दशरथजीके लिये पिण्ड-दान और श्राद्ध किया था। वहाँ एक चौकोर बावली है, जहाँ पिण्डदान करनेवाले मनुष्य हंसयुक्त विमानसे स्वर्गको जाते हैं। यशवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उस तीर्थके ऊपर उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पितृमेध यज्ञ (श्राद्ध) किया था। उसमें उन्होंने वसुओंको पितर, रुद्रोंको पितामह और आदित्योंको प्रपितामह नियत किया था। फिर उन तीनोंको बुलाकर कहा—‘आपलोग सदा यहाँ विराजमान रहकर पिण्डदान आदि ग्रहण किया करें।’ वहाँ जो पितृकार्य किया जाता है, उसका अक्षय फल होता है। पितर और पितामह सन्तुष्ट होकर उन्हें उत्तम जीविकाकी प्राप्तिके लिये आशीर्वाद देते हैं। वहाँ तर्पण करनेसे पितरोंकी तृप्ति होती है और पिण्डदान करनेसे उन्हें स्वर्ग मिलता है। इसलिये सब कुछ छोड़कर प्राची सरस्वती तीर्थमें तुम पिण्डदान करो।

प्रत्येक पुत्रको उचित है कि वह वहाँ जाकर अपने समस्त पितरोंको यत्पूर्वक तृप्ति करे। वहाँ प्राचीनेश्वर भगवान्का स्थान है। उसके सामने आदितीर्थ प्रतिष्ठित है, जो दर्शनमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँके जलका सर्पि करके मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। उसमें स्नान करनेसे वह ब्रह्माजीका अनुचर होता है। जो मनुष्य आदितीर्थमें स्नान करके एकाग्रता-पूर्वक थोड़ेसे अन्नका भी दान करता है, वह स्वर्ग-लोकको प्राप्त होता है। जो विद्वान् वहाँ स्नान करके ब्रह्माजीके भक्तोंको सुवर्ण और खिचड़ी दान करता है, वह स्वर्गलोकमें सुखी एवं आनन्दित होता है। जहाँ प्राची सरस्वती विद्यमान हैं, वहाँ मनुष्य दूसरे साधनकी खोज क्यों करते हैं। प्राची सरस्वतीमें स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीके लिये तो जप-तप आदि साधन किये जाते हैं। जो भगवती प्राची सरस्वतीका पवित्र जल पीते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं, देवता समझना चाहिये—यह मार्कण्डेय मुनिका कथन है। सरस्वती नदीके तटपर पहुँचकर स्नान करनेका कोई नियम नहीं है। भोजनके बाद अथवा भोजनके पहले, दिनमें अथवा रात्रिमें भी स्नान किया जा सकता है। वह तीर्थ अन्य सब तीर्थोंकी अपेक्षा प्राचीन और श्रेष्ठ माना गया है। वह प्राणियोंके पापोंका नाशक और पुण्यजनक बतलाया गया है।



मार्कण्डेयजीके दीर्घायु होनेकी कथा और श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मण और सीताके साथ पुष्करमें जाकर पिताका श्राद्ध करना तथा अजगन्ध शिवकी स्तुति करके लौटना

भीष्मजीने पूछा—मुने ! मार्कण्डेयजीने वहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको किस प्रकार उपदेश दिया तथा किस समय और कैसे उनका समागम हुआ ? मार्कण्डेयजी किसके पुत्र हैं, वे कैसे महान् तपस्वी हुए तथा उनके इस नामका क्या रहस्य है ? महामुने ! इन सब बातोंका यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये ।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! मैं तुम्हें मार्कण्डेयजीके जन्मकी उत्तम कथा सुनाता हूँ। प्राचीन कल्पकी बात है; मृकण्डु नामसे विख्यात एक मुनि थे,

जो महर्षि भृगुके पुत्र थे। वे महाभाग मुनि अपनी पत्नीके साथ वनमें रहकर तपस्या करते थे। वनमें रहते समय ही उनके एक पुत्र हुआ। धीरे-धीरे उसकी अवस्था पाँच वर्षकी हुई। वह बालक होनेपर भी गुणोंमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। एक दिन जब वह बालक आँगनमें घूम रहा था, किसी सिद्ध ज्ञानीने उसकी ओर देखा और बहुत देरतक ठहरकर उसके जीवनके विषयमें विचार किया। बालकके पिताने पूछा—‘मेरे पुत्रकी कितनी आयु है ?’ सिद्ध बोला—‘मुनीश्वर ! विधाताने तुम्हारे पुत्रकी जो

आयु निश्चित की है, उसमें अब केवल छः महीने और शेष रह गये हैं। मैंने यह सच्ची बात बतायी है; इसके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये।'

भीष्म ! उस सिद्ध ज्ञानीकी बात सुनकर बालकके पिताने उसका उपनयन-संस्कार कर दिया और कहा—‘बेटा ! तुम जिस-किसी मुनिको देखो, प्रणाम करो।’ पिताके ऐसा कहनेपर वह बालक अत्यन्त हर्षमें भरकर सबको प्रणाम करने लगा। धीरे-धीरे पाँच महीने, पचीस दिन और बीत गये। तदनन्तर निर्मल स्वभाववाले सप्तर्षिगण उस मार्गसे पथारे। बालकने उन्हें देखकर उन सबको प्रणाम किया। सप्तर्षियोंने उस बालकको ‘आयुष्मान् भव, सौम्य !’ कहकर दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। इतना कहनेके बाद जब उन्होंने उसकी आयुपर विचार किया, तब पाँच ही दिनकी आयु शेष

ब्रह्माजीने उनसे पूछा—‘तुमलोग किस कामसे यहाँ आये हो तथा यह बालक कौन है ? बताओ।’ ऋषियोंने कहा—‘यह बालक मृकप्पुका पुत्र है, इसकी आयु क्षीण हो चुकी है। इसका सबको प्रणाम करनेका स्वभाव हो गया है। एक दिन दैवात् तीर्थयात्राके प्रसन्नसे हमलोग उधर जा निकले। यह पृथ्वीपर धूम रहा था। हमने इसकी ओर देखा और इसने हम सब लोगोंको प्रणाम किया। उस समय हमलोगोंके मुखसे बालकके प्रति यह वाक्य निकल गया—‘चिरायुर्भव, पुत्र ! (बेटा ! चिरजीवी होओ।)’ [आपने भी ऐसा ही कहा है।] अतः देव ! आपके साथ हमलोग झूठे क्यों बनें ?’

ब्रह्माजीने कहा—ऋषियो ! यह बालक मार्कप्पेद्य आयुमें मेरे समान होगा। यह कल्पके आदि और अन्तमें भी श्रेष्ठ मुनियोंसे धिरा हुआ सदा जीवित रहेगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार सप्तर्षियोंने ब्रह्माजीसे वरदान दिलवाकर उस बालकको पुनः पृथ्वी-तलपर भेज दिया और स्वयं तीर्थयात्राके लिये चले गये। उनके चले जानेपर मार्कप्पेद्य अपने घर आये और पितासे, इस प्रकार बोले—‘तात ! मुझे ब्रह्मवादी मुनिलोग ब्रह्मलोकमें ले गये थे। वहाँ ब्रह्माजीने मुझे दीर्घायु बना दिया। इसके बाद ऋषियोंने बहुत-से वरदान देकर मुझे यहाँ भेज दिया। अतः आपके लिये जो चिन्ताका कारण था, वह अब दूर हो गया। मैं लोककर्ता ब्रह्माजीकी कृपासे कल्पके आदि और अन्तमें तथा आगे आनेवाले कल्पमें भी जीवित रहूँगा। इस पृथ्वीपर पुष्कर तीर्थ ब्रह्मलोकके समान है; अतः अब मैं वहाँ जाऊँगा।’

मार्कप्पेद्यजीके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ मृकप्पुको बड़ा हर्ष हुआ। वे एक क्षणतक चुपचाप आनन्दकी साँस लेते रहे। इसके बाद मनके द्वारा धैर्य धारण कर इस प्रकार बोले—‘बेटा ! आज मेरा जन्म सफल हो गया तथा आज ही मेरा जीवन धन्य हुआ है; क्योंकि तुम्हें सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीका दर्शन प्राप्त हुआ। तुम-जैसे वंशधर पुत्रको पाकर वास्तवमें मैं पुत्रवान् हुआ हूँ। वत्स ! जाओ, पुष्करमें विराजमान देवेश्वर ब्रह्माजीका दर्शन करो।



जानकर उन्हें बड़ा भय हुआ। वे उस बालकको लेकर ब्रह्माजीके पास गये और उसे उनके सामने रखकर उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया। बालकने भी ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तब ब्रह्माजीने ऋषियोंके समीप ही उसे चिरायु होनेका आशीर्वाद दिया। पितामहका वचन सुनकर ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात्

उन जगदीश्वरका दर्शन कर लेनेपर मनुष्योंको बुढ़ापा और मृत्युका द्वार नहीं देखना पड़ता। उन्हें सभी प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं तथा उनका तप और ऐश्वर्य भी अक्षय हो जाते हैं। तात ! जिस कार्यको मैं भी न कर सका, मेरे किसी कर्मसे जिसकी सिद्धि न हो सकी, उसे तुमने बिना यत्के ही सिद्ध कर लिया। सबके प्राण लेनेवाली मृत्युको भी जीत लिया। अतः दूसरा कोई मनुष्य इस पृथ्वीपर तुम्हारी समानता नहीं कर सकता। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही तुमने मुझे पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया; अतः मेरे वरदानके प्रभावसे तुम चिरजीवी महात्माओंके आदर्श माने जाओगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मेरा तो ऐसा आशीर्वाद है ही, तुम्हारे लिये और सब लोग भी यही कहते हैं कि 'तुम अपनी इच्छाके अनुसार उत्तम लोकोंमें जाओगे।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियों और गुरुजनोंका अनुग्रह प्राप्त करके मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेयजीने पुष्कर तीर्थमें जाकर एक आश्रम स्थापित किया, जो मार्कण्डेय-आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके पवित्र हो मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करता है। उसका अन्तःकरण सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। अब मैं दूसरे प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार पुष्कर तीर्थका निर्माण किया, वह प्रसङ्ग आरम्भ करता हूँ। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजी जब सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे चलकर महर्षि अत्रिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ अत्रिसे पूछा—'महामुने ! इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यमय तीर्थ अथवा कौन-सा ऐसा क्षेत्र है, जहाँ जाकर मनुष्यको अपने बन्धुओंके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता ? भगवन् ! यदि ऐसा कोई स्थान हो तो वह मुझे बताइये।'

अत्रि बोले—रघुवंशका विस्तार करनेवाले वत्स श्रीराम ! तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। मेरे पिता ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो पुष्कर नामसे विख्यात है। वहाँ दो प्रसिद्ध पर्वत हैं, जिन्हें

मर्यादा-पर्वत और यज्ञ-पर्वत कहते हैं। उन दोनोंके बीचमें तीन कुण्ड हैं, जिनके नाम क्रमशः ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर हैं। वहाँ जाकर अपने पिता दशरथको तुम पिण्डदानसे तृप्त करो। वह तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है। रघुनन्दन ! वहाँ अवियोगा नामकी एक चौकोर बावली है तथा एक दूसरा जलसे युक्त कुआँ है, जिसे सौभाग्य-कूप कहते हैं। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जाती है। वह तीर्थ प्रलयपर्यन्त रहता है, ऐसा पितामहका कथन है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—'बहुत अच्छा !' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने पुष्कर जानेका विचार किया। वे ऋक्षवान् पर्वत, विदिशा नगरी तथा चर्मण्वती नदीको पार करके यज्ञपर्वतके पास जा पहुँचे। फिर बड़े वेगसे उस पर्वतको भी पार करके वे मध्यम पुष्करमें गये। वहाँ स्नान करके उन्होंने मध्यम पुष्करके ही जलसे समस्त देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। उसी समय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये। श्रीरामचन्द्रजीने जब उन्हें देखा तो सामने जाकर प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ कहा—'मुने ! मैं राजा दशरथका पुत्र हूँ, मुझे लोग राम कहते हैं। मैं महर्षि अत्रिकी आज्ञासे अवियोगा नामकी बावलीका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। विप्रवर ! बताइये, वह स्थान कहाँ है ?'

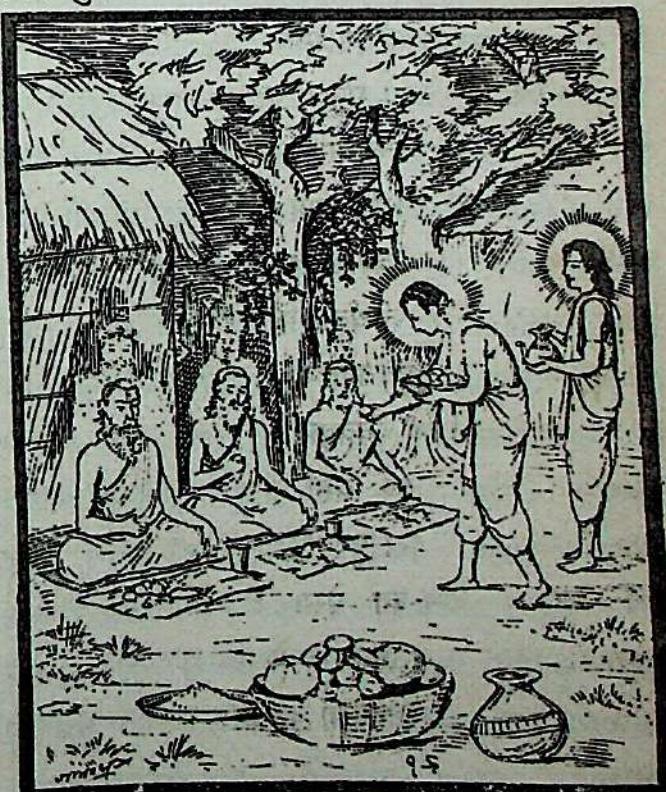
मार्कण्डेयजीने कहा—रघुनन्दन ! इसके लिये मैं आपको साधुवाद देता हूँ, आपका कल्याण हो। आपने यह बड़े पुण्यका कार्य किया कि तीर्थ-यात्राके प्रसङ्गसे यहाँतक चले आये। यहाँसे अब आप आगे चलिये और 'अवियोगा' नामकी बावलीका दर्शन कीजिये। वहाँ सबका सभी आत्मीयजनोंके साथ संयोग होता है। इहलोक या परलोकमें स्थित, जीवित या मृत—सभी प्रकारके बन्धुओंसे भेट होती है।

मुनीश्वर मार्कण्डेयजीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महाराज दशरथ, भरत, शत्रुघ्न, माताओं तथा अन्य पुरवासीजनोंका स्मरण किया। इस प्रकार

सबका चिन्तन करते-करते उन्हें सम्भव हो गयी। तब श्रीरघुनाथजीने मुनियोंके साथ सायंकालका सम्बोधनासन किया। तत्पश्चात् रात्रिमें भाई और पत्नीके साथ वहीं शयन किया। जब रात्रिका अन्तिम प्रहर व्यतीत होने लगा, तब श्रीरघुनाथजीने स्वप्रमें देखा वे पिताजी तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ अयोध्यामें विराजमान हैं। वैवाहिक मङ्गल-कार्य समाप्त करके वे बहुत-से बस्तु-बास्तुओंके साथ ऋषियोंसे धिरे बैठे हैं। साथमें पत्नी सीता भी मौजूद हैं। लक्ष्मण और सीताने भी इसी रूपमें श्रीरघुनाथजीको देखा। सबेरा होनेपर उन्होंने मुनियोंसे सारी बातें निवेदन कीं, जिन्हें सुनकर ऋषियोंने कहा—‘रघुनन्दन ! यह स्वप्न सत्य है; परन्तु मृत पुरुषका जब स्वप्रमें दर्शन हो तो उसके लिये श्राद्ध करना आवश्यक माना गया है। सन्तानके अभ्युदयकी कामना रखनेवाले तथा अन्न चाहनेवाले पितर ही भक्त सन्तानको स्वप्रमें दर्शन देते हैं। आपको पितासे तो वियोग था ही, माता और भरतके साथ भी चौदह वर्षोंतक वियोग रहेगा। वीर ! अब आप राजा दशरथका श्राद्ध कीजिये। ये सभी ऋषि-महर्षि आपके भक्त हैं और आपके शुभ कार्यमें सहयोग देनेके लिये प्रस्तुत हैं। मैं (मार्कपदेय), जमदग्नि, भरद्वाज, लोमश, देवरात और शामीक—ये छः श्रेष्ठ द्विज श्राद्धमें उपस्थित रहेंगे। महाबाहो ! आप केवल सामान जुटाइये। श्राद्धमें प्रधान वस्तु तो है इन्द्रुदी (लिसोड़े) की खली, बेर और आँवले। इनके साथ पके हुए बेल तथा भाँति-भाँतिके मूल होने चाहिये। इन सब वस्तुओंसे तथा श्राद्ध-सम्बन्धी दानके द्वारा आप ब्राह्मणोंको तृप्त कीजिये। सुत्रत ! पुष्करके वनमें आकर जो नियमपूर्वक रहता और नियमित आहार करके [श्राद्ध आदिके द्वारा] पितरोंको तृप्त करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रीराम ! [आप श्राद्धकी सामग्री एकत्रित कराइये,] हमलोग स्नान करनेके लिये ज्येष्ठ पुष्करमें जा रहे हैं।’

श्रीरघुनाथजीसे ऐसा कहकर वे सभी ऋषि चले गये। तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—‘सुमित्रा-नन्दन ! अच्छे-अच्छे संतरे, कटहल, पारद,

मीठे बेल, शालूक, कसेरू, पीली काबरा, अच्छे-अच्छे कैर, शकर-जैसे सिंघाड़े, पके कैथ तथा और भी जो सामयिक फल हों, उन्हें श्राद्धके लिये शीघ्र ही ले आओ।’ श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सारा सामान एकत्रित कर दिया। जानकीजीने भोजन बनाया और तैयार हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको सूचित कर दिया। श्रीराम भी अवियोगा नामकी बावलीमें स्नान करके मुनियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। दुपहरीके बाद जब सूर्य ढलने लगे और कुतप नामकी बेला उपस्थित हुई, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा निमन्त्रित सम्पूर्ण ऋषि वहाँ आ पहुँचे। मुनियोंको आया देख विदेहकुमारी सीता वहाँसे दूर हट गयीं और झाड़ियोंकी आड़में छिपकर बैठ गयीं। श्रीरामचन्द्रजीने स्मृतियोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा मनुष्योंके श्राद्धके लिये जो वैदिक क्रिया बतलायी गयी है, वह सब सम्पन्न की। फिर वैश्वदेव करके पुराणोक्त विधिका भी पालन किया। ब्राह्मणोंके



भोजन कर चुकनेपर क्रमशः पिण्ड देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको विदा किया। उनके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने अपनी प्रिया सीतासे कहा—‘प्रिये ! यहाँ आये हुए मुनियोंको देखकर तुम छिप क्यों गयीं ?

इसका सारा कारण मुझे शीघ्र बताओ ।'

सीता बोलीं—नाथ ! मैंने जो आश्वर्य देखा, उसे [बताती हूँ] सुनिये । आपके द्वारा नामोच्चारण होते ही स्वर्गीय महाराज यहाँ आकर उपस्थित हो गये । उनके साथ उन्हींके समान रूप-रेखावाले दो पुरुष और आये थे, जो सब प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे । वे तीनों ही ब्राह्मणोंके शरीरसे सटे हुए थे । रघुनन्दन ! ब्राह्मणोंके अङ्गोंमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए । उन्हें देखकर मैं लज्जाके मारे आपके पाससे हट गयी । इसीलिये आपने अकेले ही ब्राह्मणोंको भोजन कराया और विधिपूर्वक श्राद्धकी क्रिया भी सम्पन्न की । भला, मैं स्वर्गीय महाराजके सामने कैसे खड़ी होती । यह आपसे मैंने सच्ची बात बतायी है ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीरघुनाथजी बहुत प्रसन्न हुए और प्रिय वचन बोलनेवाली प्रियतमा सीताको बड़े आदरके साथ हृदयसे लगा लिया । तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण दोनों वीरोंने भोजन किया । उनके बाद जानकीजीने स्वयं भी भोजन किया । इस प्रकार दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तथा सीताने वह रात वहाँ बितायी । दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर सबने जानेका निश्चय किया । श्रीरामचन्द्रजी पश्चिमकी ओर चले और एक कोस चलकर ज्येष्ठ पुष्करके पास जा पहुँचे । श्रीरघुनाथजी ज्यों ही जाकर पुष्करके पूर्वमें खड़े हुए, त्यों ही उन्हें देवदूतके कहे हुए ये वचन सुनायी दिये— 'रघुनन्दन ! आपका कल्याण हो । यह तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ है । वीरवर ! इस स्थानपर कुछ कालतक निवास कीजिये; क्योंकि आपको देवताओंका कार्य सिद्ध करना—देवशत्रुओंका वध करना है ।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने लक्ष्मणसे कहा— 'सुमित्रानन्दन ! देवाधिदेव ब्रह्माजीने हमलोगोंपर अनुग्रह किया है । अतः मैं यहाँ आश्रम बनाकर एक मासतक रहना तथा शरीरकी शुद्धि करनेवाले उत्तम व्रतका आचरण करना चाहता हूँ ।' लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बातका अनुमोदन किया । तत्पश्चात् वहाँ अपना व्रत पूर्ण करके

वे दोनों भाई चले और पुष्कर क्षेत्रकी सीमा मर्यादा-पर्वतके पास जा पहुँचे । वहाँ देवताओंके स्वामी पिनाकधारी देवदेव महादेवजीका स्थान था । वे वहाँ अजगन्धके नामसे प्रसिद्ध थे । श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जाकर त्रिनेत्रधारी भगवान् उमानाथको साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उनके दर्शनसे श्रीरघुनाथजीके श्रीविग्रहमें रोमाञ्च हो आया । वे सात्त्विक भावमें स्थित हो गये । उन्होंने देवेश्वर भगवान् श्रीशिवको ही जगत्का कारण समझा और विनम्रभावसे स्थित हो उनकी सुति करने लगे ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सच्चराचरस्य

कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखहेतुः ।

संहारहेतुरपि यः पुनरन्तकाले

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जो चश्चर प्राणियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले हैं, उत्पन्न हुए जगत्के सुख-दुःखमें एकमात्र कारण हैं तथा अन्तकालमें जो पुनः इस विश्वके संहारमें भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का

भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ।

ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जिनके हृदयसे मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, भक्तिके प्रभावसे जिनका चित्त भगवान्के ध्यानमें लीन हो रहा है, जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं और जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, ऐसे योगी पुरुष अपरिमेय दिव्यभावसे सम्पन्न जिन भगवान् शिवका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

यशेन्दुखण्डमपलं विलसन्पूरुषं

बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति ।

यशाद्वदेहमददाद् गिरिराजपुत्रै

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जो सुन्दर किरणोंसे युक्त निर्मल चन्द्रमाकी कलाको

जटाजूटमें बाँधकर अपनी प्रियतमा गङ्गाजीको मस्तकपर धारण करते हैं, जिन्होंने गिरिराजकुमारी उमाको अपना आधा शरीर दे दिया है; उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

योऽयं सकृदविमलचारुविलोलतोयां

गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम् ।

मूर्धाऽऽद्देव ऋजमिव प्रतिलोलपुष्टां

तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको, जो स्वच्छ, सुन्दर एवं चञ्चल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची-ऊँची लहरोंसे उल्लसित होनेके कारण भयङ्कर जान पड़ती थीं, जिन्होंने हिलते हुए फूलोंसे सुशोभित मालाकी भाँति सहसा अपने मस्तकपर धारण कर लिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

कैलासशैलशिखरं प्रतिकम्प्यमानं

कैलासशूद्ध-सदृशेन दशाननेन ।

यः पादपद्मपरिवादनमादधान-

स्तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

कैलास पर्वतके शिखरके समान ऊँचे शरीरवाले दशमुख रावणके द्वारा हिलायी जाती हुई कैलास गिरिकी चोटीको जिन्होंने अपने चरणकमलोंसे ताल देकर स्थिर कर दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

येनासकृद् दितिसुताः समरे निरस्ता

विद्याधरोरगगणाश्च वरैः समग्राः ।

संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षा-

स्तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

जिन्होंने अनेकों बार दैत्योंको युद्धमें परास्त किया है और विद्याधर, नागगण तथा फल-मूलका आहार करनेवाले सम्पूर्ण मुनिवरोंको उत्तम वर दिये हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

दग्धवाध्वरं च नयने च तथा भगस्य

पूष्णस्तथा दशनपद्मित्तमपातयद् ।

तस्तस्य यः कुलिशयुक्तमहेन्द्रहस्तं

तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

जिन्होंने दक्षका यज्ञ भस्म करके भग देवताकी आँखें फोड़ डालीं और पूषा के सारे दाँत गिरा दिये तथा वज्रसहित देवराज इन्द्रके हाथको भी स्तम्भित कर दिया—जडवत् निश्चेष्ट बना दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

एनस्कृतोऽपि विषयेष्वपि सत्त्वभावा

ज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः ।

यं संशिताः सुखभुजः पुरुषा भवन्ति

तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

जो पापकर्ममें निरत और विषयासत्त्व हैं, जिनमें उत्तम ज्ञान, उत्तम कुल, उत्तम शास्त्र-ज्ञान और उत्तम गुणोंका भी अभाव है—ऐसे पुरुष भी जिनकी शरणमें जानेसे सुखी हो जाते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

अत्रिप्रसूतिरविकोटिसमानतेजाः

संत्रासनं विबुधदानवसत्तमानाम् ।

यः कालकूटमपिबत् समुदीर्णवेगं

तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

जो तेजमें करोड़ों चन्द्रमाओं और सूर्योंके समान हैं; जिन्होंने बड़े-बड़े देवताओं तथा दानवोंका भी दिल दहला देनेवाले कालकूट नामक भयङ्कर विषका पान कर लिया था, उन प्रचण्ड वेगशाली शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

ब्रह्मेन्द्रसूद्धमरुतां च सषणमुखानां

योऽदाद् वरांश्च बहुशो भगवान् महेशः ।

नन्दिं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार

तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

जिन भगवान् महेश्वरने कार्तिकेयके सहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र तथा मरुदण्डोंको अनेकों बार वर दिये हैं तथा नन्दीका मृत्युके मुखसे उद्धार किया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

आराधितः सुतपसा हिमवन्निकुञ्जे

धूम्रब्रतेन मनसापि परैरगम्यः ।

सङ्गीवर्णी समददाद् भृगवे महात्मा

तं शङ्करं शरणं शरणं ब्रजामि ॥

जो दूसरोंके लिये मनसे भी अगम्य हैं, महर्षि भृगुने हिमालयं पर्वतके निकुञ्जमें होमका धुआँ पीकर कठोर तपस्याके द्वारा जिनकी आराधना की थी तथा जिन महात्माने भृगुको [उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर] सञ्जीवनी विद्या प्रदान की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

नानाविधैर्गजबिडालसमानवक्त्रै-

दक्षाध्वरप्रमथनैर्बलिभिर्गणौघैः ।

योऽभ्यच्छतेऽमरगणौश्च सलोकपालै-

स्तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

हाथी और बिल्ली आदिकी-सी मुखाकृतिवाले तथा दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले नाना प्रकारके महाबली गणोंद्वारा जिनकी निरन्तर पूजा होती रहती है तथा लोकपालोंसहित देवगण भी जिनकी आराधना किया करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

क्रीडार्थमेव भगवान् भुवनानि सप्त

नानानदीविहगपादपमण्डितानि ।

सब्रह्मकानि व्यसृजत् सुकृताहितानि

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जिन भगवान् ने अपनी क्रीडाके लिये ही अनेकों नदियों, पक्षियों और वृक्षोंसे सुशोभित एवं ब्रह्माजीसे अधिष्ठित सातों भुवनोंकी रचना की है तथा जिन्होंने सम्पूर्ण लोकोंको अपने पुण्यपर ही प्रतिष्ठित किया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्याखिलं जगदिदं वशवर्त्ति नित्यं

योऽष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनानि भुद्गते ।

यः कारणं सुमहतामपि कारणानां

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

यह सम्पूर्ण विश्व सदा ही जिनकी आज्ञाके अधीन है, जो [जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु और प्रकृति—इन] आठ विग्रहोंसे समस्त लोकोंका उपभोग करते हैं तथा जो बड़े-से-बड़े कारण-तत्त्वोंके भी महाकारण हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

शङ्केन्दुकुन्दधवलं वृषभप्रवीर-

मारुह्य यः क्षितिधरेन्द्रसुतानुयातः ।

यात्यम्बरे हिमविभूतिविभूषिताङ्ग-

स्तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जो अपने श्रीविग्रहको हिम और भस्मसे विभूषित करके शङ्क, चन्द्रमा और कुन्दके समान श्वेत वर्णवाले वृषभ-श्रेष्ठ नन्दीपर सवार होकर गिरिराजकिशोरी उमाके साथ आकाशमें विचरते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

शान्तं मुनिं यमनियोगपरायणं तै-

र्भीर्यैर्यमस्य पुरुषैः प्रतिनीयमानम् ।

भक्त्या नतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

यमराजकी आज्ञाके पालनमें लगे रहनेपर भी जिन्हें वे भयङ्कर यमदूत पकड़कर लिये जा रहे थे तथा जो भक्तिसे नग्र होकर स्तुति कर रहे थे, उन शान्त मुनिकी जिन्होंने बलपूर्वक यमदूतोंसे रक्षा की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यः सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देव-

स्तत् पञ्चमं प्रसभमेव पुरः सुराणाम् ।

ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त

तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जिन्होंने समस्त देवताओंके सामने ही ब्रह्माजीके उस पाँचवें मस्तकको, जो नवीन कमलके समान शोभा पा रहा था, अपने बायें हाथके नखसे बलपूर्वक काट डाला था, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या

स्तुत्वा च वाग्भरपलाभिरतन्द्रिताभिः ।

दीपैस्तपांसि नुदते स्वकरैर्विवस्वा-

स्तं शङ्करं शरणदं शरणं ब्रजामि ॥

जिन वरदायक भगवान् के चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा आलस्यरहित निर्मल वाणीके द्वारा जिनकी स्तुति करके सूर्यदेव अपनी उद्दीप्त किरणोंसे जगत्का अन्धकार दूर करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

ये त्वां सुरोत्तम गुरुं पुरुषा विष्पूढा

जानन्ति नास्य जगतः सच्चराचरस्य ।

ऐश्वर्यमाननिगमानुशयेन पश्चा-

ते यातनां त्वनुभवन्त्यविशुद्धचित्ताः ॥

देवत्रेष्ठ ! जो मलिनहृदय मूढ़ पुरुष ऐश्वर्य, मान-प्रतिष्ठा तथा वेदविद्याके अभिमानके कारण आपको इस चराचर जगत्क, गुरु नहीं जानते, वे मृत्युके पश्चात् नरककी यातना भोगते हैं ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—श्रीघुनाथजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले वृषभध्वज भगवान् श्रीशङ्करने सन्तुष्ट हो हर्षमें भरकर कहा—‘घुनन्दन ! आपका कल्याण हो । मैं आपके ऊपर बहुत सन्तुष्ट हूँ । आपने विमल वंशमें अवतार लिया है । आप जगत्के वन्दनीय हैं । मानव-शरीरमें प्रकट होनेपर भी वास्तवमें आप देवस्वरूप हैं । आप-जैसे रक्षकके द्वारा सुरक्षित हो देवता अनन्त वर्षोंतक सुखी रहेंगे । चिरकालतक उनकी वृद्धि होती रहेगी । चौदहवाँ वर्ष सुशोभित हुए ।

बीतनेपर जब आप अयोध्याको लौट जायेंगे, उस समय इस पृथ्वीपर रहनेवाले जो-जो मनुष्य आपका दर्शन करेंगे, वे सभी सुखी होंगे । तथा उन्हें अक्षय स्वर्गका निवास प्राप्त होगा । अतः आप देवताओंका महान् कार्य करके पुनः अयोध्यापुरीको लौट जाइये ।

यह सुनकर श्रीरघुनाथजी श्रीशङ्करजीको प्रणाम करके शीघ्र ही वहाँसे चल दिये । इन्द्रमार्ग नदीके पास पहुँचकर उन्होंने अपनी जटा बाँधी । फिर सब लोग महानदी नर्मदाके तटपर गये । वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके साथ स्नान किया तथा नर्मदाके जलसे देवताओं और अपने पितरोंका तर्पण किया । इसके बाद उन दोनों भाइयोंने एकाग्र मनसे भगवान् सूर्य तथा अन्यान्य देवताओंको बारम्बार मस्तक झुकाया । जैसे भगवान् श्रीशङ्कर पार्वती और कार्तिकेयके साथ स्नान करके शोभा पाते हैं, उसी प्रकार सीता और लक्ष्मणके साथ नर्मदामें नहाकर श्रीरामचन्द्रजी भी सुशोभित हुए ।

————★————

ब्रह्माजीके यज्ञके ऋत्विजोंका वर्णन, सब देवताओंको ब्रह्माद्वारा वरदानकी प्राप्ति, श्रीविष्णु और श्रीशिवद्वारा ब्रह्माजीकी स्तुति तथा ब्रह्माजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें अपने नामों और पुष्करकी महिमाका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! लोकविधाता प्रत्येकके साथ अन्य तीन व्यक्ति परिवाररूपमें रहते हैं, भगवान् ब्रह्माजीने किस समय यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जिन्हें ये स्वयं ही निर्वाचित करते हैं । ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता तथा आपीध—इन चार व्यक्तियोंका एक समुदाय होता है । इन सबको ब्रह्माका परिवार कहते हैं । ये चारों व्यक्ति आन्वीक्षिकी (तर्क शास्त्र) तथा वेदविद्यामें प्रवीण होते हैं । उद्गाता, प्रत्युद्गाता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य—इन चार व्यक्तियोंका दूसरा समुदाय उद्गाताका परिवार कहलाता है । होता, मैत्रावरुणि, अच्छावाक और प्रावस्तुत—इन चार व्यक्तियोंका तीसरा समुदाय उद्गाताका परिवार होता है । अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता—इन चारोंका चौथा समुदाय अध्वर्युका परिवार माना गया है । शन्तनुनन्दन ! वेदके प्रधान-प्रधान विद्वानोंने ये सोलह ऋत्विज् बताये हैं । स्वयंभू ब्रह्माजीने तीन सौ छात्त

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि जब स्वायम्भुव मनु भूलोकके राज्य-सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुए, उस समय ब्रह्माजीने समस्त प्रजापतियोंको उत्पन्न करके कहा—‘तुमलोग सृष्टि करो,’ और स्वयं वे पुष्करमें जा यज्ञ-सामग्री एकत्रित करके अग्निशालामें स्थित हो यज्ञ करने लगे । ब्रह्माजी समस्त देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंको भी वहाँ ले गये थे । ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु—ये चार प्रधानरूपसे यज्ञके निर्वाहक होते हैं । इनमेंसे

शन्तनुनन्दन ! वेदके प्रधान-प्रधान विद्वानोंने ये सोलह

यज्ञोंकी सृष्टि की है। उन सबमें इतने ही ब्राह्मण ऋत्विज् बतलाये गये हैं। कोई-कोई ऊपर बताये हुए ऋत्विजोंके अतिरिक्त एक सदस्य और दस चमसाध्वर्युओंका निर्वाचन चाहते हैं।

ब्रह्माजीके यज्ञमें देवर्षि नारदको ब्रह्मा बनाया गया। गौतम ब्राह्मणाच्छंसी हुए। देवरातको पोता और देवलको आग्रीधके पदपर प्रतिष्ठित किया गया। अङ्गिराका उद्घाताके रूपमें वरण हुआ। पुलह प्रस्तोता बनाये गये। नारायण ऋषि प्रतिहर्ता हुए और अत्रि सुब्रह्मण्य कहलाये। उस यज्ञमें भृगु होता, वसिष्ठ मैत्रावरुणि, क्रतु अच्छावाक तथा च्यवन ग्रावस्तुत बनाये गये। मैं (पुलस्त्य) अध्वर्यु था और शिवि प्रतिष्ठाता। बृहस्पति नेष्टा, सांशापायन उन्नेता और अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ धर्म सदस्य थे। भरद्वाज, शमीक, पुरुकुत्स्य, युगन्धर, एणक, ताप्तिक, कोण, कुतप, गार्य और वेदशिरा—ये दस चमसाध्वर्यु बनाये गये। कण्व आदि अन्य महर्षि तथा मार्कण्डेय और अगस्त्य मुनि अपने पुत्र, पौत्र, शिष्य तथा बान्धवोंके साथ उपस्थित होकर रात-दिन आलस्य छोड़कर उस यज्ञमें आवश्यक कार्य किया करते थे। मन्वन्तर व्यतीत होनेपर उस यज्ञका अवभृथ (यज्ञान्त-स्नान) हुआ। उस समय ब्रह्माको पूर्व दिशा, होताको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्घाताको उत्तर दिशा दक्षिणाके रूपमें दी गयी। ब्रह्माजीने समूची त्रिलोकी ऋत्विजोंको दक्षिणाके रूपमें दे दी। बुद्धिमान् पुरुषोंको यज्ञकी सिद्धिके लिये एक सौ दूध देनेवाली गौएँ दान करनी चाहिये। उनमेंसे यज्ञका निर्वाह करनेवाले प्रथम समुदायके ऋत्विजोंको अड़तालीस, द्वितीय समुदायवालोंको चौबीस, तृतीय समुदायको सोलह और चतुर्थ समुदायको बारह गौएँ देनी उचित हैं। इस प्रकार आग्रीध आदिको दक्षिणा देनी चाहिये। इसी संख्यामें गाँव, दास-दासी तथा भेड़-बकरियाँ भी देनी चाहिये। अवभृथ-स्नानके बाद ब्राह्मणोंको षट्क्रस भोजन देना चाहिये। स्वायम्भुव मनुका कथन है कि यजमान यज्ञके अन्तमें अपना सर्वस्व दान कर दे। अध्वर्यु और सदस्योंको अपनी इच्छाके अनुसार

जितना हो सके दान देना चाहिये।

तदनन्तर देवाधिदेव ब्रह्माजीने भगवान् श्रीविष्णुके साथ यज्ञान्त-स्नानके पश्चात् सब देवताओंको वरदान दिये। उन्होंने इन्द्रको देवताओंका, सूर्यको ग्रहोंसहित समस्त ज्योतिर्मण्डलका, चन्द्रमाको नक्षत्रोंका, वरुणको रसोंका, दक्षको प्रजापतियोंका, समुद्रको नदियोंका, धनाध्यक्ष कुबेरको यक्ष और राक्षसोंका, पिनाकधारी महादेवजीको सम्पूर्ण भूतगणोंका, मनुको मनुष्योंका, गरुड़को पक्षियोंका तथा वसिष्ठको ऋषियोंका स्वामी बनाया। इस प्रकार अनेकों वरदान देकर देवाधिदेव ब्रह्माजीने भगवान् विष्णु और शङ्करसे आदरपूर्वक कहा—‘आप दोनों पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें परम पूजनीय होंगे। आपके बिना कभी कोई भी तीर्थ पवित्र नहीं होगा। जहाँ कहीं शिवलिङ्ग या विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन होगा, वही तीर्थ परम पवित्र और श्रेष्ठ फल देनेवाला हो सकता है। जो लोग पुष्प आदि वस्तुओंकी भेंट चढ़ाकर आपलोगोंकी तथा मेरी पूजा करेंगे, उन्हें कभी रोगका भय नहीं होगा। जिन राज्योंमें मेरा तथा आपलोगोंका पूजन आदि होगा, वहाँ भी क्रियाएँ सफल होंगी। तथा और भी जिन-जिन फलोंकी प्राप्ति होगी, उन्हें सुनिये। वहाँकी प्रजाको कभी मानसिक चिन्ता, शारीरिक रोग, दैवी उपद्रव और क्षुधा आदिका भय नहीं होगा। प्रियजनोंसे वियोग और अप्रिय मनुष्योंसे संयोगकी भी सम्भावना नहीं होगी।’ यह सुनकर भगवान् श्रीविष्णु ब्रह्माजीकी स्तुति करनेको उद्यत हुए।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—जिनका कभी अन्त नहीं होता, जो विशुद्धचित्त और आत्मस्वरूप हैं, जिनके हजारों भुजाएँ हैं, जो सहस्र किरणोंवाले सूर्यकी भी उत्पत्तिके कारण हैं, जिनका शरीर और कर्म दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं, उन सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको नमस्कार है। जो समस्त विश्वकी पीड़ा हरनेवाले, कल्याणकारी, सहस्रों सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी, सम्पूर्ण विद्याओंके आश्रय, चक्रधारी तथा समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको व्याप करके स्थित हैं, उन परमेश्वरको सदा नमस्कार है। प्रभो ! आप अनादि देव हैं। अपनी महिमासे कभी च्युत

नहीं होते। इसलिये 'अच्युत' है। आप शङ्कररूपसे शेषनागका मुकुट धारण करते हैं, इसलिये 'शेषशेखर' हैं। महेश्वर ! आप ही भूत और वर्तमानके स्वामी हैं। सर्वेश्वर ! आप मरुद्धणोंके, जगत्के, पृथ्वीके तथा समस्त भुवनोंके पति हैं। आपको सदा प्रणाम है। आप ही जलके स्वामी वरुण, क्षीरदायी नारायण, विष्णु, शङ्कर, पृथ्वीके स्वामी, विश्वका शासन करनेवाले, जगत्को नेत्र देनेवाले [अथवा जगत्को अपनी दृष्टिमें रखनेवाले], चन्द्रमा, सूर्य, अच्युत, वीर, विश्वस्वरूप, तर्कके अविषय, अमृतस्वरूप और अविनाशी हैं। प्रभो ! आपने अपने तेजःस्वरूप प्रज्वलित अग्निकी ज्वालासे समस्त भुवनमण्डलको व्याप कर रखा है। आप हमारी रक्षा करें। आपके मुख सब ओर हैं। आप समस्त देवताओंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। अमृत-स्वरूप और अविनाशी हैं। मैं आपके अनेकों मुख देख रहा हूँ। आप शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंकी परमगति और पुराणपुरुष हैं। आप ही ब्रह्मा, शिव तथा जगत्के जन्मदाता हैं। आप ही सबके परदादा हैं। आपको नमस्कार है। आदिदेव ! संसारचक्रमें अनेकों बार चक्रर लगानेके बाद उत्तम मार्गके अवलम्बन और विश्वानके द्वारा जिन्होंने अपने शरीरको विशुद्ध बना लिया है, उन्हींको कभी आपकी उपासनाका सौभाग्य प्राप्त होता है। देववर ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। भगवन् ! जो आपको प्रकृतिसे परे, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप समझता है, वही सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ है। गुणमय पदार्थोंमें आप विराटरूपसे पहचाने जा सकते हैं तथा अन्तःकरणमें [बुद्धिके द्वारा] आपका सूक्ष्मरूपसे बोध होता है। भगवन् ! आप जिह्वा, हाथ, पैर आदि इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी पद्म धारण करते हैं। गति और कर्मसे रहित होनेपर भी संसारी हैं। देव ! इन्द्रियोंसे शून्य होनेपर भी आप सृष्टि कैसे करते हैं ? भगवन् ! विशुद्ध भाववाले याशिक पुरुष संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाले यज्ञोद्घारा आपका यज्ञ करते हैं, परन्तु उन्हें स्थूल साधनसे सूक्ष्म परात्पर रूपका ज्ञान नहीं होता; अतः उनकी दृष्टिमें आपका यह चतुर्मुख स्वरूप ही रह जाता

है। अद्भुत रूप धारण करनेवाले परमेश्वर ! देवता आदि भी आपके उस परम स्वरूपको नहीं जानते; अतः वे भी कमलासनपर विराजमान उस पुरातन विग्रहकी ही आराधना करते हैं, जो अवतार धारण करनेसे उत्र प्रतीत होता है। आप विश्वकी रचना करनेवाले प्रजापतियोंके भी उत्पत्ति-स्थान हैं। विशुद्ध भाववाले योगीजन भी आपके तत्त्वको पूर्णरूपसे नहीं जानते। आप तपस्यासे विशुद्ध आदिपुरुष हैं। पुराणमें यह बात बारम्बार कही गयी है कि कमलासन ब्रह्माजी ही सबके पिता है, उन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है। इसी रूपमें आपका चिन्तन भी किया जाता है। आपके उसी स्वरूपको मूढ़ मनुष्य अपनी बुद्धि लगाकर जानना चाहते हैं। वास्तवमें उनके भीतर बुद्धि ही नहीं। अनेकों जन्मोंकी साधनासे वेदका ज्ञान, विवेकशील बुद्धि अथवा प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त होता है। जो उस ज्ञानकी प्राप्तिका लोभी है, वह फिर मनुष्य-योनिमें नहीं जन्म लेता; वह तो देवता और गन्धर्वोंका स्वामी अथवा कल्याणस्वरूप हो जाता है। भक्तोंके लिये आप अत्यन्त सुलभ हैं; जो आपका त्याग कर देते हैं—आपसे विमुख होते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। प्रभो ! आपके रहते इन सूर्य, चन्द्रमा, वसु, मरुद्धण और पृथ्वी आदिकी क्या आवश्यकता है; आपने ही अपने स्वरूपभूत तत्त्वोंसे इन सबका रूप धारण किया है। आपके आत्माका ही प्रभाव सर्वत्र विस्तृत है; भगवन् ! आप अनन्त हैं—आपकी महिमाका अन्त नहीं है। आप मेरी की हुई यह स्तुति स्वीकार करें। मैंने हृदयको शुद्ध करके, समाहित हो, आपके स्वरूपके चिन्तनमें मनको लगाकर यह स्तवन किया है। प्रभो ! आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहते हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप सबके लिये सुगम—सुबोध नहीं है; क्योंकि आप सबसे पृथक्—सबसे परे हैं।

ब्रह्माजी बोले—केशव ! इसमें सन्देह नहीं कि आप सर्वज्ञ और ज्ञानकी राशि हैं। देवताओंमें आप सदा सबसे पहले पूजे जाते हैं।

भगवन् श्रीविष्णुके बाद रुद्रने भी भक्तिसे

नतमस्तक होकर ब्रह्माजीका इस प्रकार स्ववन किया—‘कमलके समान नेत्रोवाले देवेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं और स्वयं कमलसे प्रकट हुए हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! आप देवता और असुरोंके भी पूर्वज हैं, आपको प्रणाम है। संसारकी सृष्टि करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर ! आपको प्रणाम है। सबका मोह दूर करनेवाले जगदीश्वर ! आपको नमस्कार है। आप विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए हैं, कमलके आसनपर आपका आविर्भाव हुआ है। आप मूँगेके समान लाल अङ्गों तथा कर-पल्लवोंसे शोभायमान हैं, आपको नमस्कार है।

‘नाथ ! आप किन-किन तीर्थस्थानोंमें विराजमान हैं तथा इस पृथ्वीपर आपके स्थान किस-किस नामसे प्रसिद्ध हैं ?’

ब्रह्माजीने कहा—पुष्करमें मैं देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीके नामसे प्रसिद्ध हूँ। गयामें मेरा नाम चतुर्मुख है। कान्यकुञ्जमें देवगर्भ [या वेदगर्भ] और भृगुकक्ष (भृगुक्षेत्र) में पितामह कहलाता हूँ। कावेरीके तटपर सृष्टिकर्ता, नन्दीपुरीमें बृहस्पति, प्रभासमें पद्मजन्मा, वानरी (किञ्चिन्धा) में सुरप्रिय, द्वारकामें ऋग्वेद, विदिशापुरीमें भुवनाधिप, पौण्ड्रकमें पुण्डरीकाक्ष, हस्तिनापुरमें पिङ्गलक्ष, जयन्तीमें विजय, पुष्करावतमें जयन्त, उग्रदेशमें पद्महस्त, इयामलापुरीमें भवोरुद, अहिच्छत्रमें जयानन्द, कान्तिपुरीमें जनप्रिय, पाटलिपुत्र (पटना) में ब्रह्मा, ऋषिकुण्डमें मुनि, महिलारोप्यमें कुमुद, श्रीनिवासमें श्रीकंठ, कामरूप (आसाम) में शुभाकार, काशीमें शिवप्रिय, मल्लिकामें विष्णु, महेन्द्र पर्वतपर भार्गव, गोनर्द देशमें स्थविराकार, उज्जैनमें पितामह, कौशाम्बीमें महाबोध, अयोध्यामें राघव, चित्रकूटमें मुनीन्द्र, विन्ध्यपर्वतपर वाराह, गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में परमेष्ठी, हिमालयमें शङ्कर, देविकामें सुचाहस्त, चतुष्पथमें सुवहस्त, वृन्दावनमें पद्मपाणि, नैमित्तारण्यमें कुशाहस्त, गोप्तकमें गोपीन्द्र, यमुनातटपर सुचन्द्र, भागीरथीके तटपर पद्मतनु, जनस्थानमें जनानन्द,

कोङ्कण देशमें मद्राक्ष, काम्पिल्यमें कनकप्रिय, खेटकमें अन्नदाता, कुशस्थलमें शाश्वत, लङ्कामें पुलस्त्य, काश्मीरमें हंसवाहन, अर्बुद (आबू) में वसिष्ठ, उत्पलावतमें नारद, मेधकमें श्रुतिदाता, प्रयागमें यजुषांपति, यज्ञपर्वतपर सामवेद, मधुरमें मधुरप्रिय, अङ्गोलकमें यज्ञगर्भ, ब्रह्मवाहमें सुतप्रिय, गोमन्तमें नारायण, विदर्भ (बरार) में द्विजप्रिय, ऋषिवेदमें दुराधर्ष, पम्पापुरीमें सुरमर्दन, विरजामें महारूप, राष्ट्रवर्द्धनमें सुरूप, मालवीमें पृथूदर, शाकम्भरीमें रसप्रिय, पिण्डारक क्षेत्रमें गोपाल, भोगवर्द्धनमें शुष्कन्ध, कादम्बकमें प्रजाध्यक्ष, समस्थलमें देवाध्यक्ष, भद्रपीठमें गङ्गाधर, सुपीठमें जलमाली, त्र्यम्बकमें त्रिपुराधीश, श्रीपर्वतपर त्रिलोचन, पद्मपुरमें महादेव, कलापमें वैधस, शृङ्गवेरपुरमें शौरि, नैमित्तारण्यमें चक्रपाणि, दण्डपुरीमें विरूपाक्ष, धूतपातकमें गोतम, माल्यवान् पर्वतपर हंसनाथ, वालिकमें द्विजेन्द्र, इन्द्रपुरी (अमरावती) में देवनाथ, धूताषाढीमें धुरन्धर, लम्बामें हंसवाह, चण्डामें गरुडप्रिय, महोदयमें महायज्ञ, यूपकेतनमें सुयज्ञ, पद्मवनमें सिद्धेश्वर, विभामें पद्मबोधन, देवदारुवनमें लिङ्ग, उदक्षपथमें उमापति, मातृस्थानमें विनायक, अलकापुरीमें धनाधिप, त्रिकूटमें गोनर्द, पातालमें वासुकि, केदारक्षेत्रमें पद्माध्यक्ष, कूष्माण्डमें सुरतप्रिय, भूतवापीमें शुभाङ्ग, सावलीमें भषक, अक्षरमें पापहा, अम्बिकामें सुदर्शन, वरदामें महावीर, कान्तारमें दुर्गनाशन, पर्णादमें अनन्त, प्रकाशामें दिवाकर, विरजामें पद्मनाभ, वृक्षस्थलमें सुवृद्ध, वठकमें मार्कण्ड, रोहिणीमें नागकेतन, पद्मावतीमें पद्मागृह तथा गगनमें पद्मकेतन नामसे मैं प्रसिद्ध हूँ। त्रिपुरान्तक ! ये एक सौ आठ स्थान मैंने तुम्हें बताये हैं। इन स्थानोंमें तीनों सत्याओंके समय मैं उपस्थित रहता हूँ। जो भक्तिमान् पुरुष इन स्थानोंमेंसे एकका भी दर्शन कर लेता है, वह परलोकमें निर्मल स्थान पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका अनुभव करता है। उसके मन, वाणी और शरीरके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। और जो इन सभी तीर्थोंकी यात्रा

करके मेरा दर्शन करता है, वह मोक्षका अधिकारी होकर मेरे लोकमें निवास करता है। जो पुण्य, नैवेद्य एवं धूप चढ़ाता और ब्राह्मणोंको [भोजनादिसे] तृप्त करता है, साथ ही जो स्थिरतापूर्वक ध्यान लगाता है, वह शीघ्र ही परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है। उसे पुण्यका श्रेष्ठ फल तथा अन्तमें मोक्ष प्राप्त होता है। जो इन तीर्थोंकी यात्रा करता या कराता है अथवा जो इस प्रसङ्गको सुनता है, वह भी समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है। शङ्कर ! इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय—इन तीर्थोंकी यात्रा करनेसे अप्राप्य वस्तुकी प्राप्ति होती है और सारा पाप नष्ट हो जाता है। जिन्होंने पुष्कर तीर्थमें अपनी पत्नीके दिये हुए पुष्करके जलसे सन्ध्या करके गायत्रीका जप किया है, उन्होंने मानो सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर लिया।

पुष्कर तीर्थके पवित्र जलको झारी अथवा मिट्टीके करवेमें ले आकर सायंकालमें एकाग्र मनसे प्राणायाम-पूर्वक सन्ध्योपासन करना चाहिये। शङ्कर ! इस प्रकार सन्ध्या करनेका जो फल है, उसका अब श्रवण करो। उस पुरुषको एक ही दिनकी सन्ध्यासे बारह वर्षोंतक सन्ध्योपासन करनेका फल मिल जाता है। पुष्करमें स्नान करनेपर अश्वमेध यज्ञका फल होता है, दान करनेसे उसके दसगुने और उपवास करनेसे अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है। यह बात मैंने स्वयं [भलीभाँति सोच-विचारकरं] कही है। तीर्थसे अपने डेरेपर आकर शास्त्रीय विधिके अनुसार पिण्डदानपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके पितर ब्रह्माके एक दिन (एक कल्प) तक तृप्त रहते हैं। शिवजी ! अपने डेरेमें आकर पिण्डदान करनेवालोंको तीर्थकी अपेक्षा अठगुना अधिक पुण्य होता है; क्योंकि वहाँ द्विजातियों-द्वारा दिये जाते हुए पिण्डदानपर नीच पुरुषोंकी दृष्टि नहीं

पड़ती। एकान्त और सुरक्षित गृहमें ही पितरोंके श्राद्धका विधान है; क्योंकि बाहर नीच पुरुषोंकी दृष्टिसे दूषित हो जानेपर यह पितरोंको नहीं पहुँचता। आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको गुप्तरूपसे ही पिण्डदान करना चाहिये। यदि श्राद्धमें दिया जानेवाला पक्वान्न साधारण मनुष्य देख लेते हैं, तो उससे कभी पितरोंकी तृप्ति नहीं होती। मनुजीका कथन है कि तीर्थोंमें श्राद्धके लिये ब्राह्मणकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। जो भी अन्त्रकी इच्छासे अपने पास आ जाय, उसे भोजन करा देना चाहिये।'* श्राद्धके योग्य समय हो या न हो— तीर्थमें पहुँचते ही मनुष्यको सर्वदा स्नान, तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये। पिण्डदान करना तो बहुत ही उत्तम है, वह पितरोंको अधिक प्रिय है। जब अपने वंशका कोई व्यक्ति तीर्थमें जाता है तब पितर बड़ी आशासे उसकी ओर देखते हैं, उससे जल पानेकी अभिलाषा रखते हैं; अतः इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। और यदि दूसरा कोई इस कार्यको करना चाहता हो तो उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। सत्ययुगमें पुष्करका, त्रेतामें नैषिषरण्यका, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गङ्गाजीका आश्रय लेना चाहिये। अन्यत्रका किया हुआ पाप तीर्थमें जानेपर कम हो जाता है; किन्तु तीर्थका किया हुआ पाप अन्यत्र कहीं नहीं छूटता।† जो सबेरे और शामको हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें आचमन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जो पुष्करमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक रहकर प्रातःकाल और सन्ध्याके समय आचमन करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। तथा वह ब्रह्मलोकको जाता है। जो बारह वर्ष, बारह दिन, एक मास अथवा पक्षभर भी पुष्करमें निवास करता है, वह परम गतिको प्राप्त

* तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन। अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तु मनुरब्रवीत्॥

(२९। २१२)

† कृते युगे पुष्करणि त्रेतायां नैमित्यं स्मृतम्। द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत्॥

यदन्यत्रकृतं पापं तीर्थं तद्याति लघवम्। न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित् पापं व्यपोहति॥

(२९-२२८)

करता है। इस पृथ्वीपर करोड़ों तीर्थ हैं। वे सब तीनों सन्ध्याओंके समय पुष्करमें उपस्थित रहते हैं। पिछले हजारों जन्मोंके तथा जन्मसे लेकर मृत्यु-

पर्यन्त वर्तमान जीवनके जितने भी पाप हैं, उन सबके पुष्करमें एक बार स्नान करके मनुष्य भूमि का डालता है।

— ★ —

श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध और मरे हुए ब्राह्मण-बालकको जीवनकी प्राप्ति
पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! पूर्वकालमें स्वयं भगवान् ने जब रघुवंशमें अवतार लिया था तब वहाँ वे श्रीराम-नामसे विख्यात हुए। तब उन्होंने लङ्घामें जाकर रावणको मारा और देवताओंका कार्य किया था। इसके बाद जब वे वनसे लौटकर पृथ्वीके राज्यसिंहासनपर स्थित हुए, उस समय उनके दरबारमें [अगस्त्य आदि] बहुत-से महात्मा ऋषि उपस्थित हुए। महर्षि अगस्त्यजीकी आज्ञासे द्वारपालने तुरंत जाकर महाराजको ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। सूर्यके समान तेजस्वी महर्षियोंको द्वारपर आया जान श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा—‘तुम शीघ्र ही उन्हें भीतर ले आओ।’

श्रीरामकी आज्ञासे द्वारपालने उन मुनियोंको सुख-पूर्वक महलके भीतर पहुँचा दिया। उन्हें आया देख रघुनाथजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने उन सबको आसनोंपर बिठाया।



तदनन्तर पुरोहित वसिष्ठजीने पाद्य, अर्ध्य और आचमनीय निवेदन करके उनका आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने जब उनसे कुशल-समाचार पूछा, तब वे वेदवेत्ता महर्षि [महर्षि अगस्त्यको आगे करके] इस प्रकार बोले—‘महाबाहो ! आपके प्रतापसे सर्वत्र कुशल है। रघुनन्दन ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि शत्रुदलका संहार करके लौटे हुए आपको हमलोग सकुशल देख रहे हैं। कुलघाती, पापी एवं दुरात्मा रावणने आपकी पत्नीको हर लिया था। वह उन्हें तेजसे मारा गया। आपने उसे युद्धमें मार डाला। रघुसिंह ! आपने जैसा कर्म किया है, वैसा कर्म करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। राजेन्द्र ! हम सब लोग यहाँ आपसे वार्तालाप करनेके लिये आये हैं। इस समय आपका दर्शन करके हम पवित्र हो गये। आपके दर्शनसे हम वास्तवमें आज तपस्वी हुए हैं। आपने सबसे शत्रुता रखनेवाले रावणका वध करके हमारे आँसू पोंछे हैं और सब लोगोंको अभयदान दिया है। काकुत्स्थ ! आपके पराक्रमकी कोई थाह नहीं है। आपकी विजयसे वृद्धि हो रही है, यह बड़े आनन्दकी बात है। हमने आपका दर्शन और आपके साथ सम्भाषण कर लिया, अब हमलोग अपने-अपने आश्रमको जायेंगे। रघुनन्दन ! आप भविष्यमें कभी हमारे आश्रमपर भी आइयेगा।’

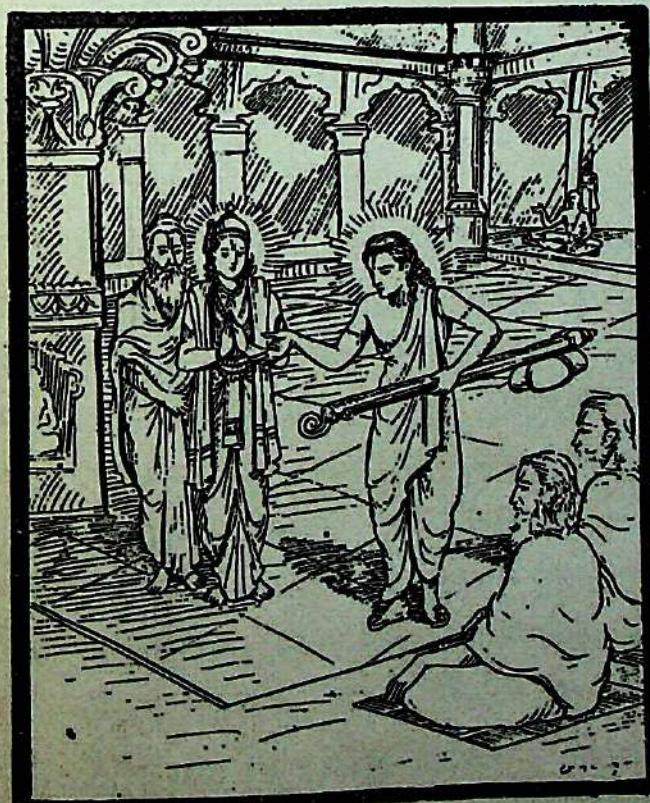
पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म ! ऐसा कहकर वे मुनि उसी समय अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने सोचा—“अहो ! मुनि अगस्त्यने मेरे सामने जो यह प्रस्ताव रखा है कि ‘रघुनन्दन ! फिर कभी मेरे आश्रमपर भी आँना’ तब अवश्य ही मुझे महर्षि अगस्त्यके यहाँ जाना चाहिये और देवताओंकी कोई गुप्त बात हो तो उसे सुनना चाहिये। अथवा यदि वे कोई दूसरा काम बतायें तो उसे भी करना

चाहिये।” ऐसा विचारकर महात्मा रघुनाथजी पुनः प्रजा-पालनमें लग गये। एक दिन एक बूढ़ा ब्राह्मण, जो उसी प्रान्तका रहनेवाला था, अपने मरे हुए पुत्रको लेकर राजद्वारपर आया और इस प्रकार कहने लगा—‘बेटा! मैंने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे तुझ इकलौते पुत्रको आज मैं मौतके मुखमें पड़ा देख रहा हूँ। निश्चय ही यह महाराज श्रीरामका ही दोष है, जिसके कारण तेरी मृत्यु [इतनी जल्दी] आ गयी। रघुनन्दन! अब मैं भी स्त्रीसहित प्राण त्याग दूँगा। फिर आपको बालहत्या, ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्या—तीन पाप लगेंगे।

रघुनाथजीने उस ब्राह्मणकी दुःख और शोकसे भरी सारी बात सुनी। फिर उसे चुप करकर महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा—‘गुरुदेव! ऐसी अवस्थामें इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये? इस ब्राह्मणकी कही हुई बात सुनकर मैं किस प्रकार अपने दोषका मार्जन करूँ—कैसे इस बालकको जीवन-दान दूँ?’ [इतनेमें ही देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे।] वे वसिष्ठके सामने खड़े हो अन्य ऋषियोंके समीप महाराज श्रीरामसे

पहले सत्ययुगमें सब ओर ब्राह्मणोंकी ही प्रधानता थी। कोई ब्राह्मणेतर पुरुष तपस्वी नहीं होता था। उस समय सभी अकालमृत्युसे रहित और चिरजीवी होते थे। फिर त्रेतायुग आनेपर ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंकी प्रधानता हो जाती है—दोनों ही तपमें प्रवृत्त होते हैं। द्वापरमें वैश्योंमें भी तपस्याका प्रचार हो जाता है। यह तीनों युगोंके धर्मकी विशेषता है। इन तीनों युगोंमें शूद्रजातिका मनुष्य तपस्या नहीं कर सकता, केवल कलियुगमें शूद्रजातिको भी तपस्याका अधिकार होगा। राजन्! इस समय आपके राज्यकी सीमापर एक खोटी बुद्धिवाला शूद्र अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहा है। उसीके शास्त्रविरुद्ध आचरणके प्रभावसे इस बालककी मृत्यु हुई है। राजाके राज्य या नगरमें जो कोई भी अर्धम अथवा अनुचित कर्म करता है, उसके पापका चतुर्थांश राजाके हिस्सेमें आता है। अतः पुरुषश्रेष्ठ! आप अपने राज्यमें धूमिये और जहाँ कहीं भी पाप होता दिखायी दे, उसे रोकनेका प्रयत्न कीजिये। ऐसा करनेसे आपके धर्म, बल और आयुकी वृद्धि होगी। साथ ही यह बालक भी जी उठेगा।

नारदजीके इस कथनपर श्रीरघुनाथजीको बड़ा आश्र्य हुआ। वे अत्यन्त हर्षमें भरकर लक्ष्मणसे बोले—‘सौम्य! जाकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको सान्त्वना दो और उस बालकके शरीरको तेलसे भरी नावमें रखवा दो। जिस प्रकार भी उस निरपराध बालकके शरीरकी रक्षा हो सके, वह उपाय करना चाहिये।’ उत्तम लक्षणोंसे युक्त सुमित्राकुमार लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् श्रीरामने पुष्टक विमानका स्मरण किया। रघुनाथजीका अभिप्राय जानकर इच्छानुसार चलनेवाला वह स्वर्णभूषित विमान एक ही मुहूर्तमें उनके समीप आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—‘महाराज! आपका आज्ञाकारी यह दास सेवामें उपस्थित है।’ पुष्टककी सुन्दर डक्टि सुनकर महाराज श्रीराम महर्षि वसिष्ठको प्रणाम करके विमानपर आरूढ़ हुए और धनुष, भाथा एवं चमचमाता हुआ खड़ लेकर तथा लक्ष्मण और भरतको नगरका भार सौंप दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। [दण्डकारण्यके पास पहुँचनेपर] एक पर्वतके दक्षिण किनारे बहुत बड़ा तालुक



बोले—‘रघुनन्दन! इस बालककी जिस प्रकार अकालमृत्यु हुई है, उसका कारण बताता हूँ; सुनिये।

दिखायी दिया। रघुनाथजीने देखा—उस सरोवरके तटपर एक तपस्वी नीचा मुँह किये लटक रहा है और बड़ी कठोर तपस्या कर रहा है। भगवान् श्रीराम उस तपस्वीके पास जाकर बोले—‘तापस ! मैं दशरथका पुत्र राम हूँ और कौतूहलवश तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ, तुम किसलिये तपस्या करते हो, ठीक-ठीक बताओ—तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय ? तीसरे वर्णमें उत्पन्न वैश्य हो या शूद्र ? तपस्या सत्यस्वरूप और नित्य है। उसका उद्देश्य है—स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति। तप सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका होता है। ब्रह्माजीने जगत्के उपकारके लिये तपस्याकी सृष्टि की है। [अतः परोपकारके उद्देश्यसे किया हुआ तप ‘सात्त्विक’ होता है;] क्षत्रियोचित तेजकी प्राप्तिके लिये किया जानेवाला भयङ्कर तप ‘राजस’ कहलाता है तथा जो दूसरोंका नाश करनेके लिये [अपने शरीरको अस्वाभाविक रूपसे रूपसे कष्ट देते हुए] तपस्या की जाती है, वह ‘आसुर’ (तामस) कही गयी है। तुम्हारा भाव आसुर जान पड़ता है; तथा मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम द्विज नहीं हो।’

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरघुनाथजीके उपर्युक्त वचन सुनकर नीचे मस्तक करके लटका हुआ

शूद्र उसी अवस्थामें बोला—‘नृपश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। रघुनन्दन ! चिरकालके बाद मुझे आपका दर्शन हुआ है। मैं आपके पुत्रके समान हूँ, आप मेरे लिये पिताके तुल्य हैं। क्योंकि राजा तो सभीके पिता होते हैं। महाराज ! आप हमारे पूजनीय हैं। हम आपके राज्यमें तपस्या करते हैं; उसमें आपका भी भाग है। विधाताने पहलेसे ही ऐसी व्यवस्था कर दी है। राजन् ! आप धन्य हैं, जिनके राज्यमें तपस्वीलोग इस प्रकार सिद्धिकी इच्छा रखते हैं। मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और कठोर तपस्यामें लगा हूँ। पृथ्वीनाथ ! मैं झूठ नहीं बोलता; क्योंकि मुझे देवलोक प्राप्त करनेकी इच्छा है। काकुत्स्थ ! मेरा नाम शम्बूक है।’

वह इस प्रकार बातें कर ही रहा था कि श्रीरघुनाथजीने म्यानसे चमचमाती हुई तलवार निकाली और उसका उज्ज्वल मस्तक धड़से अलग कर दिया। उस शूद्रके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवता ‘साधु-साधु’ कहकर बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करने लगे। आकाशसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर वायु देवताके छोड़े हुए दिव्य फूलोंकी सुगन्धभरी वृष्टि होने लगी। जिस क्षण यह शूद्र मारा गया, ठीक उसी समय वह बालक जी उठा।



महर्षि अगस्त्यद्वारा राजा श्वेतके उद्घारकी कथा

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर देवतालोग अपने बहुत-से विमानोंके साथ वहाँसे चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीने भी शीघ्र ही महर्षि अगस्त्यके तपोवनकी ओर प्रस्थान किया। फिर श्रीरघुनाथजी पुष्पक विमानसे उतरे और मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम करनेके लिये उनके समीप गये।

श्रीराम बोले—मुनिश्रेष्ठ ! मैं दशरथका पुत्र राम आपको प्रणाम करनेके लिये सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आप अपनी सौम्य दृष्टिसे मेरी ओर निहारिये।

इतना कहकर उन्होंने बारम्बार मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—‘भगवन् ! मैं शम्बूक नामक शूद्रका वध करके आपका दर्शन करनेकी इच्छासे यहाँ

आया हूँ। कहिये, आपके शिष्य कुशलसे हैं न ? इस बनमें तो कोई उपद्रव नहीं है ?’

अगस्त्यजी बोले—रघुश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है। जगद्वन्द्य सनातन परमेश्वर ! आपके दर्शनसे आज मैं इन मुनियोंसहित पवित्र हो गया। आपके लिये यह अर्थ प्रस्तुत है, इसे स्वीकार करें। आप अपने अनेकों उत्तम गुणोंके कारण सदा सबके सम्मानपात्र हैं। मेरे हृदयमें तो आप सदा ही विराजमान रहते हैं, अतः मेरे परम पूज्य हैं। आपने अपने धर्मसे ब्राह्मणके मरे हुए बालकको जिला दिया। भगवन् ! आज रातको आप यहाँ मेरे पास रहिये। महामते ! कल सबेरे आप पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट जाइयेगा। सौम्य ! यह

आभूषण विश्वकर्माका बनाया हुआ है। यह दिव्य आभरण है और अपने दिव्य रूप एवं तेजसे जगमगा रहा है। राजेन्द्र ! आप इसे स्वीकार करके मेरा प्रिय कीजिये; क्योंकि प्राप्त हुई वस्तुका पुनः दान कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति बतायी गयी है।

श्रीरामने कहा—ब्रह्मन् ! आपका दिया हुआ दान लेना मेरे लिये निन्दाकी बात होगी। क्षत्रिय जान-बूझकर ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है, यह बात आप मुझे बताइये। किसी आपत्तिके कारण मुझे कष्ट हो—ऐसी बात भी नहीं है; फिर दान कैसे लूँ। इसे लेकर मुझे केवल दोषका भागी होना पड़ेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अगस्त्यजी बोले—श्रीराम ! प्राचीन सत्ययुगमें जब अधिकांश मनुष्य ब्राह्मण ही थे, तथा समस्त प्रजा राजासे हीन थी, एक दिन सारी प्रजा पुराणपुरुष ब्रह्माजीके पास राजा प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और कहने लगी—‘लोकेन्ध्र ! जैसे देवताओंके राजा देवाधिदेव इन्द्र हैं, उसी प्रकार हमारे कल्याणके लिये भी इस समय एक ऐसा राजा नियत कीजिये, जिसे पूजा और भेंट देकर सब लोग पृथ्वीका उपभोग कर सकें।’ तब देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने इन्द्रसहित समस्त लोकपालोंको बुलाकर कहा—‘तुम सब लोग अपने-अपने तेजका अंश यहाँ एकत्रित करो।’ तब सम्पूर्ण लोकपालोंने मिलकर चार भाग दिये। वह भाग अक्षय था। उससे अक्षय राजाकी उत्पत्ति हुई। लोकपालोंके उस अंशको ब्रह्माजीने मनुष्योंके लिये एकत्रित किया। उसीसे राजाका प्रादुर्भाव हुआ, जो प्रजाओंके हित-साधनमें कुशल होता है। इन्द्रके भागसे राजा सबपर हुकूमत चलाता है। वरुणके अंशसे समस्त देहधारियोंका पोषण करता है। कुबेरके अंशसे वह याचकोंको धन देता है तथा राजामें जो यमराजका अंश है, उसके द्वारा वह प्रजाको दण्ड देता है। रघुश्रेष्ठ ! उसी इन्द्रके भागसे आप भी मनुष्योंके राजा हुए हैं, इसलिये प्रभो ! मेरा उद्धार करनेके लिये यह आभूषण ग्रहण कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! तब श्रीरघुनाथजीने महात्मा अगस्त्यके हाथसे वह दिव्य आभूषण ले लिया, जो बहुत ही विचित्र था और सूर्यकी तरह चमक रहा था। उसे लेकर वे निहारते रहे। फिर बारम्बार विचार करने लगे—‘ऐसे रत्न तो मैंने विभीषणकी लङ्घामें भी नहीं देखे।’ इस प्रकार मन-ही-मन सोच-विचार करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि अगस्त्यसे उस दिव्य आभूषणकी प्राप्तिका वृत्तान्त पूछना आरम्भ किया।

श्रीराम बोले—ब्रह्मन् ! यह रत्न तो बड़ा अद्भुत है। राजाओंके लिये भी यह अलभ्य ही है। आपको यह कहाँसे और कैसे मिल गया ? तथा किसने इस आभूषणको बनाया है ?

अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन ! पहले त्रेतायुगमें एक बहुत विशाल वन था। इसका व्यास सौ योजनका था। किन्तु उसमें न कोई पशु रहता था, न पक्षी। उस वनके मध्यभागमें चार कोस लम्बी एक झील थी, जो हंस और कारण्डव आदि पक्षियोंसे संकुल थी। वहाँ मैंने एक बड़े आश्र्यकी बात देखी। सरोवरके पास ही एक बहुत बड़ा आश्रम था, जो बहुत पुराना होनेपर भी अत्यन्त पवित्र दिखायी देता था, किन्तु उसमें कोई तपस्वी नहीं था और न कोई और जीव भी थे। मैंने उस आश्रममें रहकर ग्रीष्मकालकी एक रात्रि व्यतीत की। सबोरे उठकर जब तालाबकी ओर चला तो रास्तेमें मुझे एक बहुत बड़ा मुर्दा दीख पड़ा, जिसका शरीर अत्यन्त हष्ट-पुष्ट था। मालूम होता था किसी तरुण पुरुषकी लाश है। उसे देखकर मैं सोचने लगा—‘यह कौन है ? इसकी मृत्यु कैसे हो गयी तथा यह इस महान् वनमें आया कैसे था ? इन सारी बातोंका मुझे अवश्य पता लगाना चाहिये।’ मैं खड़ा-खड़ा यही सोच रहा था कि इतनेमें आकाशसे एक दिव्य एवं अद्भुत विमान उत्तरता दिखायी दिया। वह परम सुन्दर और मनके समान वैगशाली था। एक ही क्षणमें वह विमान सरोवरके निकट आ पहुँचा। मैंने देखा, उस विमानसे एक दिव्य मनुष्य उतरा और सरोवरमें नहाकर उस मुर्देका मांस खाते

लगा। भरपेट उस मोटे-ताजे मुर्देंका मांस खाकर वह फिर सरोवरमें उत्तरा और उसकी शोभा निहारकर फिर शीघ्र ही स्वर्गकी ओर जाने लगा। उस शोभा-सम्पन्न देवोपम पुरुषको ऊपर जाते देख मैंने कहा—‘स्वर्गलोकके निवासी महाभाग ! [तनिक ठहरे]। मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ—तुम्हारी यह कैसी अवस्था है ? तुम कौन हो ? देखनेमें तो तुम देवताके समान जान पड़ते हो; किन्तु तुम्हारा भोजन बहुत ही घृणित है। सौम्य ! ऐसा भोजन क्यों करते हो और कहाँ रहते हैं ?’

रघुनन्दन ! मेरी बात सुनकर उस स्वर्गवासी पुरुषने हाथ जोड़कर कहा—‘विप्रवर ! मेरा जैसा वृत्तान्त है, उसे आप सुनिये। पूर्वकालकी बात है, विदर्भदेशमें मेरे महायशस्वी पिता राज्य करते थे। वे वसुदेवके नामसे त्रिलोकीमें विस्थात और परम धार्मिक थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंसे एक-एक करके दो पुत्र हुए। मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र था। लोग मुझे श्वेत कहते थे। मेरे छोटे भाईका नाम सुरथ था। पिताकी मृत्युके बाद पुरवासियोंने विदर्भदेशके राज्यपर मेरा अधिषेक कर दिया। तब मैं वहाँ पूर्ण सावधानीके साथ राज्य-सञ्चालन करने लगा। इस प्रकार राज्य और प्रजाका पालन करते मुझे कई हजार वर्ष बीत गये। एक दिन किसी निमित्तको लेकर मुझे प्रबल वैराग्य हो गया और मैं मरणपर्यन्त तपस्याका निश्चय करके इस तपोवनमें चला आया। राज्यपर मैंने अपने भाई महारथी सुरथका अधिषेक कर दिया था। फिर इस सरोवरपर आकर मैंने अत्यन्त कठोर तपस्या आरम्भ की। अस्सी हजार वर्षोंतक इस वनमें मेरी तपस्या चालू रही। उसके प्रभावसे मुझे भुवनोंमें सर्वश्रेष्ठ कल्याणमय ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। किन्तु वहाँ पहुँचनेपर मुझे भूख और प्यास अधिक सताने लगी। मेरी इन्द्रियाँ तलमला उठीं। मैंने त्रिलोकीके सर्वश्रेष्ठ देवता ब्रह्माजीसे पूछा—‘भगवन् ! यह लोक तो भूख और प्याससे रहित सुना गया है; यह मुझे किस कर्मका फल प्राप्त हुआ है कि भूख और प्यास यहाँ भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ती ? देव ! शीघ्र बताइये, मेरा आहार क्या है ?’ महामुने ! इसपर ब्रह्माजीने बहुत देरतक

सोचनेके बाद कहा—‘तात ! पृथ्वीपर कुछ दान किये बिना यहाँ कोई वस्तु खानेको नहीं मिलती। तुमने उस जन्ममें भिखर्मंगेको कभी भीखतक नहीं दी। [जब तुम राजभवनमें रहकर राज्य करते थे,] उस समय भूलसे या मोहवश तुम्हारे द्वारा किसी अतिथिको भोजन नहीं मिला है। इसलिये यहाँ रहते हुए भी तुम्हें भूख-प्यासका कष्ट भोगना पड़ता है। राजेन्द्र ! भाँति-भाँतिके आहारोंसे जिसको तुमने भलीभाँति पुष्ट किया था, वह तुम्हारा उत्तम शरीर पड़ा हुआ है; उसीका मांस खाओ, उसीसे तुम्हारी तृप्ति होगी।’

‘ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर मैंने पुनः उनसे निवेदन किया—‘प्रभो ! अपने शरीरका भक्षण कर लेनेपर भी फिर मेरे लिये दूसरा कोई आहार नहीं रह जाता है। जिससे इस शरीरकी भूख मिट सके तथा जो कभी चुकनेवाला न हो, ऐसा कोई भोजन मुझे देनेकी कृपा कीजिये।’ तब ब्रह्माजीने कहा—‘तुम्हारा शरीर ही अक्षय बना दिया गया है। उसे प्रतिदिन खाकर तुम तृप्तिका अनुभव करते रहोगे। इस प्रकार अपने ही शरीरका मांस खाते जब तुम्हें सौ वर्ष पूरे हो जायेंगे, उस समय तुम्हारे विशाल एवं दुर्गम तपोवनमें महर्षि अगस्त्य पधारेंगे। उनके आनेपर तुम संकटसे छूट जाओगे। राजर्षे ! वे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं, फिर तुम्हारे इस घृणित आहारको छुड़ाना उनके लिये कौन बड़ी बात है। भगवान् ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मैं अपने शरीरके मांसका घृणित भोजन करने लगा। विप्रवर ! यह कभी नष्ट नहीं होता तथा इससे मेरी पूर्ण तृप्ति भी हो जाती है। न जाने कब वे मुनि इस वनमें आकर मुझे दर्शन देंगे, यही सोचते हुए मुझे सौ वर्ष पूरे हो गये हैं। ब्रह्मन् ! अब अगस्त्य मुनि ही मेरे सहायक होंगे, यह बिलकुल निश्चित बात है।’

राजा श्वेतका यह कथन सुनकर तथा उनके उस घृणित आहारपर दृष्टि डालकर मैंने कहा—‘अच्छा, तो तुम्हारे सौभाग्यसे मैं आ गया, अब निःसन्देह तुम्हारा उद्धार करूँगा।’ तब वे मुझे पहचानकर दण्डकी भाँति

मेरे सामने पृथ्वीपर पड़ गये। यह देख मैंने उन्हें उठा लिया और कहा—‘बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा उपकार करूँ ?’

राजा बोले—ब्रह्मन् ! इस घृणित आहारसे तथा जिस पापके कारण यह मुझे प्राप्त हुआ है, उससे मेरा आज उद्धार कीजिये, जिससे मुझे अक्षय लोककी प्राप्ति हो सके। ब्रह्मर्षे ! अपने उद्धारके लिये मैं यह दिव्य आभूषण आपकी भेंट करता हूँ। इसे लेकर मुझपर कृपा कीजिये।

रघुनन्दन ! उस स्वर्गवासी राजाकी ये दुःखभरी बातें सुनकर उसके उद्धारकी दृष्टिसे ही वह दान मैंने स्वीकार किया, लोभवश नहीं। उस आभूषणको लेकर ज्यों ही मैंने अपने हाथपर रखा, उसी समय उनका वह मुर्दा शरीर अदृश्य हो गया। फिर मेरी आज्ञा लेकर वे राजर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ विमानद्वारा ब्रह्मलोकको चले गये। इन्द्रके समान तेजस्वी राजर्षि श्वेतने ही मुझे यह सुन्दर आभूषण दिया था और इसे देकर वे पापसे मुक्त हो गये।



दण्डकारण्यकी उत्पत्तिका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—अगस्त्यजीके ये अद्भुत वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीने विस्मयके कारण पुनः प्रश्न किया—‘महामुने ! वह बन, जिसका विस्तार सौ योजनका था, पशु-पक्षियोंसे रहित, निर्जन, सूना और भयङ्कर कैसे हुआ ?’

अगस्त्यजी बोले—राजन् ! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, वैवस्वत मनु इस पृथ्वीका शासन करनेवाले राजा थे। उनके पुत्रका नाम इक्षवाकु था। इक्षवाकु बड़े ही सुन्दर और अपने भाइयोंमें सबसे बड़े थे। महाराज उनको बहुत मानते थे। उन्होंने इक्षवाकुको भूमप्डलके राज्यपर अधिषिक्त करके कहा—‘तुम पृथ्वीके राजवंशोंके अधिपति (सप्राट) बनो।’ रघुनन्दन ! ‘बहुत अच्छा’ कहकर इक्षवाकुने पिताकी आज्ञा स्वीकार की। तब वे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बोले—‘बेटा ! अब तुम दण्डके द्वारा प्रजाकी रक्षा करो। किन्तु दण्डका अकारण प्रयोग न करना। मनुष्योंके द्वारा अपराधियोंको जो दण्ड दिया जाता है, वह शास्त्रीय विधिके अनुसार [उचित अवसरपर] प्रयुक्त होनेपर राजाको स्वर्गमें ले जाता है। इसलिये महाबाहो ! तुम दण्डके समुचित प्रयोगके लिये सदा सचेष्ट रहना। ऐसा करनेपर संसारमें तुम्हारे द्वारा अवश्य परम धर्मका पालन होगा।’

इस प्रकार एकाग्र चित्तसे अपने पुत्र इक्षवाकुको बहुत-से उपदेश दे महाराज मनु बड़ी प्रसन्नताके साथ

ब्रह्मलोकको सिधार गये। तत्पश्चात् राजा इक्षवाकुको यह चिन्ता हुई कि ‘मैं कैसे पुत्र उत्पन्न करूँ ?’ इसके लिये उन्होंने नाना प्रकारके शास्त्रीय कर्म (यज्ञ-यागादि) किये और उनके द्वारा राजाको अनेकों पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। देवकुमारके समान तेजस्वी राजा इक्षवाकुने पुत्रोंको जन्म देकर पितरोंको सन्तुष्ट किया। रघुनन्दन ! इक्षवाकुके पुत्रोंमें जो सबसे छोटा था, वह [गुणोंमें] सबसे श्रेष्ठ था। वह शूर और विद्वान् तो था ही, प्रजाका आदर करनेके कारण सबके विशेष गौरवका पात्र हो गया था। उसके बुद्धिमान् पिताने उसका नाम दण्ड रखा और विन्ध्यगिरिके दो शिखरोंके बीचमें उसके रहनेके लिये एक नगर दे दिया। उस नगरका नाम मधुमत्त था। धर्मात्मा दण्डने बहुत वर्षोंतक वहाँका अकण्टक राज्य किया। तदनन्तर एक समय, जब कि चारों ओर चैत्र मासकी मनोरम छटा छा रही थी, राजा दण्ड भार्गव मुनिके रमणीय आश्रमके पास गया। वहाँ जाकर उसने देखा— भार्गव मुनिकी परम सुन्दरी कन्या, जिसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी, बनमें धूम रही है। उसे देखकर राजा दण्डके मनमें पापका उदय हुआ और वह कामबाणसे पीड़ित हो कन्याके पास जाकर बोला—‘सुन्दरी ! तुम कहाँसे आयी हो ? शोभामयी ! तुम किसकी कन्या हो ? मैं कामसे पीड़ित होकर तुमसे ये बातें पूछ रहा हूँ। वरारोहे ! मैं तुम्हारा दास हूँ। सुन्दरि ! मुझ भक्तको अङ्गीकार करो।’

अरजा बोली—राजेन्द्र ! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भार्गव-वंशकी कन्या हूँ। पुण्यात्मा शुक्राचार्यकी मैं ज्येष्ठ पुत्री हूँ, मेरा नाम अरजा है। पिताजी इस आश्रमपर ही निवास करते हैं। महाराज ! शुक्राचार्य मेरे पिता हैं और आप उनके शिष्य हैं। अतः धर्मके नाते मैं आपकी बहिन हूँ। इसलिये आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। यदि दूसरे कोई दुष्ट पुरुष भी मुझपर कुटृष्टि करें तो आपको सदा उनके हाथसे मेरी रक्षा करनी चाहिये। मेरे पिता बड़े क्रोधी और भयङ्कर हैं। वे [अपने शापसे] आपको भस्म कर सकते हैं। अतः नृपश्रेष्ठ ! आप मेरे महातेजस्वी पिताके पास जाइये और धर्मानुकूल बर्तावके द्वारा उनसे मेरे लिये याचना कीजिये। अन्यथा [इसके विपरीत आचरण करनेपर] आपपर महान् एवं धोर दुःख आ पड़ेगा। मेरे पिताका क्रोध उभड़ जानेपर वे समूची त्रिलोकीको भी जलाकर खाक कर सकते हैं।

दण्ड बोला—सुन्दरी ! तुम्हें पा लेनेपर चाहे मेरा वंध हो जाय अथवा वधसे भी महान् कष्ट भोगना पड़े [मुझे स्वीकार है]। भीरु ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो।

ऐसा कहकर राजाने उस कन्याको बलपूर्वक बाहुपाशमें कस लिया और उस एकान्त वनमें, जहाँसे कहीं आवाज भी नहीं पहुँच सकती थी, उसे नंगा कर दिया। बैचारी अबला उसकी भुजाओंसे छूटनेके लिये बहुत छटपटायी, परन्तु फिर भी उसने स्वेच्छानुसार उसके साथ भोग किया। राजा दण्ड वह अत्यन्त कठोरतापूर्ण और महाभयानक अपराध करके तुरंत अपने नगरको चल दिया तथा भार्गव-कन्या अरजा दीनभावसे रोती हुई अत्यन्त उद्विग्न हो आश्रमके समीप अपने देव-तुल्य पिताके पास आयी। उसके पिता अमित तेजस्वी देवर्षि शुक्राचार्य सरोवरपर स्नान करने गये थे। स्नान करके वे दो ही बड़ीमें शिष्योंसहित आश्रमपर लौट आये। [आश्रमपर आकर] उन्होंने देखा—अरजाकी दशा बड़ी दयनीय है, वह धूलमें सनी हुई है। [तुरंत ही सारा रहस्य उनके ध्यानमें आ

गया।] फिर तो शुक्रको बड़ा रोष हुआ, वे तीनों लोकोंको दग्ध-सा करते हुए अपने शिष्योंको सुनाकर बोले—‘धर्मके विपरीत आचरण करनेवाले अदूरदशीं दण्डके ऊपर प्रज्वलित अग्निशिखाके समान भयङ्कर विपत्ति आ रही है; तुम सब लोग देखना—वह खोटी बुद्धिवाला पापी राजा अपने देश, भूत्य, सेना और वाहनसहित नष्ट हो जायगा। उसका राज्य सौ योजन लम्बा-चौड़ा है, उस समूचे राज्यमें इन्द्र धूलकी बड़ी भारी वर्षा करेंगे। उस राज्यमें रहनेवाले स्थावर-जङ्गम जितने भी प्राणी हैं, उन सबका उस धूलकी वर्षासे शीघ्र ही नाश हो जायगा। जहाँतक दण्डका राज्य है, वहाँतकके उपर्वनों और आश्रमोंमें अकस्मात् सात राततक धूलकी वर्षा होती रहेगी।’

क्रोधसे संतप्त होनेके कारण इस प्रकार शाप दे महर्षि शुक्रने आश्रमवासी शिष्योंसे कहा—‘तुमलोग यहाँ रहनेवाले सब लोगोंको इस राज्यकी सीमासे बाहर ले जाओ।’ उनकी आज्ञा पाते ही आश्रमवासी मनुष्य शीघ्रतापूर्वक उस राज्यसे हट गये और सीमासे बाहर जाकर उन्होंने अपने डेरे डाल दिये। तदनन्तर शुक्राचार्य अरजासे बोले—‘ओ नीच बुद्धिवाली कन्या ! तू अपने चित्तको एकाग्र करके सदा इस आश्रमपर ही निवास कर। यह चार कोसके विस्तारका सुन्दर शोभासम्पन्न सरोवर है। अरजे ! तू रजोगुणसे रहित सात्त्विक जीवन व्यतीत करती हुई सौ वर्षोंतक यहाँ रह।’ महर्षिका यह आदेश सुन अरजाने ‘तथास्तु’ कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की। उस समय वह बहुत ही दुःखी हो रही थी। शुक्राचार्यने कन्यासे उपर्युक्त बात कहकर वहाँसे दूसरे आश्रमके लिये प्रस्थान किया। ब्रह्मवादी महर्षिके कथनानुसार विन्ध्यगिरिके शिखरोंपर फैला हुआ राजा दण्डका समूचा राज्य एक सप्ताहके भीतर ही जलकर खाक हो गया। तबसे वह विशाल वन ‘दण्डकारण्य’ कहलाता है। रघुनन्दन ! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सारा प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया, अब सन्ध्योपासनका समय बीता जा रहा है। ये महर्षिगण सब ओर जल्से भरे घड़े लेकर अर्घ्य दे भगवान् सूर्यकी पूजा कर रहे हैं। आप

भी चलकर सन्ध्यावन्दन करें।

ऋषिकी आज्ञा मानकर श्रीरघुनाथजी सन्ध्योपासन करनेके लिये उस पवित्र सरोवरके तटपर गये। तदनन्तर आचमन एवं सायं-सन्ध्या करके श्रीरघुनाथजी महात्मा कुम्भजके आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आदरके साथ अधिक गुणकारी फल-मूल तथा रसीले साग भोजनके लिये अर्पण किये। नरश्रेष्ठ श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस अमृतके समान मधुर भोजनका भोग लगाया और पूर्ण तृप्त होकर रात्रिमें वहीं शयन किया। सबोरे उठकर



उन्होंने अपना नित्यकर्म किया और वहाँसे विदा होनेके लिये महर्षिके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिको प्रणाम किया और कहा—‘ब्रह्मन् ! अब मैं आपसे विदा होना चाहता हूँ, आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। महामुने ! आज मैं आपके दर्शनसे कृतार्थ और अनुगृहीत हुआ।’

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे अद्भुत वचन कहनेपर तपस्वी अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—‘श्रीराम ! कल्याणमय अक्षरोंसे युक्त आपका यह वचन बड़ा ही अद्भुत है। रघुनन्दन ! यह सम्पूर्ण प्राणियोंको पवित्र करनेवाला है। जो मनुष्य आपको दो घड़ी भी देख लेते

है, वे समस्त प्राणियोंमें पवित्र हैं और देवता कहलाते हैं। * रघुश्रेष्ठ ! आप समस्त देहधारियोंके लिये परम पावन हैं। आपका प्रभाव ऐसा ही है। जो लोग आपकी चर्चा करेंगे, उन्हें भी सिद्धि प्राप्त होगी। आप इस मार्गसे शान्त एवं निर्भय होकर जाइये और धर्मपूर्वक राज्यका पालन कीजिये; क्योंकि आप ही इस जगत्के एकमात्र सहारे हैं।’

महर्षिके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया तथा अन्यान्य मुनिवरोंको भी, जो सब-के-सब तपस्याके धनी थे, सादर अभिवादन करके वे शान्तभावसे सुवर्णभूषित पुष्पक विमानपर चढ़ गये। यात्राके समय मुनिगणोंने सब ओरसे उनपर आशीर्वादोंकी वर्षा की। समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजी दोपहर होते-होते अयोध्यामें पहुँचकर सातवीं छ्योदीमें उतरे। तत्पश्चात् उन्होंने इच्छानुसार चलनेवाले उस परम सुन्दर पुष्पक विमानको विदा कर दिया। फिर महाराजने द्वारपालोंसे कहा—‘तुमलोग फुर्तीसे जाकर भरत और लक्ष्मणको मेरे आगमनकी सूचना दो और उन्हें अपने साथ ही लिवा लाओ; विलम्ब



* मुहूर्तमपि राम त्वां नेत्रेणेक्षत्ति ये नराः। पाविता: सर्वभूतेषु कथ्यन्ते त्रिदिवौकसः ॥(३४ । ३८)

न करना ।' द्वारपाल आज्ञाके अनुसार जाकर दोनों कुमारोंको बुला ले आये । श्रीरघुनाथजी अपने प्रियबन्धु भरत और लक्ष्मणको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें छातीसे लगाकर बोले—मैंने ब्राह्मणके शुभ कार्यका

यथावत् सम्पादन किया है । अब मैं [प्रतिमास्थापन, देवालय-निर्माण आदि] पूर्त-धर्मका अनुष्ठान करूँगा । वीरो ! मेरा कान्यकुञ्ज देशमें जाकर भगवान् वामनकी प्रतिष्ठा करनेका विचार है ।'



श्रीरामका लङ्का, रामेश्वर, पुष्कर एवं मथुरा होते हुए गङ्गातटपर जाकर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना करना

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्में ! श्रीरामचन्द्रजीने कान्यकुञ्ज देशमें भगवान् श्रीवामनकी प्रतिष्ठा किस प्रकार की, उन्हें श्रीवामनजीका विग्रह कहाँ प्राप्त हुआ—इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये । भगवन् ! श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा बड़ी ही मधुर, पावन तथा मनोरम होती है । आपने जो यह कथा सुनायी है, उससे मेरे हृदय और कानोंको बड़ा सुख मिला है । सारा संसार भगवान् श्रीरामको प्रेम और अनुरागसे देखता है; वे बड़े ही धर्मज्ञ थे । वे जब पृथ्वीका राज्य करते थे, उस समय सभी वृक्ष फल और रससे भरे रहते थे । पृथ्वी बिना जोते ही अन्न देती थी । उन महात्माका इस भूमप्डलपर कोई शत्रु नहीं था । अतः मुनिवर ! मैं उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी-का सारा चरित्र सुनना चाहता हूँ ।

पुलस्त्यजी बोले—महाराज ! धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने कुछ कालके पश्चात् जो महत्वपूर्ण कार्य किया, उसे एकाग्र मनसे सुनो । एक दिन श्रीरघुनाथजी मन-ही-मन इस बातका विचार करने लगे कि 'रक्षस-कुलोत्पन्न राजा विभीषण लङ्कामें रहकर सदा ही राज्य करते रहें—उसमें किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा न पढ़े, इसके लिये क्या उपाय हो सकता है । मुझे चलकर उन्हें हितकी बात बतानी चाहिये, जिससे उनका राज्य सदा कायम रहे ।' अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार विचार कर रहे थे, उसी समय भरतजी वहाँ आये और श्रीरामको विचारमग्न देख यों बोले—'देव ! आप क्या सोच रहे हैं ? यदि कोई गुप्त बात न हो तो मुझे बतानेकी कृपा करें ।' श्रीरघुनाथजीने कहा—'मेरी कोई भी बात तुमसे छिपानेयोग्य नहीं है । तुम और महायशस्वी

लक्ष्मण मेरे बाहरी प्राण हो । मेरे मनमें इस समय सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि विभीषण देवताओंके साथ कैसा बर्ताव करते हैं; क्योंकि देवताओंके हितके लिये ही मैं रावणका वध किया था । इसलिये वत्स ! जहाँ विभीषण हैं, वहाँ मैं जाना चाहता हूँ । लङ्कापुरीको देखकर रक्षसराजको उनके कर्तव्यका उपदेश करूँगा ।'

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर हाथ जोड़कर खड़े हुए भरतने कहा—'मैं भी आपके साथ चलूँगा ।' श्रीरघुनाथजी बोले—'महाबाहो ! अवश्य चलो ।' फिर वे लक्ष्मणसे बोले—'वीर ! तुम नगरमें रहकर हम दोनोंके लौटनेतक इसकी रक्षा करना ।' लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने पुष्पक विमानका स्मरण किया ।



विमानके आ जानेपर वे दोनों भाई उसपर आरूढ़ हुए। सबसे पहले वह विमान गान्धार देशमें गया, वहाँ भगवान् ने भरतके दोनों पुत्रोंसे मिलकर उनकी राजनीतिका निरीक्षण किया। इसके बाद पूर्व दिशामें जाकर वे लक्ष्मणके पुत्रोंसे मिले। उनके नगरोंमें छः रातें व्यतीत करके दोनों भाई राम और भरत दक्षिण दिशाकी ओर चले। गङ्गा-यमुनाके संगम-स्थान प्रयागमें जाकर महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अत्रिमुनिके आश्रमपर गये। वहाँ अत्रिमुनिसे बातचीत करके दोनों भाइयोंने जनस्थानकी यात्रा की। [जनस्थानमें प्रवेश करते हुए] श्रीरामचन्द्रजी बोले—“भरत ! यही वह स्थान है, जहाँ दुरात्मा रावणने गृध्रराज जटायुको मारकर सीताका हरण किया था। जटायु हमारे पिताजीके मित्र थे। इस स्थानपर हमलोगोंका दुष्ट बुद्धिवाले कबस्थके साथ महान् युद्ध हुआ था। कबस्थको मारकर हमने उसे आगमें जला दिया था। मरते समय उसने बताया कि सीता रावणके घरमें है। उसने यह भी कहा कि ‘आप ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये। वहाँ सुग्रीव नामके वानर रहते हैं, वे आपके साथ मित्रता करेंगे।’ यही वह पम्पा सरोवर है, जहाँ शबरी नामकी तपस्विनी रहती थी। यही वह स्थान है, जहाँ सुग्रीवके लिये मैंने वालीको मारा था। वीर ! ‘वालीकी राजधानी किञ्चिन्धापुरी यह दिखायी दे रही है। इसीमें धर्मात्मा वानरराज सुग्रीव अन्यान्य वानरोंके साथ निवास करते हैं।’ सुग्रीव उस समय अपने सभाभवनमें विराजमान थे। इतनेमें ही भरत और श्रीरामचन्द्रजी किञ्चिन्धापुरीमें जा पहुँचे। उन दोनों भाइयोंको उपस्थित देख सुग्रीवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उन दोनों भाइयोंको सिंहासनपर बिठाकर सुग्रीवने अर्ध्य निवेदन किया और साथ ही अपने-आपको भी उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। इस प्रकार जब परम धर्मात्मा श्रीरघुनाथजी सभामें विराजमान हुए तब अङ्गद, हनुमान्, नल, नील, पाटल और ऋक्षराज जाम्बवान् आदि सभी वानर-वीर सेनाओंसहित वहाँ आये। अन्तःपुरकी सभी स्त्रियाँ—रुमा और तारा आदि भी उपस्थित हुईं। सबको अनुपम आनन्द प्राप्त हुआ। सब लोग भगवान् को

साधुवाद देने लगे और सबने भगवान् का दर्शन करके प्रेमाश्रुओंसे गदगद हो उन्हें प्रणाम किया।”

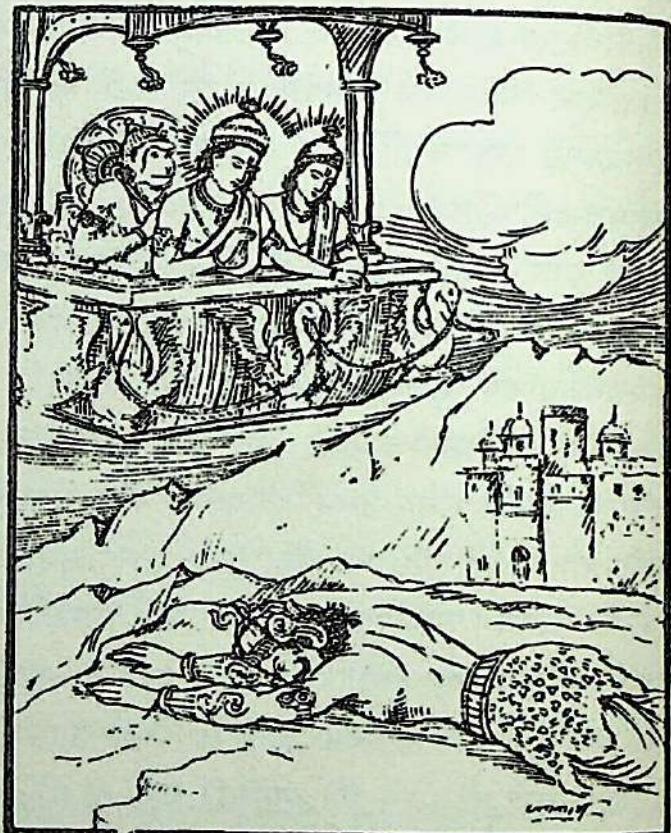


सुग्रीव बोले—महाराज ! आप दोनोंने किस कार्यसे यहाँ पधारनेकी कृपा की है, यह शीघ्र बताइये। सुग्रीवके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीकी आशासे भरतने लङ्कायात्राकी बात बतायी। तब सुग्रीवने कहा—‘मैं भी आप दोनोंके साथ राक्षसराज विभीषणसे मिलनेके लिये लङ्कापुरीमें चलूँगा।’ सुग्रीवके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—‘चलो।’ फिर सुग्रीव, श्रीराम और भरत—ये तीनों पुष्पक विमानपर बैठे। तुरंत ही वह विमान समुद्रके उत्तर-तटपर जा पहुँचा। उस समय श्रीरामने भरतसे कहा—‘यही वह स्थान है, जहाँ राक्षसराज विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर प्राण बचानेके लिये मेरे पास आये थे। उसी समय लक्ष्मणने लङ्काके राज्यपर उनका अभिषेक किया था। यहाँ मैं समुद्रके इस पार तीन दिनतक इस आशासे ठहरा रहा कि यह मुझे दर्शन देगा और [सगरका पुत्र होनेके नाते] अपना कुटुम्बी समझकर मेरा कार्य करेगा। किन्तु तबतक इसने मुझे दर्शन नहीं दिया। यह देखकर चौथे दिन मैंने बड़े वेगसे धनुष चढ़ाकर हाथमें दिव्यास्त्र ले

लिया। यह देख समुद्रको बड़ा भय हुआ और वह शरणार्थी होकर लक्ष्मणके पास पहुँचा। सुग्रीवने भी बहुत अनुनय-विनय की और कहा—‘प्रभो ! इसे क्षमा कर दीजिये।’ तब मैंने वह बाण मरुदेशमें फेंक दिया। इसके बाद समुद्रने मुझसे कहा—‘रघुनन्दन ! आप मेरे ऊपर पुल बाँधकर जलराशिसे पूर्ण महासागरके पार चले जाइये।’ तब मैंने वरुणके निवास-स्थान समुद्रपर यह महान् पुल बाँधा था। श्रेष्ठ वानरोंने मिलकर तीन ही दिनोंमें यह कार्य पूरा किया था। पहले दिन उन्होंने चौदह योजनतक पुल बाँधा, दूसरे दिन छत्तीस योजनतक और तीसरे दिन सौ योजनतकका पूरा पुल तैयार कर दिया। देखो, यह लङ्का दिखायी दे रही है। इसका परकोटा और नगरद्वार—सब सोनेके बने हुए हैं। यहाँ वानरवीरोंने बहुत बड़ा घेरा डाला था। यहाँ नीलने राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्तका वध किया था। इसी स्थानपर हनुमान्‌जीने धूम्राक्षको मार गिराया था। यहाँ सुग्रीवने महोदर और अतिकायको मौतके घाट उतारा था। इसी स्थानपर मैंने कुष्मकर्णको और लक्ष्मणने इन्द्रजितको मारा था। तथा यहीं मैंने राक्षसराज दशग्रीवका वध किया था। यहाँ लोकपितामह ब्रह्माजी मुझसे वार्तालाप करनेके लिये पधारे थे। उनके साथ पार्वतीसहित त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर भी थे। हमारे पिता महाराज दशरथ भी स्वर्गलोकसे यहाँ पधारे थे। जानकीकी शुद्धि चाहनेवाले उन सभी लोगोंके समक्ष सीताने इस स्थानपर अग्रिमें प्रवेश किया था और वे सर्वथा शुद्ध प्रमाणित हुई थीं। लङ्कापुरीके अधिष्ठाता देवताओंने भी सीताकी अग्री-परीक्षा देखी थी। पिताजीकी आज्ञासे मैंने सीताको स्वीकार किया। उसके बाद महाराजने मुझसे कहा—‘बेटा ! अब अयोध्याको जाओ।’

श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार बात कर रहे थे, पुष्पक विमान वही ठहरा रहा। उसी समय प्रधान-प्रधान राक्षसोंने, जो वहाँ उपस्थित थे, तुरंत ही विभीषणके पास जा बढ़े हृषीमें भरकर निवेदन किया—‘राक्षसराज ! सुग्रीवके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं, उनके साथ उन्हींकी-सी आकृतिवाले एक दूसरे पुरुष भी हैं।’

श्रीरामचन्द्रजी नगरके समीप आ गये हैं, यह समाचार सुनकर विभीषणने [प्रिय संवाद सुनानेवाले] उन दूतोंका विशेष सत्कार किया तथा उन्हें धन देकर उनके सभी मनोरथ पूर्ण किये। फिर लङ्कापुरीको सजानेकी आज्ञा देकर वे मन्त्रियोंके साथ बाहर निकले। मेर पर्वतपर उदित हुए सूर्यकी भाँति भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे देख विभीषणने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया



और कहा—‘भगवन् ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये; क्योंकि आज मुझे आपके विश्व-वन्द्य-चरणोंका दर्शन मिला है।’ इस प्रकार श्रीरघुनाथजीका अभिवादन करके वे भरत और सुग्रीवसे भी गले लगकर मिले। तदनन्तर उन्होंने स्वर्गसे भी बढ़कर सुशोभित लङ्कापुरीमें सबको प्रवेश कराया और सब प्रकारके रथोंसे सुशोभित रावणके जगमगाते हुए भवनमें उन्हें ठहराया। जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हो गये, तब विभीषणने अर्ध्य निवेदन करके हाथ जोड़कर सुग्रीव और भरतसे कहा—‘यहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीरामको झेट करने योग्य कोई वस्तु मेरे पास नहीं है। यह लङ्कापुरी तो स्वयं भगवान् ही त्रिलोकीके लिये कण्टकरूप पापी शत्रुको मारकर मुझे

प्रदान की है। यह पुरी ही नहीं, ये स्थियाँ, वे पुत्र तथा स्वयं मैं—यह सब कुछ भगवान्की सेवामें अर्पित है। भगवन्! आपको नमस्कार है; आप इसे स्वीकार करें।'

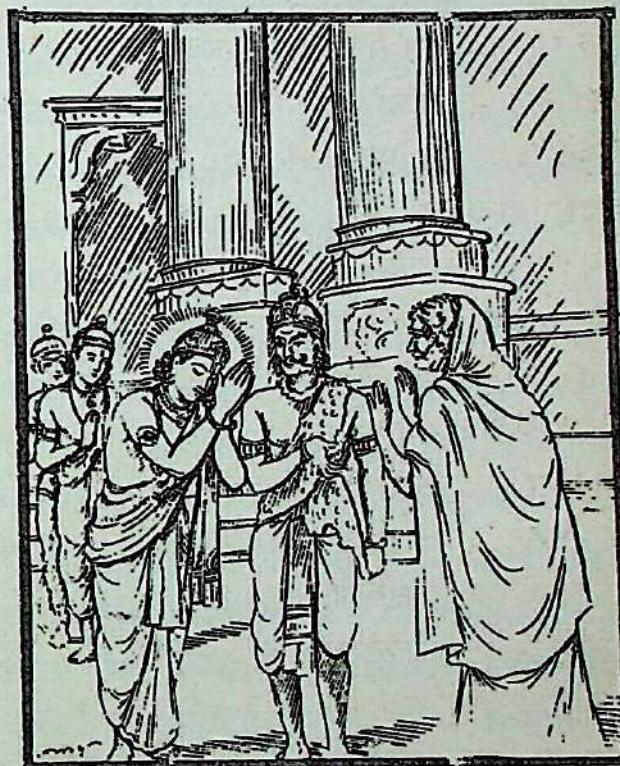
तदनन्तर राजा विभीषणका मन्त्रिमण्डल और लङ्काके निवासी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो वहाँ आये और विभीषणसे बोले—'प्रभो! हमें श्रीरामजीका दर्शन करा दीजिये।' विभीषणने महाराज श्रीरामचन्द्रजीसे उनका परिचय कराया और श्रीरामकी आज्ञासे भरतने उन राक्षस-पतियोंके द्वारा भेटमें दिये हुए धन और रत्नराशिको ग्रहण किया। इस प्रकार राक्षसराजके भवनमें श्रीरघुनाथजीने तीन दिनतक निवास किया। चौथे दिन जब श्रीरामचन्द्रजी राजसभामें विराजमान थे, राजमाता कैकसीने विभीषणसे कहा—'बेटा! मैं भी अपनी बहुओंके साथ चलकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करूँगी, तुम उन्हें सूचना दे दो। ये महाभाग श्रीरघुनाथजी चार मूर्तियोंमें प्रकट हुए सनातन भगवान् श्रीविष्णु हैं तथा परम सौभाग्यवती सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। तुम्हारा बड़ा भाई उनके स्वरूपको नहीं पहचान पाया था। तुम्हारे पिताने देवताओंके सामने पहले ही कह दिया था कि भगवान् श्रीविष्णु रघुकुलमें राजा दशरथके पुत्ररूपसे अवतार लेंगे। वे ही दशग्रीव रावणका विनाश करेंगे।'

विभीषण बोले—माँ! तुम श्रीरघुनाथजीके समीप अवश्य जाओ। मैं पहले जाकर उन्हें सूचना देता हूँ।

यों कहकर विभीषण जहाँ श्रीरामचन्द्रजी थे, वहाँ गये और वहाँ भगवान्का दर्शन करनेके लिये आये हुए सब लोगोंको विदा करके उन्होंने सभाभवनको सर्वथा एकान्त बना दिया। फिर श्रीरामके सम्मुख खड़े होकर कहा—'महाराज! मेरा निवेदन सुनिये; रावणको, कुम्भकर्णको तथा मुझको जन्म देनेवाली मेरी माता कैकसी आपके चरणोंका दर्शन चाहती है; आप कृपा करके उसे दर्शन दें।'

श्रीरामने कहा—'राक्षसराज! [तुम्हारी माता मेरी भी माता ही हैं,] मैं माताका दर्शन करनेकी इच्छासे स्वयं ही उनके पास चलूँगा। तुम शीघ्र मेरे आगे-आगे चलो।'

ऐसा कहकर वे सिंहासनसे उठे और चल पड़े। कैकसीके पास पहुँचकर उन्होंने मस्तकपर अञ्जलि बाँध उसे प्रणाम करते हुए कहा—'देवि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। [मित्रकी माता होनेके नाते] आप धर्मतः मेरी माता हैं। जैसे कौसल्या मेरी माता हैं, उसी प्रकार आप भी हैं।'



कैकसी बोली—वत्स! तुम्हारी जय हो, तुम चिरकालतक जीवित रहो। वीर! मेरे पतिने कहा था कि 'भगवान् श्रीविष्णु देवताओंका हित करनेके लिये रघुकुलमें मनुष्य-रूपसे अवतार लेंगे। वे रावणका विनाश करके विभीषणको राज्य प्रदान करेंगे। वे दशरथनन्दन श्रीराम वालीका वध और समुद्रपर पुल बाँधने आदिका कार्य भी करेंगे।' इस समय स्वामीके वचनोंका स्मरण करके मैंने तुम्हें पहचान लिया। सीता लक्ष्मी हैं, तुम श्रीविष्णु हो और वानर देवता हैं। अच्छा, बेटा! तुम्हें अमर यश प्राप्त हो।

विभीषणकी पत्नी सरमाने कहा—भगवन्! यहीं अशोक-वाटिकामें आपकी प्रिया श्रीजानकी देवीकी मैंने पूरे एक वर्षतक सेवा की थी, वे मेरी सेवासे यहाँ सुखपूर्वक रही हैं। परंतप! मैं प्रतिदिन श्रीसीताके चरणोंका स्मरण करती हूँ। रात-दिन यहीं सोचती रहती

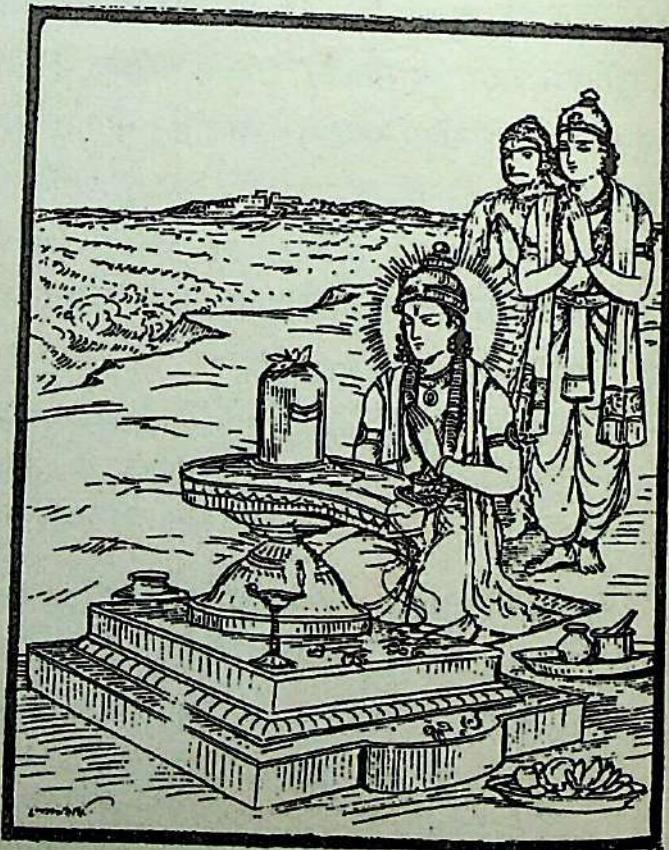
हूँ कि कब उनका दर्शन होगा । आप श्रीजनकनन्दिनीको अपने साथ ही यहाँ क्यों नहीं लेते आये ? उनके बिना अकेले आपकी शोभा नहीं हो रही है । आपके निकट सीता शोभा पाती हैं और सीताके समीप आप ।

जब सरमा इस प्रकार बात कर रही थी, उस समय भरत मन-ही-मन सोचने लगे—‘यह कौन स्त्री है, जो श्रीरघुनाथजीसे वार्तालाप कर रही है ?’ श्रीरामचन्द्रजी भरतका अभिप्राय ताड़ गये, वे तुरंत ही बोले—‘ये विभीषणकी पत्नी हैं, इनका नाम सरमा है । ये सीताकी प्रिय सखी हैं । वे इन्हें बहुत मानती हैं ।’ इतना कहकर वे सरमासे बोले—‘कल्याणी ! अब तुम भी जाओ और पतिके गृहकी रक्षा करो ।’ इस प्रकार सीताकी प्यारी सखी सरमाको विदा करके श्रीरामने विभीषणसे कहा—‘निष्पाप विभीषण ! तुम सदा देवताओंका प्रिय कार्य करना, कभी उनका अपराध न करना; तुम्हें देवराजके आज्ञानुसार ही चलना चाहिये । यदि लङ्घामें किसी तरह कोई मनुष्य चला आये तो राक्षसोंको उसका वध नहीं करना चाहिये, वरं मेरी ही भाँति उसका स्वागत-सत्कार करना चाहिये ।’

विभीषणने कहा—नरश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञाके अनुसार ही मैं सारा कार्य करूँगा ।’ विभीषण जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वायुदेवताने आकर श्रीरामसे कहा—‘महाभाग ! यहाँ भगवान् श्रीविष्णुकी वामनमूर्ति है, जिसने पूर्वकालमें राजा बलिको बाँधा था । आप उसे ले जायें और कान्यकुब्ज देशमें स्थापित कर दें ।’ वायुदेवताके प्रस्तावमें श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति जान विभीषणने श्रीवामनभगवान्के विग्रहको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया और लाकर भगवान् श्रीरामको समर्पित कर दिया । फिर उन्होंने इस प्रकार कहा—‘रघुनन्दन ! जिस समय मेघनादने इन्द्रको परास्त किया था, उस समय विजय-चिह्नके रूपमें वह इस वामनमूर्तिको [इन्द्रलोकसे] उठा लाया था । देवदेव ! अब आप—इन भगवान्को ले जाइये और यथास्थान इन्हें स्थापित कीजिये ।’

‘तथास्तु’ कहकर श्रीरघुनाथजी पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए । उनके पीछे असंख्य धन, रत्न और देवश्रेष्ठ

वामनजीको लेकर सुग्रीव और भरत भी विमानपर चढ़े । आकाशमें जाते समय श्रीरामने विभीषणसे कहा—‘तुम यहीं रहो ।’ यह सुनकर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘प्रभो ! आपने मुझे जो-जो आज्ञाएँ दी हैं, उस सबका मैं पालन करूँगा । परन्तु महाराज ! इस सेतुके मार्गसे पृथ्वीके समस्त मानव यहाँ आकर मुझे सतायेंगे । ऐसी परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये ?’ विभीषणकी बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथमें धनुष ले सेतुके दो टुकड़े कर दिये । फिर तीन विभाग करके बीचका दस योजन उड़ा दिया । उसके बाद एक स्थानपर एक योजन और तोड़ दिया । तदनन्तर वेलावन (वर्तमान रामेश्वर-क्षेत्र) में पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने श्रीरामेश्वरके नामसे देवाधिदेव महादेवजीकी स्थापना की तथा उनका विधिवत् पूजन किया ।



भगवान् रुद्र बोले—रघुनन्दन ! मैं इस समय यहाँ साक्षात् रूपसे विराजमान हूँ । जबतक यह संसार, यह पृथ्वी और यह आपका सेतु कायम रहेगा, तबतक मैं भी यहाँ स्थिरतापूर्वक निवास करूँगा ।

श्रीरामने कहा—भक्तोंको अभय करनेवाले देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है—दक्ष-यज्ञका

विध्वंस करनेवाले गौरीपते ! आपको नमस्कार है। आप ही शर्व^१, रुद्र^२, भव^३ और वरद^४ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। आपको नमस्कार है। आप पशुओं (जीवों) के स्वामी, नित्य उग्रस्वरूप तथा जटाजूट धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप ही महादेव, भीम^५ और त्र्यम्बक (त्रिनेत्रधारी) कहलाते हैं, आपको नमस्कार है। प्रजापालक, सबके ईश्वर, भग देवताके नेत्र फोड़नेवाले तथा अन्धकासुरका वध करनेवाले भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। आप नीलकण्ठ, भीम, वेधा (विधाता), ब्रह्माजीके द्वारा सुत, कुमार कार्तिकेयके शत्रुका विनाश करनेवाले, कुमारको जन्म देनेवाले, विलोहित^६, धूम्र^७, शिव^८, क्रथन^९, नीलशिखण्ड^{१०}, शूली (त्रिशूलधारी), दिव्यशायी,^{११} उग्र और त्रिनेत्र आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। सोना और धन आपका वीर्य है। आपका स्वरूप किसीके चिन्तनमें नहीं आ सकता। आप देवी पार्वतीके स्वामी हैं। सम्पूर्ण देवता आपकी स्तुति करते हैं। आप शरण लेने योग्य, कामना करने योग्य और सद्योजात^{१२} नामसे प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। आपकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है। आप मुण्डित भी हैं और जटाधारी भी। आप ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले, तपस्वी, शान्त, ब्राह्मणभक्त, जयस्वरूप,

विश्वके आत्मा, संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण विश्वको व्याप करके स्थित हैं; आपको नमस्कार है। आप दिव्यस्वरूप, शरणागतका कष्ट दूर करनेवाले, भक्तोंपर सदा ही दया रखनेवाले तथा विश्वके तेज और मनमें व्याप रहनेवाले हैं; आपको बारम्बार नमस्कार है।*

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव महादेवजीने अपने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—‘रघुनन्दन ! आपका कल्याण हो। कमलनयन परमेश्वर ! आप देवताओंके भी आराध्य देव और सनातन पुरुष हैं। नररूपमें छिपे हुए साक्षात् नारायण हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही आपने अवतार ग्रहण किया था, सो अब इस अवतारका सारा कार्य आपने पूर्ण कर दिया है। आपके बनाये हुए मेरे इस स्थानपर समुद्रके समीप आकर जो मनुष्य मेरा दर्शन करेंगे, वे यदि महापापी होंगे तो भी उनके सारे पाप नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्महत्या आदि जो कोई भी घोर पाप हैं, वे मेरे दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाते हैं—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। † अच्छा, अब आप जाइये और गङ्गाजीके तटपर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना कीजिये। पृथ्वीके आठ भाग करके [उन्हें

१. प्रलय-कालमें संसारका संहार करनेवाले। २. जगत्को रुलानेवाले। ३. संसारकी उत्पत्तिके कारण। ४. वर देनेवाले। ५. भयंकर रूप धारण करनेवाले। ६. लाल रंगवाले। ७. धूप्रैके समान रंगवाले। ८. कल्याणस्वरूप। ९. मारनेवाले। १०. नीले रंगका जटाजूट धारण करनेवाले। ११. दिव्यरूपसे शयन करनेवाले। १२. भक्तोंकी प्रार्थनासे तल्काल प्रकट होनेवाले।

* नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयंकर। गौरीकान्त नमस्तुर्यं दक्षयज्ञविनाशन ॥

नमः शर्वाय रुद्राय भवाय वरदाय च। पशुनां पतये नित्यमुग्राय च कपदिने ॥

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय विशाम्पते। ईशानाय भगवान्न नमोऽस्त्वम्बकवित्तिने ॥

नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा सुत। कुमारशत्रुनिश्चाय कुमारजननाय च ॥

विलोहिताय धूम्राय शिवाय क्रथनाय च। नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने ॥

उग्राय च त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे। अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥

अभिगम्याय काम्याय सद्योजाताय वै नमः। वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ॥

तथ्यमानाय शान्ताय ब्रह्मण्याय जयाय च। विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ॥

नमो नमस्ते दिव्याय प्रपत्रार्तिहराय च। भक्तानुकम्पिने नित्यं विश्वतेजोमनोगते ॥

(३५। १३९—१४७)

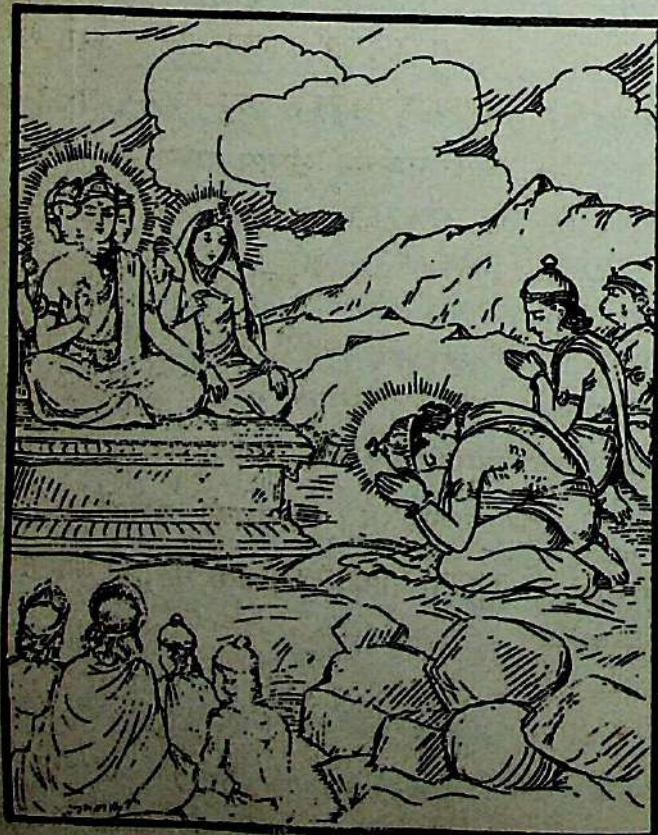
† इह त्वया कृते स्थाने मदीये रघुनन्दन। आगत्य मानवा राम पश्येयुरिह सागरे ॥

महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विनक्ष्यति। ब्रह्मवध्यादि पापानि दुष्टानि यानि कानिचित् ॥

दर्शनादेव नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा । (३५। १५२-१५३)

पुत्रोंको सौंप दीजिये और स्वयं]। अपने परम धामको पथारिये। भगवन्! आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी भगवान् शंकरको प्रणाम करके वहाँसे चल दिये। ऊपर-ही-ऊपर जब वे पुष्कर तीर्थके सामने पहुँचे तो उनके विमानकी गति रुक गयी। अब वह आगे नहीं बढ़ पाता था। तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—‘सुग्रीव! इस निराधार आकाशमें स्थित होकर भी यह विमान कैसे आबद्ध हो गया है?’ इसका कुछ कारण अवश्य होगा, तुम नीचे जाकर पता लगाओ।’ श्रीरघुनाथजीके आज्ञानुसार सुग्रीव विमानसे उत्तरकर जब पृथ्वीपर आये तो क्या देखते हैं कि देवताओं, सिद्धों और ब्रह्मियोंके समुदायके साथ चारों वेदोंसे युक्त भगवान् ब्रह्माजी विराजमान हैं। यह देख वे विमानपर जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—‘भगवन्! यहाँ समस्त लोकोंके पितामह ब्रह्माजी लोकपालों, वसुओं, आदित्यों और मरुदण्डोंके साथ विराजमान हैं। इसीलिये पुष्पक विमान उन्हें लाँधकर नहीं जा रहा है।’ तब श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णभूषित पुष्पक विमानसे उतरे और देवी गायत्रीके साथ बैठे हुए भगवान् ब्रह्माको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इसके बाद वे प्रणतभावसे उनकी स्तुति करने लगे।

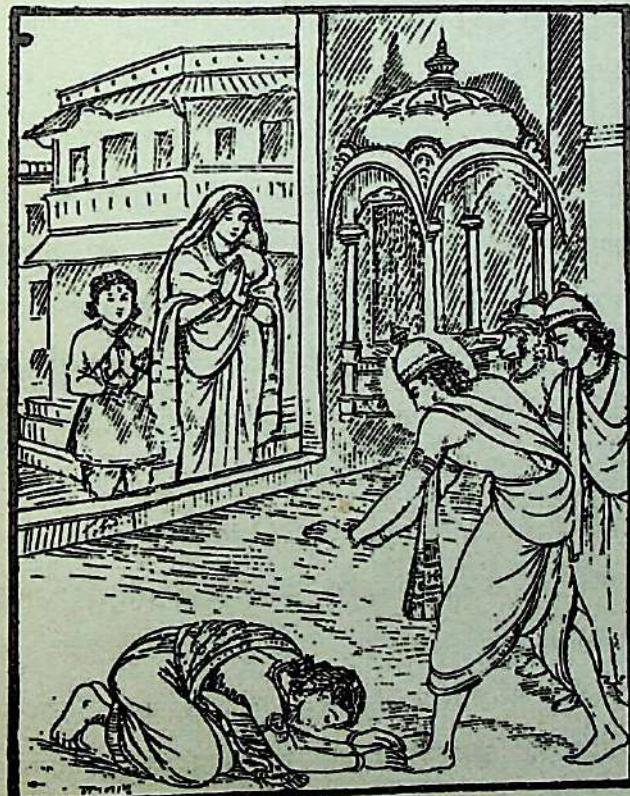


श्रीरामचन्द्रजीने कहा—मैं प्रजापतियों और देवताओंसे पूजित लोककर्ता ब्रह्माजीको नमस्कार करता हूँ। समस्त देवताओं, लोकों एवं प्रजाओंके स्वामी जगदीश्वरको प्रणाम करता हूँ। देवदेवेश्वर! आपके नमस्कार है। देवता और असुर दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं। आप भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंके स्वामी हैं। आप ही संहारकारी रुद्र हैं। आपके नेत्र भूरे रंगके हैं। आप ही बालक और आप ही वृद्ध हैं। गलेमें नीला चिह्न धारण करनेवाले महादेवजी तथा लम्बे उदरवाले गणेशजी भी आपके ही स्वरूप हैं। आप वेदोंके कर्ता, नित्य, पशुपति (जीवोंके स्वामी), अविनाशी, हाथोंमें कुश धारण करनेवाले, हंससे चिह्नित ध्वजावाले, भोक्ता, रक्षक, शंकर, विष्णु, जटाधारी, मुण्डित, शिखाधारी एवं दण्ड धारण करनेवाले, महान् यशस्वी, भूतोंके ईश्वर, देवताओंके अधिपति, सबके आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक, सबका संहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, जगदगुरु, अविकारी, कमण्डलु धारण करनेवाले देवता, सुक्-स्नुवा आदि धारण करनेवाले, मृत्यु एवं अमृतस्वरूप, पारियात्र पर्वतरूप, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, ब्रह्मचारी, व्रतधारी, हृदय-गुहामें निवास करनेवाले, उत्तम कमल धारण करनेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्यके समान अरुण कान्तिवाले, कमलपर वास करनेवाले, षडविघ ऐश्वर्यसे परिपूर्ण, सावित्रीके पति, अच्युत, दानवोंको वर देनेवाले, विष्णुसे वरदान प्राप्त करनेवाले, कर्मकर्ता, पापहारी, हाथमें अभय-मुद्रा धारण करनेवाले, अग्निरूप मुखवाले, अग्निमय ध्वजा धारण करनेवाले, मुनिस्वरूप, दिशाओंके अधिपति, आनन्दरूप, वेदोंकी सृष्टि करनेवाले, धर्मादि चारों पुरुषार्थोंके स्वामी, वानप्रस्थ, वनवासी, आश्रमोद्धारा पूजित, जगत्को धारण करनेवाले, कर्ता, पुरुष, शाश्वत, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, विरूपाक्ष, मनुष्योंके गन्तव्य मार्ग, भूतभावन, ऋक्, साम और यजुः—इन तीनों वेदोंको धारण करनेवाले, अनेक रूपोंवाले, हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी, अज्ञानियोंको—विशेषतः दानवोंको मोह और बन्धनमें डालनेवाले,

देवताओंके भी आराध्यदेय, देवताओंसे बढ़े-चढ़े, कमलसे चिह्नित जटा धारण करनेवाले, धनुर्धर, भीमरूप और धर्मके लिये पराक्रम करनेवाले हैं।

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीकी जब इस प्रकार स्तुति की गयी, तब वे विनीतभावसे खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकड़कर बोले—‘रघुनन्दन ! आप साक्षात् श्रीविष्णु हैं। देवताओंका कार्य करनेके लिये इस पृथ्वीपर मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। प्रभो ! आप देवताओंका सम्पूर्ण कार्य कर चुके हैं। अब गङ्गाजीके दक्षिण किनारे श्रीवामनभगवान्की प्रतिमाको स्थापित करके आप अयोध्यापुरीको लौट जाइये और वहाँसे परमधामको सिधारिये।’ ब्रह्माजीसे आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम किया और पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँसे मथुरापुरीकी यात्रा की। वहाँ पुत्र और स्त्रीसहित शत्रुघ्नीसे मिलकर श्रीरामचन्द्रजी भरत और सुग्रीवके साथ बहुत सन्तुष्ट हुए। शत्रुघ्नने भी अपने

भाइयोंको उपस्थित देख उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया। उनके पाँचों अङ्ग (दोनों हाथ, दोनों घुटने और मस्तक) धरतीका स्पर्श करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने भाईको उठाकर छातीसे लगा लिया। तदनन्तर भरत और सुग्रीव भी शत्रुघ्नसे मिले। जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हुए, तब शत्रुघ्नने फुर्तीसे अर्ध्य निवेदन करके सेना-मन्त्री आदि आठों अङ्गोंसे युक्त अपने राज्यको उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका समाचार सुनकर समस्त मथुरावासी, जिनमें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक थी, उनके दर्शनके लिये आये। भगवान् ने समस्त सचिवों, वेदके विद्वानों और ब्राह्मणोंसे बातचीत करके, पाँच दिन मथुरामें रहकर वहाँसे जानेका विचार किया। उस समय श्रीरामने अत्यन्त प्रसन्न होकर शत्रुघ्नसे कहा—‘तुमने जो कुछ मुझे अर्पण किया है, वह सब मैंने तुम्हें वापस दिया। अब मथुराके राज्यपर अपने दोनों पुत्रोंका अभिषेक करो।’ ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम वहाँसे चल दिये और दोपहर होते-होते गङ्गातटपर महोदय तीर्थपर जा पहुँचे। वहाँ भगवान् वामनजीको स्थापित करके वे ब्राह्मणों एवं भावी राजाओंसे बोले—‘यह मैंने धर्मका सेतु बनाया है, जो ऐश्वर्य एवं कल्याणकी वृद्धि करनेवाला है। समयानुसार इसका पालन करते रहना चाहिये। किसी प्रकार इसका उल्लङ्घन करना उचित नहीं है।’ इसके बाद भगवान् श्रीराम वानरराज सुग्रीवको किञ्चिन्द्धा भेजकर अयोध्या लौट आये और पुष्पक विमानसे बोले—‘अब तुम्हें यहाँ आनेकी आवश्यकता नहीं होगी; जहाँ धनके स्वामी कुबेर हैं, वहाँ रहना।’ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण कार्योंसे निवृत्त हो गये। अब उन्होंने अपने लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं समझा। भीष्म ! इस प्रकार मैंने श्रीरामकी कथाके प्रसङ्गसे भगवान् श्रीवामनके प्राकृत्यकी वार्ता भी तुम्हें कह दी।



भगवान् श्रीनारायणकी महिमा, युगोंका परिचय, प्रलयके जलमें मार्कण्डेयजीको
भगवान्के दर्शन तथा भगवान्की नाभिसे कमलकी उत्पत्ति

भीष्मजी बोले—ब्रह्मन् ! आपने भगवान् कुछ वस्तु है, वह सब पुरुषोत्तम नारायण ही है। श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका वर्णन किया। अब पुनः उन्हीं कुरुनन्दन ! चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग
श्रीविष्णुभगवान्के माहात्म्यका प्रतिपादन कीजिये। [उनकी नाभिसे] वह सुवर्णमय कमल कैसे उत्पन्न कहा गया है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश आठ सौ हुआ, प्राचीन कालमें वैष्णवी सृष्टि कमलके भीतर कैसे वर्षोंके माने गये हैं। उस युगमें धर्म अपने चारों चरणोंसे हुई ? धर्मात्मन् ! मैं श्रद्धापूर्वक सुननेके लिये बैठा हूँ, अ॒तः आप मुझे भगवान् नारायणका यश अवश्य सुनायें।

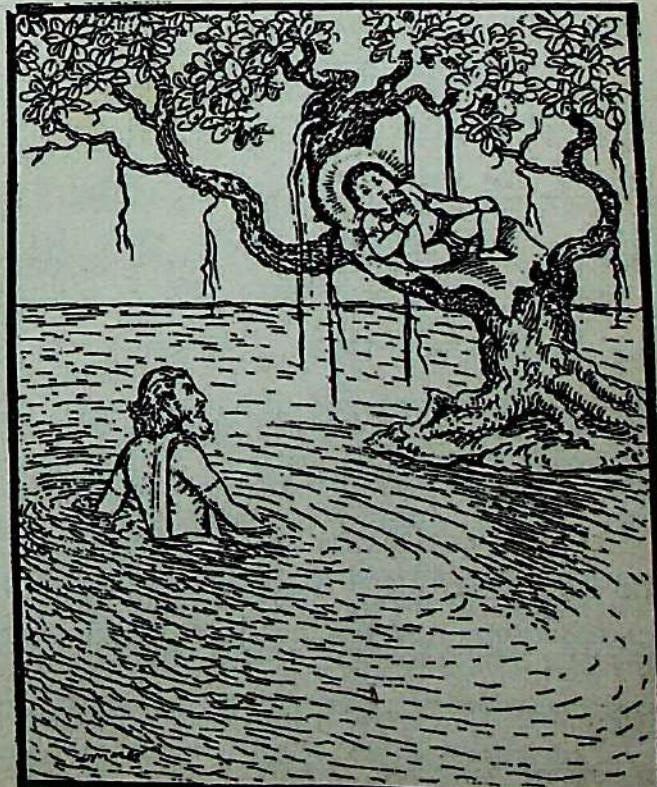
पुलस्त्यजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो; अतः तुम्हारे हृदयमें जो भगवान् देवताओंके मुखसे जैसा सुना है तथा द्वैपायन व्यासजीने अपनी तपस्यासे देखकर जैसा बतलाया है, वह अपनी बुद्धिके अनुसार मैं तुमसे कहूँगा। यह विश्व परम पुरुष श्रीनारायणका स्वरूप है, इसे मेरे पिता ब्रह्माजी भी ठीक-ठीक नहीं जानते, फिर दूसरा कौन जान सकता है। वे भगवान् नारायण ही महर्षियोंके गुप्त रहस्य, सब कुछ देखने और जाननेवालोंके परमतत्त्व, अध्यात्मवेत्ताओंके अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत हैं। वे ही परमर्षियोंके परब्रह्म हैं। वेदोंमें प्रतिपादित यज्ञ उन्हींका स्वरूप है। विद्वान् पुरुष उन्हींको तप मानते हैं। जो कर्ता, कारक, मन, बुद्धि, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शासन करनेवाले और अद्वितीय समझे जाते हैं, जो पाँच प्रकारके प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान), ध्रुव एवं अक्षर-तत्त्व हैं, वे ही परमात्मा नाना प्रकारके भावोंद्वारा प्रतिपादित होते हैं। वे ही परब्रह्म हैं तथा वे ही भगवान् सबकी सृष्टि और संहार करते हैं। उन्हीं आदि पुरुषका हमलेग यजन करते हैं। जितनी कथाएँ हैं, जो-जो श्रुतियाँ हैं, जिसे धर्म कहते हैं, जो धर्मपरायण पुरुष हैं और जो विश्व तथा विश्वके स्वामी हैं, वे सब भगवान् नारायणके ही स्वरूप माने गये हैं। जो सत्य है, जो मिथ्या है, जो आदि, मध्य और अन्तमें है, जो सीमारहित भविष्य है, जो कोई चर-अचर प्राणी है तथा इनके अतिरिक्त भी जो-

कुरुनन्दन ! चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग कहा गया है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश आठ सौ वर्षोंके माने गये हैं। उस युगमें धर्म अपने चारों चरणोंसे मौजूद रहता है और अधर्म एक ही पैरसे स्थित होता है। उस समय सब मनुष्य स्वधर्मपरायण और शान्त होते हैं। सत्ययुगमें सत्य, पवित्रता और धर्मकी वृद्धि होती है। श्रेष्ठ पुरुष जिसका आचरण करते हैं, वही कर्म उस समय सबके द्वारा किया और कराया जाता है। राजन् ! सत्ययुगमें जन्मतः धार्मिक अथवा नीच कुलमें उत्पन्न सभी मनुष्योंका ऐसा ही धर्मानुकूल बर्ताव होता है। त्रेतायुगका मान तीन हजार दिव्य वर्ष बतलाया जाता है। उसकी दोनों सन्ध्याएँ छः सौ वर्षोंकी होती हैं। उस समय धर्म तीन चरणोंसे और अधर्म दो पादोंसे स्थित रहता है। उस युगमें सत्य एवं शौचका पालन तथा यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान होता है। त्रेतामें चारों वर्णोंके लोग केवल लोभके कारण विकारको प्राप्त होते हैं। वर्णधर्ममें विकार आनेसे आश्रमोंमें भी दुर्बलता आ जाती है। यह त्रेतायुगकी देवनिर्मित विचित्र गति है। द्वापर दो हजार दिव्य वर्षोंका होता है। इसकी सन्ध्याओंका मान चार सौ वर्षका बताया जाता है। उस समयके प्राणी रजोगुणसे अभिभूत होनेके कारण अधिक अर्थ-परायण, शठ, दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाले तथा क्षुद्र होते हैं। द्वापरमें धर्म दो चरणोंसे और अधर्म तीन पादोंसे स्थित रहता है। दोनों सन्ध्याओंसहित कलियुगका मान एक हजार दो सौ दिव्य वर्ष है। यह क्रूरताका युग है। इसमें अधर्म अपने चारों पादोंसे और धर्म एक ही चरणसे स्थित रहता है। उस समय मनुष्य कामी, तमोगुणी और नीच होते हैं। इस युगमें प्रायः कोई साधक, साधु और सत्यवादी नहीं होता। लोग नास्तिक होते हैं, ब्राह्मणोंके प्रति उनकी भक्ति नहीं होती। सब मनुष्य अहङ्कारके नशीभूत होते हैं। उनमें परस्पर प्रेम प्रायः बहुत ही कम होता है। कलियुगमें ब्राह्मणोंके आचरण प्रायः शूद्रोंके-से

हो जाते हैं। आश्रमोंका ढंग भी बिगड़ जाता है। जब युगका अन्त होनेको आता है, उस समय तो वर्णोंकि पहचाननेमें भी सन्देह हो जाता है—कौन मनुष्य किस वर्णका है, यह समझना कठिन हो जाता है। यह बारह हजार दिव्य वर्षोंका समय एक चतुर्युग (चौकड़ी) कहलाता है। इस प्रकारके हजार चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है।

इस प्रकार ब्रह्माकी भी आयु जब समाप्त हो जाती है, तब काल सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी आयु पूरी हुई जान जगत्का संहार करनेके लिये महाप्रलय आरम्भ करता है। योग-शक्ति-सम्पन्न सर्वरूप भगवान् नारायण सूर्यरूप होकर अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रोंको सोख लेते हैं। तदनन्तर श्रीहरि बलवान् वायुका रूप धारणकर सारे जगत्को कँपाते हुए प्राण, अपान और समान आदिके द्वारा आक्रमण करते हैं। ग्राणेन्द्रियका विषय, ग्राणेन्द्रिय तथा पार्थिव शरीर—ये गुण पृथ्वीमें समा जाते हैं। रसनेन्द्रिय, उसका विषय रस और स्नेह आदि जलके गुण जलमें लीन हो जाते हैं। नेत्रेन्द्रिय, उसका विषय रूप और मन्दता, पटुता आदि नेत्रके गुण—ये अग्नि-तत्त्वमें प्रवेश कर जाते हैं। वागिन्द्रिय और उसका विषय, सर्प और चेष्टा आदि वायुके गुण—ये वायुमें समा जाते हैं। श्रवणेन्द्रिय और उसका विषय शब्द तथा सुननेकी क्रिया आदि गुण आकाशमें विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार कालरूप भगवान् एक ही मुहूर्तमें सम्पूर्ण लोकोंकी जीवनयात्रा नष्ट कर देते हैं। मन, बुद्धि, चित्त और क्षेत्रज्ञ—ये परमेष्ठी ब्रह्माजीमें लीन हो जाते हैं और ब्रह्माजी भगवान् हृषीकेशमें लीन हो जाते हैं। पञ्च महाभूत भी उस अमित तेजस्वी विभुमें प्रवेश कर जाते हैं। सूर्य, वायु और आकाशके नष्ट हो जाने तथा सूक्ष्म जगत्के भी लीन हो जानेपर अमितपराक्रमी सनातन पुरुष भगवान् श्रीविष्णु सबको दग्ध करके अपनेमें समेटकर अकेले ही अनेक सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करते हैं। उन अव्यक्त परमेश्वरके सम्बन्धमें कोई व्यक्त जीव यह नहीं जान पाता कि ये पुरुषरूप कौन हैं। उन देव-श्रेष्ठके विषयमें उनके सिवा दूसरा कोई कुछ नहीं जानता।

भीष ! एक समयकी बात सुनो, महामुनि मार्कण्डेयको एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले भगवान् कौतूहलवश अपने मुँहमें लील गये। कई हजार वर्षोंकी आयुवाले वे महर्षि भगवान्के ही उत्कृष्ट तेजसे उनके उदरमें तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे विचरते हुए पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें घूमते फिरे। अनेकों पुण्यतीर्थोंके जलसे युक्त बन और नाना प्रकारके आश्रम उन्हें दृष्टिगोचर हुए। उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोद्वारा यजन करनेवाले यजमानों तथा यज्ञमें सम्मिलित सैकड़ों ब्राह्मणोंको भी उन्होंने भगवान्के उदरमें देखा। वहाँ ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंकि लोग सदाचारमें स्थित थे। चारों ही आश्रम अपनी-अपनी मर्यादामें स्थित थे। इस प्रकार भगवान्के उदरमें समूची पृथ्वीपर विचरते बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीको सौ वर्षोंसे कुछ अधिक समय बीत गया। तदनन्तर वे किसी समय पुनः भगवान्के मुखसे बाहर निकले। उस समय भी सब ओर एकार्णवका जल ही दिखायी देता था। समस्त दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित थीं। जगत् सम्पूर्ण प्राणियोंसे रहित था। ऐसी अवस्थामें मार्कण्डेयजीने देखा—एक बरगदकी शाखापर एक छोटा-सा बालक सो रहा है। यह देखकर मुनिको बड़ा



आश्र्य हुआ। वे उस बालकका वृत्तान्त जाननेके लिये उत्सुक हो गये। उनके मनमें यह संदेह हुआ कि मैंने कभी इसे देखा है। यह सोचकर वे उस पूर्व-परिचित बालकको देखनेके लिये आगे बढ़े। उस समय उनके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। उन्हें आते देख बालरूपधारी भगवान् ने कहा—‘मार्कण्डेय ! तुम्हारा स्वागत है। तुम डरो मत, मेरे पास चले आओ।’

मार्कण्डेय बोले—यह कौन है, जो मेरा तिरस्कार करता हुआ मुझे नाम लेकर पुकार रहा है ?

भगवान् ने कहा—बेटा ! मैं तुम्हारा पितामह, आयु प्रदान करनेवाला पुराणपुरुष हूँ। मेरे पास तुम क्यों नहीं आते। तुम्हारे पिता आङ्गिरस मुनिने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे तीव्र तपस्या करके मेरी ही आराधना की थी। तब मैंने उन अमिततेजस्वी महर्षिको तुम्हारे-जैसा तेजस्वी पुत्र होनेका सच्चा वरदान दिया था।

यह सुनकर महातपस्वी मार्कण्डेयजीका हृदय प्रसन्नतासे भर गया, उनके नेत्र आश्र्यसे खिल उठे। वे मस्तकपर अङ्गलि बाँधे नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक भगवान् को नमस्कार करने लगे और बोले—‘भगवन् ! मैं आपकी मायाको यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ; इस एकार्णवके बीच आप बालरूप धरकर कैसे सो रहे हैं ?’

श्रीभगवान् ने कहा—ब्रह्म ! मैं नारायण हूँ। जिन्हें हजारों मस्तकों और हजारों चरणोंसे युक्त बताया जाता है, वह विराट परमात्मा मेरा ही स्वरूप है। मैं सूर्यके समान वर्णवाला तेजोमय पुरुष हूँ। मैं देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाला अग्नि हूँ और मैं ही सात घोड़ोंके रथवाला सूर्य हूँ। मैं ही इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित होनेवाला इन्द्र और क्रतुओंमें परिवत्सर हूँ। सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त देवता मेरे ही स्वरूप हैं। मैं सर्पोंमें शेषनाग और पक्षियोंमें गरुड़ हूँ। सम्पूर्ण भूतोंका संहार करनेवाला काल भी मुझे ही समझना चाहिये। समस्त आश्रमोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंका धर्म और तप मैं

ही हूँ। मैं दयापरायण धर्म और दूधसे भरा हुआ महासागर हूँ तथा जो सत्यस्वरूप परम तत्त्व है, वह भी मैं ही हूँ। एकमात्र मैं ही प्रजापति हूँ। मैं ही सांख्य, मैं ही योग और मैं ही परमपद हूँ। यज्ञ, क्रिया और ब्राह्मणोंका स्वामी भी मैं ही हूँ। मैं ही अग्नि, मैं ही वायु, मैं ही पृथ्वी, मैं ही आकाश और मैं ही जल, समुद्र, नक्षत्र तथा दसों दिशाएँ हूँ। वर्षा, सौम, मेघ और हविष्य—इन सबके रूपमें मैं ही हूँ। क्षीरसागरके भीतर तथा समुद्रगत बड़वाग्निके मुखमें भी मेरा ही निवास है। मैं ही संवर्तक अग्नि होकर सारा जल सोख लेता हूँ। मैं ही सूर्य हूँ। मैं ही परम पुरातन तथा सबका आश्रय हूँ। भविष्यमें भी सर्वत्र मैं ही प्रकट होऊँगा। तथा भावी सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्ति मुझसे ही होती है। विप्रवर ! संसारमें तुम जो कुछ देखते हो, जो कुछ सुनते हो और जो कुछ अनुभव करते हो उन सबको मेरा ही स्वरूप समझो।* मैंने ही पूर्वकालमें विश्वकी सृष्टि की है तथा आज भी मैं ही करता हूँ। तुम मेरी ओर देखो। **मार्कण्डेय !** मैं ही प्रत्येक युगमें सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करता हूँ। इन सारी बातोंको तुम अच्छी तरह समझ लो। यदि धर्मके सेवन या श्रवणकी इच्छा हो तो मेरे उदरमें रहकर सुखपूर्वक विचरो। मैं ही एक अक्षरका और मैं ही तीन अक्षरका मन्त्र हूँ। ब्रह्माजी भी मेरे ही स्वरूप हैं। धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे परे ओङ्कारस्वरूप परमात्मा, जो सबको तात्त्विक दृष्टि प्रदान करनेवाले हैं, मैं ही हूँ।

इस प्रकार कहते हुए उन महाबुद्धिमान् पुराणपुरुष परमेश्वरने महामुनि मार्कण्डेयको तुरंत ही अपने मुँहमें ले लिया। फिर तो वे मुनिश्रेष्ठ भगवान् के उदरमें प्रवेश कर गये और नेत्रके सामने एकान्त स्थानमें धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे बैठे हुए अविनाशी हंस भगवान् के पास उपस्थित हुए। भगवान् हंस अविनाशी और विविध शरीर धारण करनेवाले हैं। वे चन्द्रमा और सूर्यसे रहित प्रलयकालीन एकार्णवके जलमें धीरे-धीरे विचरते तथा

* यत्किञ्चित्पश्यते विप्र यच्छृणोषि च किञ्चन ॥ यच्चानुभवसे

लोके तत्सर्व मामनुस्मर। (३६। १३४-१३५)

जगत्की सृष्टि करनेका संकल्प लेकर विहार करते हैं। तदनन्तर विमलमति महात्मा हंसने लोक-रचनाका विचार किया। उस विश्वरूप परमात्माने विश्वका चिन्तन किया। एवं भूतोंकी उत्पत्तिके विषयमें सोचा। उनके तेजसे अमृतके समान पवित्र जलका प्रादुर्भाव हुआ। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले सर्वलोकविधाता महेश्वर श्रीहरिने उस महान् जलमें विधिवत् जलक्रीड़ा की। फिर उन्होंने अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न किया, जो अनेकों रंगोंके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वह सुवर्णमय कमल सूर्यके समान तेजोमय प्रतीत होता था।



मधु-कैटभका वध तथा सृष्टि-परम्पराका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर अनेक योजनके विस्तारवाले उस सुवर्णमय कमलमें, जो सब प्रकारके तेजोमय गुणोंसे युक्त और पार्थिव लक्षणोंसे सम्पन्न था, भगवान् श्रीविष्णुने योगियोंमें श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी एवं समस्त लोकोंकी सृष्टि करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। महर्षिगण उस कमलको श्रीनारायणकी नाभिसे उत्पन्न बतलाते हैं। उस कमलका जो सारभाग है, उसे पृथ्वी कहते हैं तथा उस सारभागमें भी जो अधिक भारी अंश है, उन्हें दिव्य पर्वत माना जाता है। कमलके भीतर एक और कमल है, जिसके भीतर एकार्णवके जलमें पृथ्वीकी स्थिति मानी गयी है। इस कमलके चारों ओर चार समुद्र हैं। विश्वमें जिनके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है, जिनकी सूर्यके समान प्रभा और वरुणके समान अपार कान्ति है तथा यह जगत् जिनका स्वरूप है, वे स्वयम्भू महात्मा ब्रह्माजी उस एकार्णवके जलमें धीर-धीर पद्मरूप निधिकी रचना करने लगे। इसी समय तमोगुणसे उत्पन्न मधुनामका महान् असुर तथा रजोगुणसे प्रकट हुआ कैटभ-नामधारी असुर—ये दोनों ब्रह्माजीके कार्यमें विश्वरूप होकर उपस्थित हुए। यद्यपि वे क्रमशः तमोगुण और रजोगुणसे उत्पन्न हुए थे, तथापि तमोगुणका विशेष प्रभाव पड़नेके कारण दोनोंका स्वभाव तामस हो गया था। महान् बली तो वे थे ही, एकार्णवमें स्थित सम्पूर्ण जगत्को क्षुब्ध करने लगे। उन दोनोंके सब ओर मुख थे। एकार्णवके जलमें विचरते हुए जब वे पुष्करमें गये, तब वहाँ उन्हें अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माजीका दर्शन हुआ।

तब वे दोनों असुर ब्रह्माजीसे पूछने लगे—‘तुम कौन हो? जिसने तुम्हें सृष्टिकार्यमें नियुक्त किया है, वह

तुम्हारा कौन है? कौन तुम्हारा स्नष्टा है और कौन रक्षक? तथा वह किस नामसे पुकारा जाता है?’

ब्रह्माजी बोले—असुरो! तुमलोग जिनके विषयमें पूछते हो, वे इस लोकमें एक ही कहे जाते हैं। जगत्में जितनी भी वस्तुएँ हैं उन सबसे उनका संयोग है—वे सबमें व्याप्त हैं। [उनका कोई एक नाम नहीं है,] उनके अलौकिक कर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं।

यह सुनकर वे दोनों असुर सनातन देवता भगवान् श्रीविष्णुके समीप गये, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था तथा जो इन्द्रियोंके स्वामी हैं। वहाँ जा उन दोनोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—हम जानते हैं, आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, अद्वितीय तथा पुरुषोत्तम हैं। हमारे जन्मदाता भी आप ही हैं। हम आपको ही बुद्धिका भी कारण समझते हैं। देव! हम आपसे हितकारी वरदान चाहते हैं। शत्रुदमन! आपका दर्शन अमोघ है। समर-विजयी वीर! हम आपको नमस्कार करते हैं।’

श्रीभगवान् बोले—असुरो! तुमलोग वर किसलिये माँगते हो? तुम्हारी आयु समाप्त हो चुकी है, फिर भी तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो! यह बड़े आश्र्यकी बात है।

मधु-कैटभने कहा—प्रभो! जिस स्थानमें किसीकी मृत्यु न हुई हो; वहीं हमारा वध हो—हमें इसी वरदानकी इच्छा है।

श्रीभगवान् बोले—‘ठीक है’ इस प्रकार उन महान् असुरोंको वरदान देकर देवताओंके प्रभु सनातन श्रीविष्णुने अञ्जनके समान काले शरीरवाले मधु और कैटभको अपनी जाँघोंपर गिराकर मसल डाला।

तदनन्तर ब्रह्माजी अपनी बाँहें ऊपर उठाये घोर तपस्यामें संलग्न हुए। भगवान् भास्करकी भाँति अन्धकारका नाश कर रहे थे और सत्यधर्मके परायण होकर अपनी किरणोंसे सूर्यके समान चमक रहे थे। किन्तु अकेले होनेके कारण उनका मन नहीं लगा; अतः उन्होंने अपने शरीरके आधे भागसे शुभलक्षणा भार्याको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् पितामहने अपने ही समान पुत्रोंकी सृष्टि की, जो सब-के-सब प्रजापति और लोकविख्यात योगी हुए।

ब्रह्माजीने [दस प्रजापतियोंके अतिरिक्त] लक्ष्मी, साध्या, शुभलक्षणा विश्वेशा, देवी तथा सरस्वती—इन पाँच कन्याओंको भी उत्पन्न किया। ये देवताओंसे भी श्रेष्ठ और आदरणीय मानी जाती हैं। कमोंकि साक्षी ब्रह्माजीने ये पाँचों कन्याएँ धर्मको अर्पण कर दीं। ब्रह्माजीके आधे शरीरसे जो पली प्रकट हुई थी, वह इच्छानुसार रूप धारण कर लेती थी। वह सुरभिके रूपमें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुई। लोकपूजित ब्रह्माजीने उसके साथ समागम किया, जिससे ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। पितामहसे जन्म ग्रहण करनेवाले वे सभी बालक रोदन करते हुए दौड़े। अतः रोने और दौड़नेके कारण उनकी 'रुद्र' संज्ञा हुई। इसी प्रकार सुरभिके गर्भसे गौ, यज्ञ तथा देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। बकरा, हंस और श्रेष्ठ ओषधियाँ (अन्न आदि) भी सुरभिसे ही उत्पन्न हुई हैं। धर्मसे लक्ष्मीने सोमको और साध्याने साध्य नामक देवताओंको जन्म दिया। उनके नाम इस प्रकार हैं—भव, प्रभव, कृशाश्व, सुवह, अरुण, वरुण, विश्वामित्र, चल, ध्रुव, हविष्यान्, तनूज, विधान,

अभिमत, वत्सर, भूति, सर्वासुरनिष्पूदन, सुपर्वा, बृहत्कान्त और महालोकनमस्कृत। देवी (वसु) ने वसु-संज्ञक देवताओंको उत्पन्न किया, जो इन्द्रका अनुसरण करनेवाले थे। धर्मकी चौथी पत्नी विश्वा (विश्वेशा) के गर्भसे विश्वेदेव नामक देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह धर्मकी सन्तानोंका वर्णन हुआ। विश्वेदेवोंके नाम इस प्रकार हैं—महाबाहु दक्ष, नरेश्वर पुष्कर, चाक्षुष मनु, महोरग, विश्वानुग, वसु, बाल, महायशास्वी निष्कल, अति सत्यपराक्रमी रुद तथा परम कान्तिमान् भास्कर। इन विश्वेदेव-संज्ञक पुत्रोंको देवमाता विश्वेशाने जन्म दिया है। मरुत्त्वतीने मरुत्त्वान् नामके देवताओंको उत्पन्न किया, जिनके नाम ये हैं—अग्नि, चक्षु, ज्योति, सावित्रि, मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुवर्ष, महाभुज, विराज, राज, विश्वायु, सुमति, अश्वगाम्य, चित्ररश्मि, निषध, आत्मविधि, चारित्रि, पादमात्रग, बृहत्, बृहद्रूप तथा विष्णुसनाभिग। ये सब मरुत्त्वतीके पुत्र मरुदूण कहलाते हैं। अदितिने कश्यपके अंशसे बारह आदित्योंको जन्म दिया।

इस प्रकार महर्षियोंद्वारा प्रशंसित सृष्टि-परम्पराका क्रमशः वर्णन किया गया। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ पुराणको सदा सुनेगा और पर्वोंके अवसरपर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकमें वैराग्यवान् होकर परलोकमें उत्तम फलोंका उपभोग करेगा। जो इस पौष्कर पर्वका—महात्मा ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथाका पाठ करता है, उसका कभी अमङ्गल नहीं होता। महाराज ! श्रीव्यासदेवसे जैसे मैंने सुना है, उसी प्रकार तुम्हारे सामने मैंने इस प्रसङ्गका वर्णन किया है।



तारकासुरके जन्मकी कथा, तारककी तपस्या, उसके द्वारा देवताओंकी पराजय और ब्रह्माजीका देवताओंको सान्त्वना देना

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्म ! अत्यन्त बलवान् तारक नामके दैत्यकी उत्पत्ति कैसे हुई ? कार्तिकेयजीने उस महान् असुरका संहार किस प्रकार किया ? भगवान् रुद्रको उमाकी प्राप्ति किस प्रकार हुई ? महामुने ! ये सारी बातें जिस प्रकार हुई हों, सब मुझे सुनाइये।

मुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! जैसे अरणीसे अग्नि

प्रकट होती है, उसी प्रकार दितिके गर्भसे दैत्योंकी उत्पत्ति हुई है। पूर्वकालमें उसी शुभलक्षणा दितिको महर्षि कश्यपने यह वरदान दिया था कि 'देवि ! तुम्हें वज्राङ्ग नामका एक पुत्र होगा, जिसके सभी अङ्ग वज्रके समान सुदृढ़ होंगे।' वरदान पाकर देवी दितिने समयानुसार उस पुत्रको जन्म दिया, जो वज्रके द्वारा भी अच्छेद्य था।

वह जन्मते ही समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गया। उसने बड़ी भक्तिके साथ मातासे कहा—‘माँ! मैं तुम्हारी किस आज्ञाका पालन करूँ?’ यह सुनकर दितिको बड़ा हृषि हुआ। वह दैत्यराजसे बोली—‘बेटा! इन्द्रने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मौतके घाट उतार दिया है। अतः उनका बदला लेनेके उद्देश्यसे तुम भी इन्द्रका वध करनेके लिये जाओ।’ महाबली वज्राङ्ग ‘बहुत अच्छा!’ कहकर खर्गमें गया और अमोघ तेजवाले पाशसे इन्द्रको बाँधकर अपनी माँके पास ले आया—ठीक उसी तरह, जैसे कोई व्याध छोटे-से मृगको बाँध लाये। इसी समय ब्रह्माजी तथा महातपस्वी कश्यप मुनि उस स्थानपर आये, जहाँ वे दोनों माँ-बेटे निर्भय होकर खड़े थे। उन्हें देखकर ब्रह्मा और कश्यपजीने कहा—‘बेटा! इन्हें छोड़ दो, ये देवताओंके राजा हैं; इन्हें लेकर तुम क्या करोगे। सम्मानित पुरुषका अपमान ही उसका वध कहा गया है। यदि शत्रु अपने शत्रुके हाथमें आ जाय और वह दूसरेके गौरवसे छुटकारा पाये तो वह जीता हुआ भी प्रतिदिन चिन्तामग्न रहनेके कारण मृतकके ही समान हो जाता है।’ यह सुनकर वज्राङ्गने ब्रह्माजी और कश्यपजीके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहा—‘मुझे इन्द्रको बाँधनेसे कोई मतलब नहीं है। मैंने तो माताकी आज्ञाका पालन किया है। देव! आप देवता और असुरोंके भी स्वामी तथा मेरे माननीय प्रपितामह हैं; अतएव आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा। यह लीजिये, मैंने इन्द्रको मुक्त कर दिया। मेरा मन तपस्यामें लगता है, अतः मेरी तपस्या ही निर्विघ्न पूरी हो—यह आशीर्वाद प्रदान कीजिये।’

ब्रह्माजी बोले—वत्स! तुम मेरी आज्ञाके अधीन रहकर तपस्या करो। तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। तुमने अपने इस शुद्ध भावसे जन्मका फल प्राप्त कर लिया।

यह कहकर ब्रह्माजीने बड़े-बड़े नेत्रोंवाली एक कन्या उत्पन्न की और उसे वज्राङ्गको पत्नीरूपमें अङ्गीकार करनेके लिये दे दिया। उस कन्याका नाम वराङ्गी बताकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये और वज्राङ्ग उसे

साथ ले तपस्याके लिये बनमें चला गया। उस दैत्यराजके नेत्र कमलपत्रके समान विशाल एवं सुन्दर थे। उसकी बुद्धि शुद्ध थी तथा वह महान् तपस्वी था। उसने एक हजार वर्षोंतक बाँहें ऊपर उठाये खड़े होकर तपस्या की। तदनन्तर उसने एक हजार वर्षोंतक पानीके भीतर निवास किया। जलके भीतर प्रवेश कर जानेपर उसकी पत्नी वराङ्गी, जो बड़ी पतिव्रता थी, उसी सरोवरके तटपर चुपचाप बैठी रही और बिना कुछ खायेपिये घोर तपस्यामें प्रवृत्त हो गयी। उसके शरीरमें महान् तेज था। इसी बीचमें एक हजार वर्षोंका समय पूरा हो गया। तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर उस जलाशयके तटपर आये और वज्राङ्गसे इस प्रकार बोले—‘दितिनन्दन! उठो, मैं तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी करूँगा।’

उनके ऐसा कहनेपर वज्राङ्ग बोला—‘भगवन्! मेरे हृदयमें आसुर-भाव न हो, मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो तथा जबतक यह शरीर रहे, तबतक तपस्यामें ही मेरा अनुराग बना रहे।’ ‘एवमस्तु’ कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और संयमको स्थिर रखनेवाला वज्राङ्ग तपस्या समाप्त होनेपर जब घर लौटनेकी इच्छा करने लगा, तब उसे आश्रमपर अपनी खी नहीं दिखायी दी। भूखसे आकुल होकर उसने पर्वतके घने जंगलमें फल-मूल लेनेके लिये प्रवेश किया। वहाँ जाकर देखा—उसकी पत्नी वृक्षकी ओटमें मुँह छिपाये दीनभावसे रो रही है। उसे इस अवस्थामें देख दितिकुमारने सान्त्वना देते हुए पूछा—‘कल्याणी! किसने तुम्हारा अपकार करके यमलोकमें जानेकी इच्छा की है?’

वराङ्गी बोली—प्राणनाथ! तुम्हारे जीते-जी मेरी दशा अनाथकी-सी हो रही है। देवराज इन्द्रने भयंकर रूप धारण करके मुझे डराया है, आश्रमसे बाहर निकाल दिया है, मारा है और भूरि-भूरि कष्ट दिया है। मुझे अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी देता था; इसलिये मैं प्राण-त्याग देनेका निश्चय कर चुकी थी। आप एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो मुझे इस दुःखके समुद्रसे तार दे।

वराङ्गीके ऐसा कहनेपर दैत्यराज वज्राङ्गके नेत्र

क्रोधसे चञ्चल हो उठे। यद्यपि वह महान् असुर देवराजसे बदला लेनेकी पूरी शक्ति रखता था, तथापि उस महाबलीने पुनः तप करनेका ही निश्चय किया। उसका संकल्प जानकर ब्रह्माजी वहाँ आये और उससे पूछने लगे—‘बेटा ! तुम फिर किसलिये तपस्या करनेको उद्घात हुए हो ?’ वज्राङ्गने कहा—‘पितामह ! आपकी आज्ञा मानकर समाधिसे उठनेपर मैंने देखा— इन्द्रने वराङ्गनीको बहुत त्रास पहुँचाया है; अतः यह मुझसे ऐसा पुत्र चाहती है, जो इसे इस विपत्तिसे उबार दे। दादाजी ! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो मुझे ऐसा पुत्र दीजिये।’

ब्रह्माजी बोले—वीर ! ऐसा ही होगा। अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे तारक नामका एक महाबली पुत्र होगा।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दैत्यराजने उन्हें प्रणाम किया और वनमें जाकर अपनी रानीको, जिसका हृदय दुःखी था, प्रसन्न किया। वे दोनों पति-पत्नी सफल-मनोरथ होकर अपने आश्रममें गये। सुन्दरी वराङ्गनी अपने पतिके द्वारा स्थापित किये हुए गर्भको पूरे एक हजार वर्षोंतक उदरमें ही धारण किये रही। इसके बाद उसने पुत्रको जन्म दिया। उस दैत्यके पैदा होते ही सारी पृथ्वी डोलने लगी—सर्वत्र भूकम्प होने लगा। महासागर विक्षुब्ध हो उठे। वराङ्गनी पुत्रको देखकर हर्षसे भर गयी। दैत्यराज तारक जन्मते ही भयंकर पराक्रमी हो गया। कुजम्भ और महिष आदि मुख्य-मुख्य असुरोंने मिलकर उसे राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया। दैत्योंका महान् साम्राज्य प्राप्त करके दानवश्रेष्ठ तारकने कहा—‘महाबली असुरों और दानवों ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। देवगण हमलोगोंके वंशका नाश करनेवाले हैं। जन्मगत स्वभावसे ही उनके साथ हमारा अटूट वैर बढ़ा हुआ है। अतः हम सब लोग देवताओंका दमन करनेके लिये तपस्या करेंगे।’

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! यह सन्देश सुनाकर सबकी सम्मति ले तारकासुर परियात्र पर्वतपर चला गया और वहाँ सौ वर्षोंतक निराहार रहकर, सौ

वर्षोंतक पञ्चाग्रि-सेवन कर, सौ वर्षोंतक केवल पत्ते चबाकर तथा सौ वर्षोंतक सिर्फ जल पीकर तपस्या करता रहा। इस प्रकार जब उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल और तपका पुङ्ग हो गया, तब ब्रह्माजीने आकर कहा—‘दैत्यराज ! तुमने उत्तम ब्रतका पालन किया है, कोई वर माँगो।’ उसने कहा—‘किसी भी प्राणीसे मेरी मृत्यु न हो।’ तब ब्रह्माजीने कहा—‘देहधारियोंके लिये मृत्यु निश्चित है; इसलिये तुम जिस किसी निमित्तसे भी, जिससे तुम्हें भय न हो, अपनी मृत्यु माँग लो।’ तब दैत्यराज तारकने बहुत सोच-विचारकर सात दिनके बालकसे अपनी मृत्यु माँगी। उस समय वह महान् असुर घमंडसे मोहित हो रहा था। ब्रह्माजी ‘तथास्तु’ कहकर अपने धामको चले और दैत्य अपने घर लौट गया। वहाँ जाकर उसने अपने मन्त्रियोंसे कहा—‘तुमलोग शीघ्र ही मेरी सेना तैयार करो।’ ग्रसन नामका दानव दैत्यराज तारकका सेनापति था। उसने स्वामीकी बात सुनकर बहुत बड़ी सेना तैयार की। गम्भीर स्वरमें रणभेरी बजाकर उसने तुरंत ही बड़े-बड़े दैत्योंको एकत्रित किया, जिनमें एक-एक दैत्य प्रचण्ड पराक्रमी होनेके साथ ही दस-दस करोड़ दैत्योंका यूथपति था। जम्भ नामक दैत्य उन सबका अगुआ था और कुजम्भ उसके पीछे चलनेवाला था। इनके सिवा महिष, कुञ्जर, मेघ, कालनेमि, निमि, मन्थन, जम्भक और शुभ्य भी प्रधान थे। इस प्रकार ये दस दैत्यपति सेनानायक थे। उनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों ऐसे दानव थे, जो अपनी भुजाओंपर पृथ्वीको तोलनेकी शक्ति रखते थे। दैत्योंमें सिंहके समान पराक्रमी तारकासुरकी वह सेना बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी। वह मतवाले गजराजों, घोड़ों और रथोंसे भरी हुई थी। पैदलोंकी संख्या भी बहुत थी और सेनामें सब ओर पताकाएँ फहरा रही थीं।

इसी बीचमें देवताओंके दूत वायु असुरलोकमें आये और दानव-सेनाका उद्योग देखकर इन्द्रको उसका समाचार देनेके लिये गये। देवसभामें पहुँचकर उन्होंने देवताओंके बीचमें इस नयी घटनाका हाल सुनाया। उसे सुनकर महाबाहु देवराजने आँखें बंद करके बृहस्पतिजीसे

कहा—‘गुरुदेव ! इस समय देवताओंके सामने दानवोंके साथ घोर संग्रामका अवसर उपस्थित होना चाहता है; इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये । कोई नीतियुक्त बात बताइये ।’

बृहस्पतिजी बोले—सुरश्रेष्ठ ! साम-नीति और चतुरज्ञिणी सेना—ये ही दो विजयाभिलाषी वीरोंकी सफलताके साधन सुने गये हैं। ये ही सनातन रक्षा-कवच हैं। नीतिके चार अङ्ग हैं—साम, भेद, दान और दण्ड। यदि आक्रमण करनेवाले शत्रु लोभी हों तो उनपर सामनीतिका प्रभाव नहीं पड़ता। यदि वे एकमतके और संगठित हों तो उनमें फूट भी नहीं डाली जा सकती तथा जो बलपूर्वक सर्वस्व छीन लेनेकी शक्ति रखते हैं, उनके प्रति दाननीतिके प्रयोगसे भी सफलता नहीं मिल सकती; अतः अब यहाँ एक ही उपाय शेष रह जाता है। वह है—दण्ड। यदि आपलोगोंको जँचे तो दण्डका ही प्रयोग करें।

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने कर्तव्यका निश्चय करके देवताओंकी सभामें इस प्रकार कहा—‘स्वर्गवासियो ! सावधान होकर मेरी बात सुनो—इस समय युद्धके लिये उद्योग करना ही उचित है; अतः मेरी सेना तैयार की जाय। यमराजको सेनापति बनाकर सम्पूर्ण देवता शीघ्र ही संग्रामके लिये निकलें।’ यह सुनकर प्रधान-प्रधान देवता कवच बाँधकर तैयार हो गये। मातलिने देवराजका दुर्जय रथ जोतकर खड़ा किया। यमराज भैसेपर सवार हो सेनाके आगे खड़े हुए। वे अपने प्रचण्ड किङ्करोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए थे। अग्नि, वायु, वरुण, कुबेर, चन्द्रमा तथा आदित्य—सब लोग युद्धके लिये उपस्थित हुए। देवताओंकी वह सेना तीनों लोकोंके लिये दुर्जय थी। उसमें तैतीस करोड़ देवता एकत्रित थे। तदनन्तर युद्ध आरम्भ हुआ। अधिनीकुमार, मरुदण्ड, साध्यगण, इन्द्र, यक्ष और गर्भर्व—ये सभी महाबली एक साथ मिलकर दैत्यराज तारकपर प्रहार करने लगे। उन सबके हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र थे। परन्तु तारकासुरका शरीर वज्र एवं पर्वतके समान सुदृढ़ था। देवताओंके हथियार उसपर

काम नहीं करते थे। उन्हें प्रहार करते देख दानवराज तारक रथसे कूद पड़ा और करोड़ों देवताओंको उसने अपने हाथके पृष्ठभागसे ही मार गिराया। यह देख देवताओंकी बची-खुची सेना भयभीत हो उठी और युद्धकी सामग्री वहीं छोड़कर चारों दिशाओंमें भाग गयी। ऐसी परिस्थितिमें पड़ जानेपर देवताओंके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ और वे जगदुरु ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर सुन्दर अक्षरोंसे युक्त वाक्योंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सत्त्वमूर्ते ! आप प्रणवरूप हैं। अनन्त भेदोंसे युक्त जो यह विश्व है, उसके अङ्कुर आदिकी उत्पत्तिके लिये आप सबसे पहले ब्रह्मारूपमें प्रकट हुए हैं। तदनन्तर इस जगत्की रक्षाके लिये सत्त्वगुणके मूलभूत विष्णुरूपसे स्थित हुए हैं। इसके बाद इसके संहारकी इच्छासे आपने रुद्ररूप धारण किया। इस प्रकार एक होकर भी त्रिविध रूप धारण करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है। जगत्में जितने भी स्थूल पदार्थ हैं, उन सबके आदि कारण आप ही हैं; अतः आपने अपनी ही महिमासे सोच-विचारकर हम देवताओंका नाम-निर्देश किया है; साथ ही इस ब्रह्माण्डके दो भाग करके ऊर्ध्वलोकोंको आकाशमें तथा अधोलोकोंको पृथ्वीपर और उसके भीतर स्थापित किया है। इससे हमें यह जान पड़ता है कि विश्वका सारा अवकाश आपने ही बनाया है। आप देहके भीतर रहनेवाले अन्तर्यामी पुरुष हैं। आपके शरीरसे ही देवताओंका प्राकट्य हुआ है। आकाश आपका मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, सर्पोंका समुदाय केश और दिशाएँ कानोंके छिद्र हैं। यज्ञ आपका शरीर, नदियाँ सन्धिस्थान, पृथ्वी चरण और समुद्र उदर हैं। भगवन् ! आप भक्तोंको शरण देनेवाले, आपत्तिसे बचानेवाले तथा उनकी रक्षा करनेवाले हैं। आप सबके ध्यानके विषय हैं। आपके स्वरूपका अन्त नहीं है।

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बायें हाथसे वरद मुद्राका प्रदर्शन करते हुए देवताओंसे कहा—‘देवगण ! तुम्हारा तेज

किसने छीन लिया है ? तुम आज ऐसे हो रहे हो मानो तुममें अब कुछ भी करनेकी शक्ति ही नहीं रह गयी है; तुम्हारी कान्ति किसने हर ली ?' ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर देवताओंने वायुको उत्तर देनेके लिये कहा । उनसे प्रेरित होकर वायुने कहा—'भगवन् ! आप चराचर जगत्की सारी बातें जानते हैं—आपसे क्या छिपा है । सैकड़ों दैत्योंने मिलकर इन्द्र आदि बलिष्ठ देवताओंको भी बलपूर्वक परास्त कर दिया है । आपके आदेशसे स्वर्गलोक सदा ही यशभोगी देवताओंके अधिकारमें रहता आया है । परन्तु इस समय तारकासुरने देवताओंका सारा विमान-समूह छीनकर उसे दुर्लभ कर दिया है । देवताओंके निवासस्थान जिस मेरु पर्वतको आपने सम्पूर्ण पर्वतोंका राजा मानकर उसे सब प्रकारके गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा, यज्ञोंसे विभूषित तथा आकाशमें भी ग्रहों और नक्षत्रोंकी गतिका सीमा-प्रदेश बना रखा था, उसीको उस दानवने अपने निवास और विहारके लिये उपयोगी बनानेके उद्देश्यसे परिष्कृत किया है, उसके शिखरोंमें आवश्यक परिवर्तन और सुधार किया है । इस

प्रकार उसकी सारी उद्घटता मैंने बतायी है । अब आप ही हमारी गति हैं ।'

यों कहकर वायुदेवता चुप हो गये । तब ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ ! तारक नामका दैत्य देवता और असुर—सबके लिये अवध्य है । जिसके द्वारा उसका वध हो सकता है, वह पुरुष अभीतक त्रिलोकीमें पैदा ही नहीं हुआ । तारकासुर तपस्या कर रहा था । उस समय मैंने वरदान दे उसे अनुकूल बनाया और तपस्यासे रोका । उस दैत्यने सात दिनके बालकसे अपनी मृत्यु होनेका वरदान माँगा था । सात दिनका वही बालक उसे मार सकता है, जो भगवान् शङ्करके वीर्यसे उत्पन्न हो । हिमालयकी कन्या जो उमादेवी होगी, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र अरणिसे प्रकट होनेवाले अग्निदेवकी भाँति तेजस्वी होगा; अतः भगवान् शङ्करके अंशसे उमादेवी जिस पुत्रको जन्म देगी, उसका सामना करनेपर तारकासुर नष्ट हो जायगा ।' ब्रह्माजीके ऐसा कहने-पर देवता उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये ।



पार्वतीका जन्म, मदन-दहन, पार्वतीकी तपस्या और उनका भगवान् शिवके साथ विवाह

तदनन्तर जगत्को शान्ति प्रदान करनेवाली गिरिराज हिमालयकी पली मेनाने परम सुन्दर ब्राह्ममुहूर्तमें एक कन्याको जन्म दिया । उसके जन्म लेते ही समस्त लोकोंमें निवास करनेवाले स्थावर, जङ्गम—सभी प्राणी सुखी हो गये । आकाशमें भगवान् श्रीविष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, वायु और अग्नि आदि हजारों देवता विमानोंपर बैठकर हिमालय पर्वतके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । गन्धर्व गाने लगे । उस समय संसारमें हिमालय पर्वत समस्त चराचर भूतोंके लिये सेव्य तथा आश्रय लेनेके योग्य हो गया—सब लोग वहाँ निवास और वहाँकी यात्रा करने लगे । उत्सवका आनन्द ले देवता अपने-अपने स्थानको चले गये । गिरिराजकुमारी उमाको रूप, सौभाग्य और ज्ञान आदि गुणोंने विभूषित किया । इस प्रकार वह तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी और समस्त शुभ

लक्षणोंसे सम्पन्न हो गयी । इसी बीचमें कार्य-साधन-परायण देवराज इन्द्रने देवताओंद्वारा सम्मानित देवर्षि नारदका स्मरण किया । इन्द्रका अभिग्राय जानकर देवर्षि नारद बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके भवनमें आये । उन्हें देखकर इन्द्र सिंहासनसे उठ खड़े हुए और यथायोग्य पाद्य आदिके द्वारा उन्होंने नारदजीका पूजन किया । फिर नारदजीने जब उनकी कुशल पूछी तो इन्द्रने कहा—'मुने ! त्रिभुवनमें हमारी कुशलका अङ्कुर तो जम चुका है, अब उसमें फल लगनेका साधन उपस्थित करनेके लिये मैंने आपकी याद की है । ये सारी बातें आप जानते ही हैं; फिर भी आपने प्रश्न किया है इसलिये मैं बता रहा हूँ । विशेषतः अपने सुहदोंके निकट अपना प्रयोजन बताकर प्रत्येक पुरुष बड़ी शान्तिका अनुभव करता है । अतः जिस प्रकार

भी पार्वतीदेवीका पिनाकधारी भगवान् शङ्करके साथ

तुम धन्य हो, जिसकी गुफामें लोकनाथ भगवान् शङ्कर शान्तिपूर्वक ध्यान लगाये बैठे रहते हैं।'



संयोग हो, उसके लिये हमारे पक्षके सब लोगोंको शीघ्र उद्योग करना चाहिये।'

इन्द्रसे उनका सारा कार्य समझ लेनेके पश्चात् नारदजीने उनसे विदा ली और शीघ्र ही गिरिराज हिमालयके भवनके लिये प्रस्थान किया। गिरिराजके द्वारपर, जो विचित्र बेतकी लताओंसे हरा-भरा था, पहुँचनेपर हिमवान्‌ने पहले ही बाहर निकलकर मुनिको प्रणाम किया। उनका भवन पृथ्वीका भूषण था। उसमें प्रवेश करके अनुपम कान्तिवाले मुनिवर नारदजी एक बहुमूल्य आसनपर विराजमान हुए। फिर हिमवान्‌ने उन्हें यथायोग्य अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया और बड़ी मधुर वाणीमें नारदजीके तपकी कुशल पूछी। उस समय गिरिराजका मुखकमल प्रफुल्लित हो रहा था। मुनिने भी गिरिराजकी कुशल पूछते हुए कहा—'पर्वतराज ! तुम्हारा कलेवर अद्भुत है। तुम्हारा स्थान धर्मानुष्ठानके लिये बहुत ही उपयोगी है। तुम्हारी कन्दराओंका विस्तार विशाल है। इन कन्दराओंमें अनेकों पावन एवं तपस्वी मुनियोंने आश्रय ले तुम्हें पवित्र बनाया है। गिरिराज !

पुलस्त्यजी कहते हैं—देवर्षि नारदकी यह बात समाप्त होनेपर गिरिराज हिमालयकी रानी मेना मुनिका दर्शन करनेकी इच्छासे उस भवनमें आईं। वे लज्जा और प्रेमके भारसे झुकी हुई थीं। उनके पीछे-पीछे उनकी कन्या भी आ रही थी। देवर्षि नारद तेजकी राशि जान पड़ते थे, उन्हें देखकर शैलपलीने प्रणाम किया। उस समय उनका मुख अञ्चलसे ढका था और कमलके समान शोभा पानेवाले दोनों हाथ जुड़े हुए थे। अमिततेजस्वी देवर्षिने महाभागा मेनाको देखकर अपने अमृतमय आशीर्वादोंसे उन्हें प्रसन्न किया। उस समय गिरिराजकुमारी उमा अद्भुत रूपवाले नारद मुनिकी ओर चकित चित्तसे देख रही थी। देवर्षिने स्नेहमयी वाणीमें कहा—'बेटी ! यहाँ आओ।' उनके इस प्रकार बुलानेपर उमा पिताके गलेमें बाँहें डालकर उनकी गोदमें बैठ गयी। तब उसकी माताने कहा—'बेटी ! देवर्षिको प्रणाम करो।' उमाने ऐसा ही किया। उसके प्रणाम कर लेनेपर माताने कौतूहलवश पुत्रीके शारीरिक लक्षणोंको जाननेके लिये अपनी सखीके मुँहसे धीरेसे कहलाया—'मुने ! इस कन्याके सौभाग्यसूचक चिह्नोंको देखनेकी कृपा करें।' मेनाकी सखीसे प्रेरित होकर महाभाग मुनिवर नारदजी मुसकराते हुए बोले—'भद्रे ! इस कन्याके पतिका जन्म नहीं हुआ है, यह लक्षणोंसे रहित है। इसका एक हाथ सदा उत्तान (सीधा) रहेगा। इसके चरण व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त हैं; किन्तु उनकी कान्ति बड़ी सुन्दर होगी। यही इसका भविष्यफल है।'

नारदजीकी यह बात सुनकर हिमवान् भयसे घबरा उठे, उनका धैर्य जाता रहा, वे आँसू बहाते हुए गद्द कण्ठसे बोले—'अत्यन्त दोषोंसे भरे हुए संसारकी गति दुर्विशेष है—उसका ज्ञान होना कठिन है। शास्त्रकारोंने शास्त्रोंमें पुत्रको नरकसे त्राण देनेवाला बनाकर सदा पुत्रप्राप्तिकी ही प्रशंसा की है; किन्तु यह बात प्राणियोंको मोहमें डालनेके लिये है। क्योंकि स्त्रीके बिना किसी जीवकी सृष्टि हो ही नहीं सकती। परन्तु स्त्री-जाति

स्वभावसे ही दीन एवं दयनीय है। शास्त्रोंमें यह महान् फलदायक वचन अनेकों बार निःसन्देहरूपसे दुहराया गया है कि शुभलक्षणोंसे सम्पन्न सुशीला कन्या दस पुत्रोंके समान है। किन्तु आपने मेरी कन्याके शरीरमें केवल दोषोंका ही संग्रह बताया है। ओह ! यह सुनकर मुझपर मोह छा गया है, मैं सूख गया हूँ, मुझे बड़ी भारी गलानि और विषाद हो रहा है। मुने ! मुझपर अनुग्रह करके इस कन्यासम्बन्धी दुःखका निवारण कीजिये। देवर्णे ! आपने कहा है कि इसके पतिका जन्म ही नहीं हुआ है। यह ऐसा दुर्भाग्य है, जिसकी कहीं तुल्ना नहीं है। यह अपार और दुःसह दुःख है। हाथों और पैरोंमें जो रेखाएँ बनी होती हैं, वे मनुष्य अथवा देवजातिके लोगोंको शुभ और अशुभ फलकी सूचना देनेवाली हैं; सो आपने इसे लक्षणहीन बताया है। साथ ही यह भी कहा है कि 'इसका एक हाथ सदा उत्तान रहेगा।' परन्तु उत्तान हाथ तो सदा याचकोंका ही होता है—वे ही सबके सामने हाथ फैलाकर माँगते देखे जाते हैं। जिनके शुभका उदय हुआ है, जो धन्य तथा दानशील हैं, उनका हाथ उत्तान नहीं देखा जाता। आपने इसकी उत्तम कान्ति बतानेके साथ ही यह भी कहा है कि इसके चरण व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त हैं; अतः मुने ! उस चिह्नसे भी मुझे कल्याणकी आशा नहीं जान पड़ती।'

नारदजी बोले—गिरिराज ! तुम तो अपार हर्षके स्थानमें दुःखकी बात कर रहे हो। अब मेरी यह बात सुनो। मैंने पहले जो कुछ कहा था, वह रहस्यपूर्ण था। इस समय उसका स्पष्टीकरण करता हूँ एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। हिमाचल ! मैंने जो कहा था कि इस देवीके पतिका जन्म नहीं हुआ है, सो ठीक ही है। इसके पति महादेवजी हैं। उनका वास्तवमें जन्म नहीं हुआ है—वे अजन्मा हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्की उत्पत्तिके कारण वे ही हैं। वे सबको शरण देनेवाले एवं शासक, समातन, कल्याणकारी और परमेश्वर हैं। यह ब्रह्माण्ड उन्हींके संकल्पसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो यह संसार है, वह जन्म, मृत्यु आदिके दुःखसे पीड़ित होकर निरन्तर परिवर्तित होता

रहता है। किन्तु महादेवजी अचल और स्थिर है। वे जात नहीं, जनक हैं—पुत्र नहीं, पिता हैं। उनपर बुद्धापेक्षा आक्रमण नहीं होता। वे जगत्के स्वामी और आधिव्याधिसे रहित हैं। इसके सिवा जो मैंने तुम्हारी कन्याको लक्षणोंसे रहित बताया है, उस वाक्यका ठीक-ठीक विचारपूर्ण तात्पर्य सुनो। शरीरके अवयवोंमें जो चिह्न या रेखाएँ होती हैं, वे सीमित आयु, धन और सौभाग्यको व्यक्त करनेवाली होती हैं; परन्तु जो अनन्त और अप्रमेय है, उसके अमित सौभाग्यको सूचित करनेवाला कोई चिह्न या लक्षण शरीरमें नहीं होता। महामते ! इसीसे मैंने बतलाया है कि इसके शरीरमें कोई लक्षण नहीं है। इसके अतिरिक्त जो यह कहा गया है कि इसका एक हाथ सदा उत्तान रहेगा, उसका आशय यह है—वर देनेवाला हाथ उत्तान होता है। देवीका यह हाथ वरद मुद्रासे युक्त होगा। यह देवता, असुर और मुनियोंके समुदायको वर देनेवाली होगी तथा जो मैंने इसके चरणोंको उत्तम कान्ति और व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त बताया है, उसकी व्याख्या भी मेरे मुँहसे सुनो—'गिरिश्रेष्ठ ! इस कन्याके चरण कमलके समान अरुण रंगके हैं। इनपर नखोंकी उज्ज्वल कान्ति पड़नेसे स्वच्छता (श्वेत कान्ति) आ गयी है। देवता और असुर जब इसे प्रणाम करेंगे, तब उनके किरीटमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्ति इसके चरणोंमें प्रतिबिम्बित होगी। उस समय ये चरण अपना स्वाभाविक रंग छोड़कर विचित्र रंगके दिखायी देंगे। उनके इस परिवर्तन और विचित्रताको ही व्यभिचार कहा गया है [अतः तुम्हें कोई विपरीत आशङ्का नहीं करनी चाहिये]। महीधर ! यह जगत्का भरण-पोषण करनेवाले वृषभध्वज महादेवजीकी पली है। यह सम्पूर्ण लोकोंकी जननी तथा भूतोंको उत्पन्न करनेवाली है। इसकी कान्ति परम पवित्र है। यह साक्षात् शिवा है और तुम्हारे कुलको पवित्र करनेके लिये ही इसने तुम्हारी पलीके गर्भसे जन्म लिया है। अतः जिस प्रकार यह शीघ्र ही पिनाकधारी भगवान् शङ्करका संयोग प्राप्त करे, उसी उपायका तुम्हें विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे देवताओंका एक महान् कार्य सिद्ध होगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! नारदजीके मुँहसे ये सारी बातें सुनकर मेनाके स्वामी गिरिराज हिमालयने अपना नया जन्म हुआ माना । वे अत्यन्त हर्षमें भरकर बोले—‘प्रभो ! आपने घोर और दुस्तर नरकसे मेरा उद्धार कर दिया । मुझे ! आप-जैसे संतोंका दर्शन निश्चय ही अमोघ फल देनेवाला होता है । इसलिये इस कार्यमें—मेरी कन्याके विवाहके सम्बन्धमें आप समय-समयपर योग्य आदेश देते रहें [जिससे यह कार्य निर्विघ्नपूर्वक सम्पन्न हो सके] ।’

गिरिराजके ऐसा कहनेपर नारदजी हर्षमें भरकर बोले—‘शैलराज ! सारा कार्य सिद्ध ही समझो । ऐसा करनेसे ही देवताओंका भी कार्य होगा और इसीमें तुम्हारा भी महान् लाभ है ।’ यों कहकर नारदजी देवलोकमें जाकर इन्द्रसे मिले और बोले—‘देवराज ! आपने मुझे जो कार्य सौंपा था, उसे तो मैंने कर ही दिया; किन्तु अब कामदेवके बाणोंसे सिद्ध होने योग्य कार्य उपस्थित हुआ है ।’ कार्यदर्शी नारद मुनिके इस प्रकार कहनेपर देवराज इन्द्रने आमकी मञ्जरीको ही अख्लके रूपमें प्रयोग करनेवाले कामदेवका स्मरण किया । उसे सामने प्रकट हुआ देख इन्द्रने कहा—‘रतिवल्लभ ! तुम्हें बहुत उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता है; तुम तो सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हुए हो, इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके मनकी बात जानते हो । स्वर्गवासियोंका प्रिय कार्य करो । मनोभव ! गिरिराजकुमारी उमाके साथ भगवान् शङ्करका शीघ्र संयोग कराओ । इस मधुमास चैत्रको भी साथ लेते जाओ तथा अपनी पत्नी रतिसे भी सहायता लो ।’

कामदेव बोला—देव ! यह सामग्री मुनियों और दानवोंके लिये तो बड़ी भयंकर है, किन्तु इससे भगवान् शङ्करको वशमें करना कठिन है ।

इन्द्रने कहा—‘रतिकान्त ! तुम्हारी शक्तिको मैं जानता हूँ; तुम्हारे द्वारा इस कार्यके सिद्ध होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।’

इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेव अपने सखा मधुमासको लेकर रति के साथ तुरंत ही हिमालयके शिखरपर गया । वहाँ पहुँचकर उसने कार्यके उपायका

विचार करते हुए सोचा कि ‘महात्मा पुरुष निष्कम्प—अविचल होते हैं । उनके मनको वशमें करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है । उसे पहले ही क्षुब्ध करके उसके ऊपर विजय पायी जाती है । पहले मनका संशोधन कर लेनेपर ही प्रायः सिद्धि प्राप्त होती है । मैं महादेवजीके अन्तःकरणमें प्रवेश करके इन्द्रिय-समुदायको व्याप्त कर रमणीय साधनोंके द्वारा अपना कार्य सिद्ध करूँगा ।’ यह सोचकर कामदेव भगवान् भूतनाथके आश्रमपर गया ।

वह आश्रम पृथ्वीका सारभूत स्थान जान पड़ता था । वहाँकी वेदी देवदारुके वृक्षसे सुशोभित हो रही थी । कामदेवने, जिसका अन्तकाल क्रमशः समीप आता जा रहा था, धीरे-धीरे आगे बढ़कर देखा—भगवान् शङ्कर ध्यान लगाये बैठे हैं । उनके अधस्थुले नेत्र अर्ध-विकसित कमलदलके समान शोभा पा रहे हैं । उनकी दृष्टि सीधी एवं नासिकाके अग्रभागपर लगी हुई है । शरीरपर उत्तरीयके रूपमें अत्यन्त रमणीय व्याघ्रचर्म लटक रहा है । कानोंमें धारण किये हुए सर्पोंके फनोंसे निकली हुई फुफकारकी आँचसे उनका मुख पिङ्गल वर्णका हो रहा है । हवासे हिलती हुई लम्बी-लम्बी जटाएँ उनके कंपोल-प्रान्तका चुम्बन कर रही हैं । वासुकि नागका यज्ञोपवीत धारण करनेसे उनकी नाभिके मूल भागमें वासुकिका मुख और पूँछ सटे हुए दिखायी देते हैं । वे अज्ञलि बाँधे ब्रह्मके चिन्तनमें स्थिर हो रहे हैं और सर्पोंकी आभूषण धारण किये हुए हैं ।

तदनन्तर वृक्षकी शाखासे भ्रमरकी भाँति झंकार करते हुए कामदेवने भगवान् शङ्करके कानमें होकर हृदयमें प्रवेश किया । कामका आधारभूत वह मधुर झंकार सुनकर शङ्करजीके मनमें रमणकी इच्छा जाग्रत् हुई और उन्होंने अपनी प्राणवल्लभा दक्षकुमारी सतीका स्मरण किया । तब स्मरण-पथमें आयी हुई सती उनकी निर्मल समाधि-भावनाको धीरे-धीरे लुप्त करके स्वयं ही लक्ष्य-स्थानमें आ गयीं और उन्हें प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित-सी जान पड़ीं । फिर तो भगवान् शिव उनकी सुधमें तन्मय हो गये । इस आकस्मिक विघ्नने उनके अन्तःकरणको आवृत्त कर लिया । देवताओंके अधीश्वर

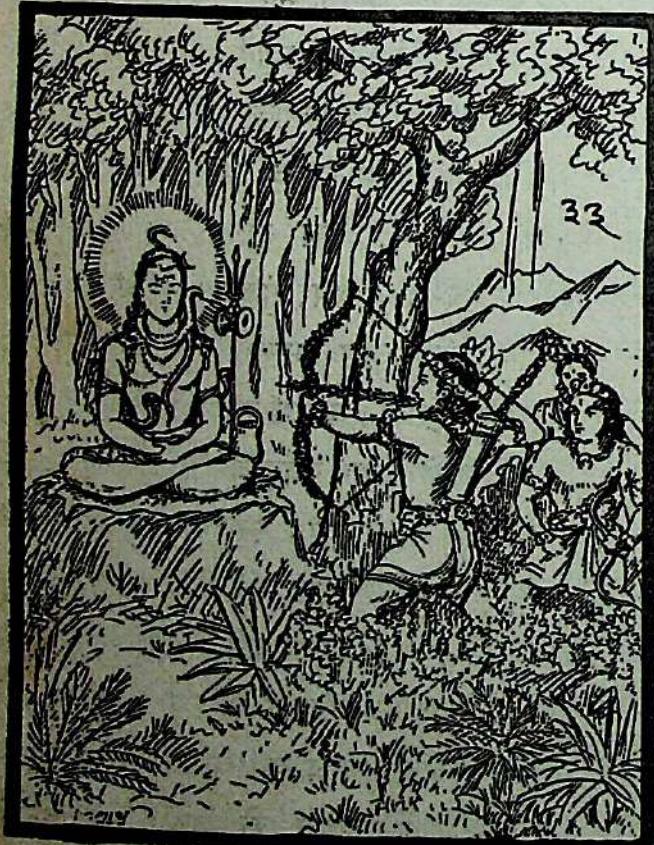
शिव क्षणभरके लिये कामजनित विकारको प्राप्त हो गये। किन्तु यह अवस्था अधिक देरतक न रही, कामदेवका कुचक्र समझकर उनके हृदयमें कुछ क्रोधका सञ्चार हो आया। उन्होंने धैर्यका आश्रय लेकर कामदेवके प्रभावको दूर किया और स्वयं योगमायासे आवृत होकर दृढ़तापूर्वक समाधिमें स्थित हो गये।

उस योगमायासे आविष्ट होनेपर कामदेव जलने लगा, अतः वह वासनामय व्यसनका रूप धारण करके उनके हृदयसे बाहर निकल आया। बाहर आकर वह एक स्थानपर खड़ा हुआ। उस समय उसकी सहायिका रति और सखा वसंत—इन दोनोंने भी उसका अनुसरण किया। फिर मदनने आमकी मौरका मनोहर गुच्छ लेकर उसमें मोहनास्त्रका आधान किया और उसे अपने पुष्पमय धनुषपर रखकर तुरंत ही महादेवजीकी छातीमें मारा। इन्द्रियोंके समुदायरूप हृदयके बिंध जानेपर

भगवान् रुद्रका वह नेत्र ऐसा भयंकर दिखायी देने लगा, मानो संसारका संहार करनेके लिये खुला हो। मदन पास ही खड़ा था। महादेवजीने उस नेत्रको फैलाकर मदनको ही उसका लक्ष्य बनाया। देवतालोग 'त्राहि-त्राहि' कहकर चिल्लाते ही रह गये और मदन उस नेत्रसे निकली हुई चिनगारियोंमें पड़कर भस्म हो गया। कामदेवको दग्ध करके वह आग समस्त जगत्को जलानेके लिये बढ़ने लगी। यह जानकर भगवान् शिवने उस कामाग्रिको आमके वृक्ष, वसन्त, चन्द्रमा, पुष्पसमूह, ध्रमर तथा कोयलके मुखमें बाँट दिया। महादेवजी बाहर और भीतर भी कामदेवके बाणोंसे विद्ध थे, इसलिये उपर्युक्त स्थानोंमें उस अग्रिका विभाग करके वे उनमेंसे प्रत्येकको प्रज्वलित कामाग्रिके ही रूपमें देखने लगे। वह कामाग्रि सम्पूर्ण लोकको क्षोभमें डालनेवाली है; उसके प्रसारको रोकना कठिन होता है।

कामदेवको भगवान् शिवके हुङ्कारकी ज्वालासे भस्म हुआ देख रति उसके सखा वसन्तके साथ जोर-जोरसे रोने लगी। फिर वह त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखरकी शरणमें गयी और धरतीपर घुटने टेककर स्तुति करने लगी।

रति बोली—जो सबके मन हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है और जो अद्भुत मार्गसे चलनेवाले हैं, उन कल्याणमय शिवको नमस्कार है। जो सबको शरण देनेवाले तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है। नाना लोकोंमें समृद्धिका विस्तार करनेवाले शिवको नमस्कार है। भक्तोंको मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले महादेवजीको प्रणाम है। कर्मोंको उत्पन्न करनेवाले महेश्वरको नमस्कार है। प्रभो ! आपका स्वरूप अनन्त है; आपको सदा ही नमस्कार है। देव ! आप ललाटमें चन्द्रमाका चिह्न धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। आपकी लीलाएँ असीम हैं। उनके द्वारा आपकी उत्तम स्तुति होती रहती है। वृषभराज नन्दी आपका वाहन है। आप दानवोंके तीनों पुरोंका अन्त करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और नाना प्रकारके रूप धारण किया करते हैं; आपको



भगवान् शिवने कामदेवकी ओर दृष्टिपात किया। फिर तो उनका मुख क्रोधके आवेगसे निकलते हुए घोर हुङ्कारके कारण अत्यन्त भयानक हो उठा। उनके तीसरे नेत्रमें आगकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। रौद्र शरीरधारी

नमस्कार है। कालस्वरूप आपको नमस्कार है। कलसंख्यरूप आपको नमस्कार है तथा काल और कल दोनोंसे अतीत आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप चराचर प्राणियोंके आचारका विचार करनेवालोंमें सबसे बड़े आचार्य हैं। प्राणियोंकी सृष्टि आपके ही संकल्पसे हुई है। आपके ललाटमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। मैं अपने प्रियतमकी प्राप्तिके लिये सहसा आप महेश्वरकी शरणमें आयी हूँ। भगवन् ! मेरी कामनाको पूर्ण करनेवाले और यशको बढ़ानेवाले मेरे पतिको मुझे दे दीजिये। मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकती। पुरुषेश्वर ! प्रियाके लिये प्रियतम ही नित्य सेव्य है, उससे बढ़कर संसारमें दूसरा कौन है। आप सबके प्रभु, प्रभावशाली तथा प्रिय वस्तुओंकी उत्पत्तिके कारण हैं। आप ही इस भुवनके स्वामी और रक्षक हैं। आप परम दयालु और भक्तोंका भय दूर करनेवाले हैं।

पुलस्त्यजी कहते हैं—कामदेवकी पत्नी रतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर उसकी ओर देखकर मधुर वाणीमें बोले—‘सुन्दरी ! समय आनेपर यह कामदेव शीघ्र ही उत्पन्न होगा। संसारमें इसकी अनङ्गके नामसे प्रसिद्धि होगी। भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर कामवल्लभा रति उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हिमालयके दूसरे उपवनमें चली गयी।

उधर नारदजीके कथनानुसार हिमवान् अपनी कन्याको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके उसकी दो सखियोंके साथ भगवान् शङ्करके समीप ले आ रहे थे। मार्गमें रतिके मुखसे मदन-दहनका समाचार सुनकर उनके मनमें कुछ भय हुआ। उन्होंने कन्याको लेकर अपनी पुरीमें लौट जानेका विचार किया। यह देख संकोचशील पार्वतीने अपनी सखियोंके मुखसे पिताको कहलाया—‘तपस्यासे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। तप करनेवालेके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। संसारमें तपस्या-जैसे साधनके रहते लोग व्यर्थ ही दुर्भाग्यका भार ढोते हैं। अतः अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं तपस्या ही करूँगी।’ यह सुनकर हिमवान् ने

कहा—‘बेटी ! ‘उ’ ‘मा’—ऐसा न करो। तुम अभी चपल बालिका हो। तुम्हारा शरीर तपस्याका कष्ट सहन करनेमें समर्थ नहीं है। बाले ! जो बात होनेवाली होती है, वह होकर ही रहती है; इसलिये तुम्हें तपस्या करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब घरको ही चलूँगा और वहीं इस कार्यकी सिद्धिके लिये कोई उपाय सोचूँगा।’ पिताके ऐसा कहनेपर भी जब पार्वती घर जानेको तैयार नहीं हुई, तब हिमवान् ने मन-ही-मन अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयकी प्रशंसां की। इसी समय आकाशमें दिव्य वाणी प्रकट हुई, जो तीनों लोकोंमें सुनायी पड़ी। वह इस प्रकार थी—‘गिरिराज ! तुमने ‘उ’ ‘मा’ कहकर अपनी पुत्रीको तपस्या करनेसे रोका है; इसलिये संसारमें इसका नाम उमा होगा। यह मूर्तिमती सिद्धि है। अपनी अभिलषित वस्तुको अवश्य प्राप्त करेगी।’ यह आकाशवाणी सुनकर हिमवान् ने पुत्रीको तप करनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं अपने भवनको चले गये।

पार्वती अपनी दोनों सखियोंके साथ हिमालयके उस प्रदेशमें गयी, जहाँ देवताओंका भी पहुँचना कठिन था। वहाँका शिखर परम पवित्र और नाना प्रकारकी धातुओंसे विभूषित था। सब ओर दिव्य पुष्प और लताएँ फैली थीं, वृक्षोंपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। वहाँ पार्वतीने अपने वस्त्र और आभूषण उतारकर दिव्य वल्कल धारण कर लिये। कटिमें कुशोंकी मेखला पहन ली। वह प्रतिदिन तीन बार स्नान करती और गुलाबके फूल चबाकर रह जाती थी। इस प्रकार उसने सौ वर्षोंतक तपस्या की। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक हिमवान्-कुमारी प्रतिदिन एक पत्ता खाकर रही। तदनन्तर पुनः सौ वर्षोंतक उसने आहारका सर्वथा परित्याग कर दिया। इस तरह वह तपस्याकी निधि बन गयी। उसके तपकी आँचसे समस्त प्राणी उद्दिग्र हो उठे। तब इन्द्रने समर्थियोंका स्मरण किया। वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ एक ही समय वहाँ उपस्थित हुए। इन्द्रने उनका स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने अपने बुलाये जानेका प्रयोजन पूछा। तब इन्द्रने कहा—‘महात्माओ ! आपलोगोंके आवाहनका प्रयोजन सुनिये। हिमालयपर

पार्वतीदेवी घोर तपस्या कर रही हैं। आपलोग संसारके हितके लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर उन्हें अभिमत वस्तुकी प्राप्तिका विश्वास दिला तपस्या बंद करा दीजिये।' 'बहुत अच्छा!' कहकर सप्तर्षिगण उस सिद्धसेवित शैलपर आये और पार्वतीदेवीसे मधुर वाणीमें बोले— 'बेटी! तुम किस उद्देश्यसे यहाँ तप कर रही हो?' पार्वतीदेवीने मुनियोंके गौरवका ध्यान रखकर आदर-पूर्वक कहा— 'महात्माओ! आपलोग समस्त प्राणियोंके मनोरथको जानते हैं। प्रायः सभी देहधारी ऐसी ही वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ होती है। मैं भगवान् शङ्करको पतिरूपमें प्राप्त करनेका उद्योग कर रही हूँ। वे स्वभावसे ही दुराराध्य हैं। देवता और असुर भी जिनके स्वरूपको निश्चित रूपसे नहीं जानते, जो पारमार्थिक क्रियाओंके एकमात्र आधार हैं, जिन वीतराग महात्माने कामदेवको जलाकर भस्म कर डाला है, ऐसे महामहिम शिवको मेरी-जैसी तुच्छ अबला किस प्रकार आराधनाद्वारा प्रसन्न कर सकती है।'

पार्वतीके यों कहनेपर मुनियोंने उनके मनकी दृढ़ता जाननेके लिये कहा— 'बेटी! संसारमें दो तरहका सुख देखा जाता है—एक तो वह है, जिसका शरीरसे सम्बन्ध होता है और दूसरा वह, जो मनको शान्ति एवं आनन्द प्रदान करनेवाला होता है। यदि तुम अपने शरीरके लिये नित्य सुखकी इच्छा करती हो तो तुम्हें घृणित वेषमें रहनेवाले भूत-प्रेतोंके सङ्गी महादेवसे वह सुख कैसे मिल सकता है। अरी! वे फुफकारते हुए भयंकर भुजङ्गोंको आभूषणरूपमें धारण करते हैं, इमशानभूमिमें रहते हैं और रौद्ररूपधारी प्रमथगण सदा उनके साथ लगे रहते हैं। उनसे तो लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णु कहीं अच्छे हैं। वे इस जगत्के पालक हैं। उनके स्वरूपका कहीं ओर-छोर नहीं है तथा वे यज्ञभोगी देवताओंके खामी हैं। तुम उन्हें पानेकी इच्छा क्यों नहीं करतीं? अथवा दूसरे किसी देवताको पानेसे भी तुम्हें मानसिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। जिस वरको तुम चाहती हो, उसके पानेमें ही बहुत छेशा है; यदि कदाचित् प्राप्त भी हो गया तो वह निष्कल वृक्षके समान है—उससे तुम्हें

सुख नहीं मिल सकता।'

उन श्रेष्ठ मुनियोंके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी कुपित हो उठीं, उनके ओठ फड़कने लगे और वे क्रोधसे लाल आँखें करके बोलीं— 'महर्षियो! दुराग्रहीके लिये कौन-सी नीति है। जिनकी समझ उलटी है, उन्हें आजतक किसने राहपर लगाया है। मुझे भी ऐसी ही जानिये। अतः मेरे विषयमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप सब लोग प्रजापतिके समान हैं, सब कुछ देखने और समझनेवाले हैं; फिर भी यह निश्चय है कि आप उन जगत्ब्रह्म सनातन देव भगवान् शङ्करको नहीं जानते। वे अजन्मा, ईश्वर और अव्यक्त हैं। उनकी महिमाका माप-तौल नहीं है। उनके अलौकिक कर्मोंका उत्तम रहस्य समझना तो दूर रहा, उनके स्वरूपका बोध भी आवृत है। श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी उन्हें यथार्थरूपसे नहीं जानते। ब्रह्मर्षियो! उनका आत्म-वैभव समस्त भुवनोंमें फैला हुआ है, सम्पूर्ण प्राणियोंके सामने प्रकट है; क्या उसे भी आपलोग नहीं जानते? बताइये तो, यह आकाश किसका स्वरूप है? यह अग्नि, यह वायु किसकी मूर्ति है? पृथ्वी और जल किसके विग्रह हैं? तथा ये चन्द्रमा और सूर्य किसके नेत्र हैं?

पार्वतीदेवीकी बात सुनकर सप्तर्षिगण वहाँसे उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शिव विराजमान थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार करके भगवान्-से कहा— 'स्वर्गके अधीश्वर महादेव! आप दयालु देवता हैं। गिरिराज हिमालयकी पुत्री आपके लिये तपस्या कर रही है। हमलोग उसका मनोरथ जानकर आपके पास आये हैं। आप योगमाया, महिमा और गुणोंके आश्रय हैं। आपको अपने निर्मल ऐश्वर्यपर गर्व नहीं है। शरीरधारियोंमें हमलोग अधिक पुण्यवान् हैं जो कि ऐसे महिमाशाली आपका दर्शन कर रहे हैं।' ऋषियोंके रमणीय एवं हितकर वचन सुनकर वाणीश्वरोंमें श्रेष्ठ भगवान् शङ्कर मुसकराते हुए बोले— 'मुनिवरो! मैं जानता हूँ लोक-रक्षाकी दृष्टिसे वास्तवमें यह कार्य बहुत उत्तम है; किन्तु इस विषयमें मुझे हिमवान् पर्वतसे ही आशङ्का

है—शायद वे मेरे साथ अपनी कन्याके विवाहकी बात स्वीकार न करें। इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग कार्यसिद्धिके लिये उद्यत होते हैं, वे सभी उत्कण्ठित रहा करते हैं। उत्कण्ठा होनेपर बड़े-बड़े महात्माओंके चित्तमें भी उतावली पड़ जाती है। तथापि विशिष्ट व्यक्तियोंको लोक-मर्यादाका अनुसरण करना ही चाहिये। क्योंकि इससे धर्मकी वृद्धि होती है और परवर्ती लोगोंके लिये भी आदर्श उपस्थित होता है।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सप्तर्षिगण तुरंत हिमालयके भवनमें गये। वहाँ हिमवान्‌ने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। उससे प्रसन्न होकर वे मुनिश्रेष्ठ उतावलीके कारण संक्षेपसे बोले— 'गिरिराज ! तुम्हारी पुत्रीके लिये साक्षात् पिनाकधारी भगवान् शङ्कर तुमसे याचना करते हैं। अतः तुम अपनी पुत्री भगवान् श्रीशंकरको समर्पित करके अपनेको पावन बनाओ। यह देवताओंका कार्य है। जगत्का उद्धार करनेके लिये ही यह उद्योग किया जा रहा है।' उनके ऐसा कहनेपर हिमवान् आनन्द-विभोर हो गये। तब वे हिमवान्‌को साथ ले पार्वतीके आश्रमपर गये। उमा तपस्याके कारण तेजोमयी दिखायी दे रही थी। उसने अपने तेजसे सूर्य और अग्निकी ज्वालाको भी परास्त कर दिया था। मुनियोंने जब स्नेहपूर्वक उसका मनोगत भाव पूछा तो उस मानिनीने यह सारगर्भित वचन कहा— 'मैं पिनाकधारी भगवान् रुद्रके सिवा दूसरे किसीको नहीं चाहती। वे ही छोटे-बड़े सब प्राणियोंमें [आत्मारूपसे] स्थित हैं, वे ही सबको समृद्धि प्रदान करनेवाले हैं। धीरता और ऐश्वर्य आदि गुण उन्हींमें शोभा पाते हैं; वे तुलनारहितं महान् प्रमाण हैं, उनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। यह सारा जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है। जिनका ऐश्वर्य आदि, अन्तसे रहित है, उन्हीं भगवान् शङ्करकी शरणमें मैं आयी हूँ।'

पार्वतीदेवीके ये वचन सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ बहुत प्रसन्न हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये और उन्होंने तपस्विनी गिरिजाकी प्रशंसा करते हुए मधुर वाणीमें कहा— 'अहो ! बड़ी अद्भुत बात है। बेटी !

तुम निर्मल ज्ञानकी मूर्ति-सी जान पड़ती हो और श्रीशङ्करजीमें दृढ़ अनुराग रखनेके कारण हमारे अन्तःकरणको अत्यन्त प्रसन्न कर रही हो। हम भगवान् शिवके अद्भुत ऐश्वर्यको जानते हैं, केवल तुम्हारे निश्चयकी दृढ़ता जाननेके लिये यहाँ आये थे। अब तुम्हारी यह कामना शीघ्र ही पूरी होगी। अपने इस मनोहर रूपको तपस्याकी आगमें न जलाओ। कल प्रातःकाल भगवान् शङ्कर स्वयं आकर तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। हमलोग पहले आकर तुम्हारे पिताजीसे भी प्रार्थना कर चुके हैं। अब तुम अपने पिताके साथ घर जाओ, हम भी अपने आश्रमको जाते हैं।' उनके इस प्रकार कहनेपर पार्वती यह सोचकर कि तपस्याका यथार्थ फल प्राप्त हो गया, तुरंत ही पिताके शोभासम्पन्न दिव्य भवनमें चली गयी। वहाँ जानेपर गिरिजाके हृदयमें भगवान् शङ्करके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग्रत् हुई। अतः उसे वह रात एक हजार वर्षोंके समान जान पड़ी। तदनन्तर ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर सखियोंने पार्वतीका माझलिक कार्य करना आरम्भ किया। क्रमशः नाना प्रकारके मङ्गल विधान यथार्थ-रूपसे सम्पन्न किये गये। सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली ऋतुएँ मूर्तिमान् होकर गिरिराज हिमालयकी उपासना करने लगीं। सुखदायिनी वायु झाड़ने-बुहारनेके काममें लगी थी। चिन्तामणि आदि रत्न, तरह-तरहकी लताएँ तथा कल्पतरु आदि बड़े-बड़े वृक्ष भी वहाँ सब ओर उपस्थित थे। दिव्य ओषधियोंके साथ साधारण ओषधियाँ भी दिव्य देह धारण करके सेवामें संलग्न थीं। रस और धातुएँ भी वहाँ दास-दासीका काम करती थीं। नदियाँ, समुद्र तथा स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी मूर्तिमान् होकर हिमवान्‌की महिमा बढ़ा रहे थे।

दूसरी ओर निर्मल शरीरवाले देवता, मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरगण श्रीशङ्करजीके शृङ्गारकी सारी सामग्री सजाये गच्छमादन पर्वतपर उपस्थित हुए। ब्रह्माजीने श्रीशङ्करजीके जटा-जूटमें चन्द्रमाकी कला सजायी। भगवान् श्रीविष्णु रत्नके बने कर्णभूषण, उज्ज्वल कण्ठहार और भुजङ्गमय आभूषण लेकर

श्रीशङ्करजीके सामने उपस्थित हुए। अन्य देवताओंने मनके समान वेगवाले शिववाहन नन्दीको भी विभूषित किया। भाँति-भाँतिकी शृङ्गार-सामग्रियोंसे श्रीशङ्करजीको सुसज्जित करके उन्हें सुन्दर आभूषण पहनाकर भी देवताओंकी व्यग्रता अभी दूर नहीं हुई—वे शीघ्र-से-शीघ्र वैवाहिक कार्य सम्पन्न कराना चाहते थे। पृथ्वीदेवी भी सर्वथा व्यग्र थीं। वे मनोरम रूप धारण करके उपस्थित हुईं और नूतन तथा सुन्दर रस और ओषधियाँ प्रदान करने लगीं। साक्षात् वरुण रत्न, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंके बने हुए विचित्र-विचित्र पुष्प लेकर उपस्थित हुए। समस्त देहधारियोंके भीतर रहकर सब कुछ जाननेवाले अग्रिदेव भी परम पवित्र सोनेके दिव्य आभूषण लेकर विनीत भावसे सामने आये। वायु सुगन्धि बिखेरती हुई मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होने लगी, जिससे उसका स्पर्श भगवान् शङ्करको सुखद प्रतीत हो। वज्रसे सुसज्जित देवराज इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने हाथोंमें भगवान् शिवका छत्र ग्रहण किया। वह छत्र अपने उज्ज्वल प्रकाशसे चन्द्रमाकी किरणावलियोंका उपहास कर रहा था। गन्धर्व और किन्नर अत्यन्त मधुर बाजोंकी ध्वनि करते हुए गान करने लगे। मुहूर्त और ऋतुएँ मूर्तिमान् होते गान और नृत्य करने लगीं। भगवान् शङ्कर हिमवान्‌के नगरमें पहुँचे। उनके चञ्चल प्रमथगण हिमालयका आलोड़न करते हुए वहाँ स्थित हुए। तत्पश्चात् विश्वविधाता ब्रह्माजी तथा भगवान् शङ्कर क्रमशः विवाहमण्डपमें विराजमान हुए। शिवने अपनी

पत्नी उमाके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे वैवाहिक कार्य सम्पन्न किया। गिरिराजने उन्हें अर्घ्य दिया और देवताओंने



विनोदके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। शिवने पत्नीके साथ वह रात्रि वहीं व्यतीत की। सबेरे देवताओंके स्तवन करनेपर वे उठे और गिरिराजसे विदा ले वायुके समान वेगशाली नन्दीपर सवार हो पत्नीसहित मन्दराचलको चले गये। उमाके साथ भगवान् नीललोहितके चले जानेपर हिमवान्‌का मन कुछ उदास हो गया। क्यों न हो, कन्याकी विदाई हो जानेपर भला, किस पिताका हृदय व्याकुल नहीं होता।

————★————

गणेश और कार्तिकेयका जन्म तथा कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् शङ्कर पार्वती देवीके साथ नगरके रमणीय उद्यानों तथा एकान्त बनोंमें विहार करने लगे। देवीके प्रति उनके हृदयमें बड़ा अनुराग था। एक समयकी बात है—गिरिजाने सुगन्धित तेल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगावाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषको आकृति बनायी, जिसका मुँह

हाथीके समान था; फिर खेल करते हुए भगवती शिवाने उसे गङ्गाजीके जलमें डाल दिया। गङ्गाजी पार्वतीको अपनी सखी मानती थीं। उनके जलमें पड़ते ही वह पुरुष बढ़कर विशालकाय हो गया। पार्वती देवीने उसे पुत्र कहकर पुकारा। फिर गङ्गाजीने भी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवताओंने गङ्गेन्य कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजानन देवताओंके द्वारा पूजित हुए।

ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया ।

तत्पश्चात् परम सुन्दरी शिवा देवीने खेलमें ही एक वृक्ष बनाया । उससे अशोकका मनोहर अङ्कुर फूट निकला । सुन्दर मुखवाली पार्वतीने उसका मङ्गल-संस्कार किया । तब इन्द्रके पुरोहित बृहस्पति आदि ब्राह्मणों, देवताओं तथा मुनियोंने कहा—‘देवि ! बताइये, वृक्षोंके पौधे लगानेसे क्या फल होगा ?’ यह सुनकर पार्वती देवीका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा, वे अत्यन्त कल्याणमय वचन बोलीं—‘जो विज्ञ पुरुष ऐसे गाँवमें जहाँ जलका अभाव हो, कुआँ बनवाता है, वह उसके जलकी जितनी बूँदें हों उतने वर्षतक स्वर्गमें निवास करता है । दस कुओंके समान एक बावली, दस बावलियोंके समान एक सरोवर, दस सरोवरोंके समान एक कन्या और दस कन्याओंके समान एक वृक्ष लगानेका फल होता है । यह शुभ मर्यादा नियत है । यह लोकको उन्नतिके पथपर ले जानेवाली है ।’ माता पार्वती देवीके यों कहनेपर बृहस्पति आदि ब्राह्मण उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने निवासस्थानको छले गये ।

उनके जानेके पश्चात् भगवान् शङ्कर पार्वतीके साथ अपने भवनमें गये । उस भवनमें चित्तको प्रसन्न करनेवाले ऊँचे-ऊँचे चौबारे, अटारियाँ और गोपुर बने हुए थे । वेदियोंपर मालाएँ शोभा पा रही थीं । सब ओर सोना जड़ा था । महलमें पुष्प बिखरे हुए थे, जिनकी सुगम्भसे उन्मत्त होकर भ्रमरण गुंजार कर रहे थे । उस भवनमें भगवान् श्रीशङ्करको पार्वतीजीके साथ निवास करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये । तब देवताओंने उतावले होकर अग्निदेवको श्रीशङ्करजीकी चेष्टा जाननेके लिये भेजा । अग्निने तोतेका रूप धारण करके, जिससे पक्षी आते-जाते थे, उसी छिद्रके द्वारा शङ्करजीके महलमें प्रवेश किया और उन्हें गिरिजाके साथ एक शश्यापर सोते देखा । तत्पश्चात् देवी पार्वती शश्यासे उठकर कौतूहलवश एक सरोवरके तटपर गयीं, जो सुवर्णमय कमलोंसे सुशोभित था । वहाँ जाकर उन्होंने जलविहार किया । तदनन्तर वे सखियोंके साथ सरोवरके किनारे बैठीं और उसके निर्मल पङ्कजोंसे सुशोभित स्वादिष्ट

जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं । इतनेमें ही उन्हें सूर्यके समान तेजस्विनी छः कृतिकाएँ दिखायी दीं । वे कमलके पत्तेमें उस सरोवरका जल लेकर जब अपने घरको जाने लगीं, तब पार्वती देवीने हर्षमें भरकर कहा—‘देवियो ! कमलके पत्तेमें रखे हुए जलको मैं भी देखना चाहती हूँ ।’ वे बोलीं—‘सुमुखि ! हम तुम्हें इसी शर्तपर जल दे सकती हैं कि तुम्हारे प्रिय गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो, वह हमारा भी पुत्र माना जाय एवं हममें भी मातृभाव रखनेवाला तथा हमारा रक्षक हो । वह पुत्र तीनों लोकोंमें विस्थात होगा ।’ उनकी बात सुनकर गिरिजाने कहा—‘अच्छा, ऐसा ही हो ।’ यह उत्तर पाकर कृतिकाओंको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कमल-पत्रमें स्थित जलमेंसे थोड़ा पार्वतीजीको भी दे दिया । उनके साथ पार्वतीने भी क्रमशः उस जलका पान किया ।

जल पीनेके बाद तुरंत ही रोग-शोकका नाश करनेवाला एक सुन्दर और अद्भुत बालक भगवती पार्वतीकी दाहिनी कोख फाड़कर निकल आया । उसका शरीर सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाश-पुङ्गसे व्याप्त था । उसने अपने हाथमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अङ्कुश धारण कर रखे थे । वह अग्निके समान तेजस्वी और सुवर्णके समान गोरे रंगका बालक कुत्सित दैत्योंको मारनेके लिये प्रकट हुआ था; इसलिये उसका नाम ‘कुमार’ हुआ । वह कृतिकाके दिये हुए जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था । वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं; इन्हीं सब कारणोंसे वह तीनों लोकोंमें विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे विस्थात हुआ । ब्रह्मा, श्रीविष्णु, इन्द्र और सूर्य आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमार षडाननको सावधानीके साथ विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया । भगवान् श्रीविष्णुने सब तरहके आयुध प्रदान किये । धनाध्यक्ष कुबेरने दस लाख यक्षोंकी सेना दी । अग्निने तेज और वायुने वाहन अर्पित किये । इस प्रकार देवताओंने प्रसन्न चित्तसे सूर्यके समान तेजस्वी स्कन्दको अनन्त पदार्थ

दिये। तत्पश्चात् वे सब पृथ्वीपर घुटने टेककर बैठ गये और स्तोत्र पढ़कर वरदायक देवता षडगनकी स्तुति करने लगे। स्तुति पूर्ण होनेके पश्चात् कुमारने कहा—‘देवताओ! आपलोग शान्त होकर बताइये, मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ? यदि आपके मनमें विरकालसे कोई असाध्य कार्य करनेकी भी इच्छा हो तो कहिये।’

देवता बोले—कुमार! तारक नामसे प्रसिद्ध एक दैत्योंका राजा है, जो सम्पूर्ण देवकुलका अन्त कर रहा है। वह बलवान्, अजेय, तीखे स्वभाववाला, दुराचारी और अत्यन्त क्रोधी है। सबका नाश करनेवाला और दुर्दमनीय है। अतः आप उस दैत्यका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है, जो हमलोगोंको बहुत ही भयभीत कर रहा है।

देवताओंके यों कहनेपर कुमारने ‘तथास्तु’ कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और जगत्के लिये कण्टकरूप तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चले। उस समय समस्त देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। तदनन्तर कुमारका आश्रय मिल जानेके कारण इन्हने दानवराज तारकके पास अपना दूत भेजा। वहाँ जाकर दूतने उस भयानक आकृतिवाले दैत्यसे निर्भयतापूर्वक कहा—‘तारकासुर! देवराज इन्हने तुम्हें यह कहलाया है कि देवता तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपनी शक्तिभर प्राण बचानेकी चेष्टा करो।’ यों कहकर जब दूत चला गया, तब दानवने सोचा, हो-न-हो, इन्हको कोई आश्रय अवश्य मिल गया है, अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे। इन्ह मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं। वह सोचने लगा, ‘ऐसा कौन अपूर्व योद्धा होगा, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।’ तारकासुर इसी चिन्तामें व्याकुल हो रहा था, इतनेमें ही उसे सिद्धवन्दियोंके द्वारा गाया जाता हुआ किसीका यशोगान सुनायी पड़ा, जो हृदयको दुःखद प्रतीत होता था, जिसके अक्षर कड़वे जान पड़ते थे।

वन्दीगण कह रहे थे—महासेन! आपकी जय हो। आपके मस्तककी चञ्चल शिखाएँ बड़ी सुन्दर

दिखायी देती हैं, श्रीविग्रहकी कान्ति नूतन एवं निर्मल कमलदलके समान मनोरम जान पड़ती है। आप दैत्यवंशके लिये दुःसह दावानलके समान हैं। प्रभो! विशाख ! आपकी जय हो। तीनों लोकोंके शोकको शमन करनेवाले सात दिनकी अवस्थाके बालक ! आपकी जय हो। सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाका भार वहन करनेवाले दैत्यविनाशक स्कन्द ! आपकी जय हो।

देववन्दियोंद्वारा उच्चारित यह विजयघोष सुनकर तारकासुरको ब्रह्माजीके वचनका स्मरण हो आया। बालकके हाथसे वध होनेकी बात याद करके वह धर्मविध्वंसी दैत्य शोकाकुल हृदयसे अपने महलके बाहर निकला। उस समय बहुत-से वीर उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। कालनेमि आदि दैत्य भी थर्हा उठे।

उनका हृदय भयभीत हो गया। वे अपनी-अपनी सेनामें खड़े होकर व्यग्रताके कारण चकित हो रहे थे। तारकासुरने कुमारको सामने देखकर कहा—‘बालक! तू क्यों युद्ध करना चाहता है? जा, गेंद लेकर खेल। तेरे ऊपर जो यह महान् युद्धकी विभीषिका लादी गयी है, यह तेरे साथ बड़ा अन्याय किया गया है। तू अभी निरा बच्चा है, इसीलिये तेरी बुद्धि इतनी अल्प समझ रखनेवाली है।’

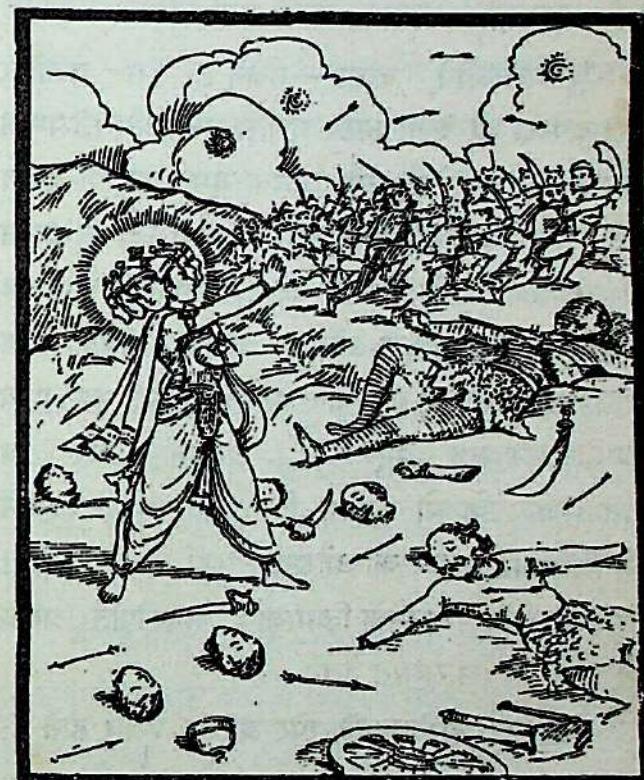
कुमार बोले—तारक! सुनो, यहाँ [अधिक बुद्धि लेकर] शास्त्रार्थ नहीं करना है। भयंकर संग्राममें शास्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है [बुद्धिके द्वारा नहीं]। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। साँपका नन्हा-सा बच्चा भी मौतका कष्ट देनेवाला होता है। [प्रभातकालके] बाल-सूर्यकी ओर देखना भी कठिन होता है। इसी प्रकार मैं बालक होनेपर भी दुर्जय हूँ—मुझे परास्त करना कठिन है। दैत्य! क्या थोड़े अक्षरोंवाले मन्त्रमें अद्भुत शक्ति नहीं देखी जाती?

कुमारकी यह बात समाप्त होते ही दैत्यने उनके ऊपर मुद्रका प्रहार किया। परन्तु उन्होंने अमोघ तेजवाले चक्रके द्वारा उस भयंकर अख्तको नष्ट कर दिया। तब दैत्यराजने लोहेका भिन्निपाल चलाया, किन्तु कार्तिकेयने उसको अपने हाथसे पकड़ लिया। इसके

बाद उन्होंने भी दैत्यको लक्ष्य करके भयानक आवाज करनेवाली गदा चलायी; उसकी छोट खाकर वह पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा। अब उसे विश्वास हो गया कि यह बालक दुःसह एवं दुर्जय वीर है। उसने बुद्धिसे सोचा, अब निःसन्देह मेरा काल आ पहुँचा है। उसे कम्पित होते देख कालनेमि आदि सभी दैत्यपति संग्राममें कठोरता धारण करनेवाले कुमारको मारने लगे। परन्तु महातेजस्वी कार्तिकेयको उनके प्रहार और विभीषिकाएँ छू भी नहीं सकीं। उन्होंने दानव-सेनाको अख-शाखोंसे विदीर्ण करना आरम्भ किया। उनके अखोंका कोई निवारण नहीं हो पाता था। उनकी मार खाकर कालनेमि आदि देवशत्रु युद्धसे विमुख होकर भाग चले।

इस प्रकार जब दैत्यगण आहत होकर चारों ओर भाग गये और किन्नरगण विजय-गीत गाने लगे, उस समय अपना उपहास जानकर तारकासुर क्रोधसे अचेत-सा हो गया। उसने तपाये हुए सोनेकी कान्तिसे सुशोभित गदा लेकर कुमारपर प्रहार किया और विचित्र बाणोंसे मारकर उनके वाहन मयूरको युद्धसे भगा दिया। अपने वाहनको रक्त बहाते हुए भागते देख कार्तिकेयने सुवर्णभूषित निर्मल शक्ति हाथमें ली और दानवराज तारकसे कहा—‘खोटी बुद्धिवाले दैत्य ! खड़ा रह, खड़ा रह; जीते-जी इस संसारको भर आँख देख ले। अब मैं अपनी शक्तिके द्वारा तेरे प्राण ले रहा हूँ, तू अपने कुकर्मोंको याद कर।’ यों कहकर कुमारने दैत्यके ऊपर शक्तिका प्रहार किया। कुमारकी भुजासे छूटी हुई वह शक्ति केयूरकी खन खनाहटके साथ चली और दैत्यकी छातीमें, जो वज्र तथा गिरिराजके समान कठोर थी, जालगी। उसने तारकासुरके हृदयको चीर डाला और वह

दैत्य निष्पाण होकर प्रलयकालीन पर्वतके समान धरतीपर गिर पड़ा। दानवोंके धुरन्धर वीर दैत्यराज तारकके मारे जानेपर सबका दुःख दूर हो गया। देवतालोग कार्तिकेयजीकी सुति करते हुए क्रीडामें मग्न हो गये, उनके मुखपर मुसकान छा गयी। वे अपनी मानसिक



चित्ताका परित्याग करके हर्षपूर्वक अपने-अपने लोकमें गये। सबने कार्तिकेयजीको वरदान दिये।

देवता बोले—जो परम बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिकेयजीसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा सुनायेगा, वह यशस्वी होगा। उसकी आयु बढ़ेगी; वह सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, सुन्दर, समस्त प्राणियोंसे निर्भय तथा सब दुःखोंसे मुक्त होगा।

उत्तम ब्राह्मण और गायत्री-मन्त्रकी महिमा

भीष्मजीने पूछा—विप्रवर ! मनुष्यको भी देवत्व, सुख, राज्य, धन, यश, विजय, भोग, आरोग्य, आयु, विद्या, लक्ष्मी, पुत्र, बस्तुवर्ग एवं सब प्रकारके मङ्गलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? यह बतानेकी कृपा कीजिये ।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! इस पृथ्वीपर ब्राह्मण सदा ही विद्या आदि गुणोंसे युक्त और श्रीसम्पन्न होता है । तीनों लोकों और प्रत्येक युगमें ब्राह्मण-देवता नित्य पवित्र माने गये हैं । ब्राह्मण देवताओंका भी देवता है । संसारमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है । वह साक्षात् धर्मकी मूर्ति है और इस पृथ्वीपर सबको मोक्ष प्रदान करनेवाला है । ब्राह्मण सब लोगोंका गुरु, पूज्य और तीर्थस्वरूप मनुष्य है । ब्रह्मजीने उसे सब देवताओंका आश्रय बनाया है । पूर्वकालमें नारदजीने इसी विषयको ब्रह्मजीसे इस प्रकार पूछा था—‘ब्रह्मन् ! किसकी पूजा करनेपर भगवान् लक्ष्मीपति प्रसन्न होते हैं ?’

ब्रह्मजी बोले—जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न हो जाते हैं । अतः ब्राह्मणकी सेवा करनेवाला मनुष्य परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है । ब्राह्मणके शरीरमें सदा ही श्रीविष्णुका निवास है । जो दान, मान और सेवा आदिके द्वारा प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, उसके द्वारा मानो शास्त्रीय विधिके अनुसार उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान हो जाता है । जिसके घरपर आया हुआ विद्वान् ब्राह्मण निराश नहीं लौटता, उसके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है । पवित्र देश-कालमें सुपात्र ब्राह्मणको जो धन दान किया जाता है, उसे अक्षय जानना चाहिये; वह जन्म-जन्मान्तरोंमें भी फल देता रहता है । ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला मनुष्य कभी दरिद्र, दुःखी और रोगी नहीं

होता । जिस घरके आँगन ब्राह्मणोंकी चरणधूलि पड़नेसे पवित्र एवं शुद्ध होते रहते हैं, वे पुण्यक्षेत्रके समान हैं । उन्हें यज्ञ-कर्मके लिये श्रेष्ठ माना गया है । भीष्म ! पूर्वकालमें ब्रह्मजीके मुखसे पहले ब्राह्मणका प्रादुर्भाव हुआ; फिर उसी मुखसे जगत्की सृष्टि और पालनके हेतुभूत वेद प्रकट हुए । अतः विधाताने समस्त लोकोंकी पूजा ग्रहण करनेके लिये और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानके लिये ब्राह्मणके ही मुखमें वेदोंको समर्पित किया । पितृयज्ञ (श्राद्ध-तर्पण), विवाह, अग्निहोत्र, शान्तिकर्म तथा सब प्रकारके माङ्गलिक कार्योंमें ब्राह्मण सदा उत्तम माने गये हैं । ब्राह्मणके ही मुखसे देवता हव्यका और पितर कव्यका उपभोग करते हैं । ब्राह्मणके बिना दान, होम और बलि—सब निष्फल होते हैं । जहाँ ब्राह्मणोंको भोजन नहीं दिया जाता, वहाँ असुर, प्रेत, दैत्य और राक्षस भोजन करते हैं । अतः दान-होम आदिमें ब्राह्मणको बुलाकर उन्हींसे सब कर्म कराना चाहिये । उत्तम देश-कालमें और उत्तम पात्रको दिया हुआ दान लाखगुना अधिक फलदायक होता है । ब्राह्मणको देखकर श्रद्धापूर्वक उसको प्रणाम करना चाहिये । उसके आशीर्वादसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है, वह चिरजीवी होता है । ब्राह्मणको देखकर उसे प्रणाम न करनेसे, ब्राह्मणके साथ द्वेष रखनेसे तथा उसके प्रति अश्रद्धा करनेसे मनुष्योंकी आयु क्षीण होती है, उनके धन-ऐश्वर्यका नाश होता है तथा परलोकमें उनकी दुर्गति होती है । ब्राह्मणका पूजन करनेसे आयु, यश, विद्या और धनकी वृद्धि होती है तथा मनुष्य श्रेष्ठ दशाको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । जिन घरोंमें ब्राह्मणके चरणोदक्षसे कीच नहीं होती, जहाँ वेद और शास्त्रोंकी ध्वनि नहीं सुनायी देती, जो यज्ञ, तर्पण और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे वञ्चित रहते हैं, वे इमशानके समान हैं ।*

* न विप्रपादोदकर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिष्ठोषितानि । स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि इमशानतुल्यानि गुहाणि तानि ॥



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

नारदजीने पूछा—पिताजी ! कौन ब्राह्मण अत्यन्त पूजनीय है ? ब्राह्मण और गुरुके लक्षणका यथावत् वर्णन कीजिये ।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स ! श्रोत्रिय और सदाचारी ब्राह्मणकी नित्य पूजा करनी चाहिये । जो उत्तम ब्रतका पालन करनेवाला और पापोंसे मुक्त है, वह मनुष्य तीर्थस्वरूप है । उत्तम श्रोत्रियकुलमें उत्पन्न होकर भी जो वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, वह पूजित नहीं होता तथा असत् क्षेत्र (मातृकुल) में जन्म लेकर भी जो वेदानुकूल कर्म करता है, वह पूजाके योग्य है—जैसे महर्षि वेदव्यास और ऋष्यशृङ्ग* । विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हैं, तथापि अपने सत्कर्मोंके कारण वे मेरे समान हैं; इसलिये बेटा ! तुम पृथ्वीके तीर्थस्वरूप श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणोंके लक्षण सुनो, इनके सुननेसे सब पापोंका नाश होता है । ब्राह्मणके बालकको जन्मसे ब्राह्मण समझना चाहिये । संस्कारोंसे उसकी 'द्विज' संज्ञा होती है तथा विद्या पढ़नेसे वह 'विप्र' नाम धारण करता है । इस प्रकार जन्म, संस्कार और विद्या—इन तीनोंसे युक्त होना श्रोत्रियका लक्षण है । जो विद्या, मन्त्र तथा वेदोंसे शुद्ध होकर तीर्थस्नानादिके कारण और भी पवित्र हो गया है, वह ब्राह्मण परम पूजनीय माना गया है । जो सदा भगवान् श्रीनारायणमें भक्ति रखता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, जिसने अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीत लिया है, जो सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है, जिसके हृदयमें गुरु, देवता और अतिथिके प्रति भक्ति

है, जो पिता-माताकी सेवामें लगा रहता है, जिसका मन परायी रूपीमें कभी सुखका अनुभव नहीं करता, जो सदा पुराणोंकी कथा कहता और धार्मिक उपाख्यानोंका प्रसार करता है, उस ब्राह्मणके दर्शनसे प्रतिदिन अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । + जो प्रतिदिन ज्ञान, ब्राह्मणोंका पूजन तथा नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो गया है तथा जो गङ्गाजीके जलका सेवन करता है, उसके साथ वार्तालाप करनेसे ही उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है । जो शत्रु और मित्र दोनोंके प्रति दयाभाव रखता है, सब लोगोंके साथ समताका बर्ताव करता है, दूसरेका धन—जंगलमें पड़ा हुआ तिनका भी नहीं चुराता, काम और क्रोध आदि दोषोंसे मुक्त है, जो इन्द्रियोंके वशमें नहीं होता, यजुर्वेदमें वर्णित चतुर्वेदमयी शुद्ध तथा चौबीस अक्षरोंसे युक्त त्रिपदा गायत्रीका प्रतिदिन जप करता है तथा उसके भेदोंको जानता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ।

नारदजीने पूछा—पिताजी ! गायत्रीका क्या लक्षण है, उसके प्रत्येक अक्षरमें कौन-सा गुण है तथा उसकी कुक्षि, चरण और गोत्रका क्या निर्णय है—इस बातको स्पष्टरूपसे बताइये ।

ब्रह्माजी बोले—वत्स ! गायत्री-मन्त्रका छन्द गायत्री और देवता सविता निश्चित किये गये हैं । गायत्री देवीका वर्ण शुद्ध, मुख अग्नि और ऋषि विश्वामित्र हैं । ब्रह्माजी उनके मस्तकस्थानीय हैं । उनकी शिखा रुद्र और हृदय श्रीविष्णु हैं । उनका उपनयन-कर्ममें विनियोग होता

* सच्चेत्रियकुले जातो अक्रियो नैव पूजितः । असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभाष्टकौ यथा ॥

(४३ । १३१)

+ जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैद्विज उच्यते । विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम् ॥
विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च । तीर्थस्नानादिभिर्मेधो विप्रः पूज्यतमः सूतः ॥
नारायणे सदा भक्तः शुद्धान्तःकरणस्तथा । जितेन्द्रियो जितक्रोधः समः सर्वजनेषु च ॥
गुरुदेवातिथेर्भक्तः पित्रोः शुश्रूषणे रतः । परदारे मनो यस्य कदाचित्रैव मोदते ॥
पुराणकथको नित्यं धर्माख्यानस्य सन्ततिः । अस्यैव दर्शनान्तित्यमध्यमेधादिजं फलम् ॥

(४३ । १३४—३८)